[illegible]

[illegible]- 1 [illegible]	The Transmission of the Lamp, Chapter #30, Chapter title: This chair is empty, 10 June 1986 am in Punta Del Este, Uruguay.	Part of Question-1 about living with totality and intensity
[illegible]- 2 [illegible], [illegible]	OM MANI PADME HUM #1 Translation published in booklet- [illegible] (1988)	First Question about Tibetan mantra OM MANI PAADME HUM
[illegible]- 3 [illegible]	The Hidden Splendor, Chapter #6, Chapter title: Only fools choose to be somebody, 15 March 1987 am in Chuang Tzu Auditorium,	Part of Question 1 on religion and politics
[illegible]- 4 [illegible]	The Book of Wisdom, Chapter #14, Chapter title: Other Gurus and Etceteranandas, 24 February 1979 am in Buddha Hall	The first question: BELOVED OSHO, CAN YOU SAY SOMETHING ABOUT DEATH AND THE ART OF DYING?
[illegible]- 5 [illegible]-[illegible]	The Transmission of the Lamp, chapter #27, Chapter title: Unless your feet are holy..., 8 June 1986 am in Punta Del Este, Uruguay.	Question 6-BELOVED OSHO, YOU MENTIONED A FEW DAYS AGO THAT THE VARIOUS EXPERIENCES WE HAVE RECOUNTED TO YOU ABOUT OUR CHILDHOOD ARE ACTUALLY TECHNIQUES THAT HAVE BEEN USED FOR CENTURIES TO LEARN A DISTANCE FROM THE BODY. WERE THESE DEVELOPED AS TECHNIQUES BECAUSE THEY WERE EXPERIENCES THAT CAME NATURALLY TO MAN IN HIS INNOCENCE AND AVAILABILITY AS A CHILD? OR HAVE WE RETAINED MEMORIES OF THESE TECHNIQUES FROM PAST LIVES?
[illegible]- 6 [illegible]-[illegible]	Traslated from- The Transmission of the Lamp, Chapter #3, Chapter title: True balance, 27 May 1986 pm in Punta Del Este, Uruguay.	Question 4-BELOVED OSHO, A CURIOUS THING HAPPENED TO ME ONCE WHEN I WAS A LITTLE GIRL -- PERHAPS ELEVEN OR TWELVE YEARS OLD. DURING RECESS TIME AT SCHOOL I WAS IN THE BATHROOM AND I LOOKED INTO THE MIRROR TO SEE IF I LOOKED TIDY. THEN SUDDENLY I FOUND THAT I WAS STANDING HALFWAY BETWEEN MY BODY AND THE MIRROR, WATCHING MYSELF LOOKING AT MY REFLECTION IN THE MIRROR. IT AMUSED ME TO SEE THE THREE I'S, AND I THOUGHT IT MUST HAVE BEEN A TRICK ONE COULD LEARN. SO I TRIED TO SHOW MY GIRLFRIEND AND I TRIED IT AGAIN MYSELF -- WITHOUT SUCCESS. IT DIDN'T, IN RETROSPECT, FEEL LIKE WITNESSING; IT FELT LIKE MY ESSENTIAL SELF HAD STEPPED OUT OF MY PHYSICAL FORM. IS IT OF ANY VALUE TO

		UNDERSTAND WHAT HAPPENED TO THAT LITTLE GIRL?
[illegible]- 7 [illegible]	The Transmission of the Lamp, Chapter #6, Chapter title: Pure consciousness has never gone mad, 29 May 1986 am in Punta Del Este, Uruguay	.Question 1-BELOVED OSHO, WHEN I WAS A BOY, BETWEEN TWELVE AND FIFTEEN YEARS OLD, I OFTEN HAD, LYING IN MY BED IN THE DARK, STRANGE EXPERIENCES WHICH I LOVED VERY MUCH. IT STARTED BY MY IMAGINING THAT MY BED DISAPPEARED, THEN MY ROOM, THE HOUSE, THE TOWN, ALL PEOPLE, THE COUNTRY, THE WHOLE GLOBE... EVERYTHING IN THE UNIVERSE FADED. THERE WAS UTTER DARKNESS AND SILENCE; I WAS JUST FLOATING IN SPACE. THE DISAPPEARANCE OF THE LAST MATERIAL THINGS CREATED A TREMENDOUS WHIRLING AROUND ME. I WAS SUCKED INTO IT; THIS FEELING WAS ALMOST SEXUAL. IT CREATED A SWEET, PULLING SENSATION IN MY BELLY, WHICH COULD LAST FOR SECONDS OR SOMETIMES FOR ONE TO TWO MINUTES.I NEVER TALKED TO MY PARENTS OR ANYBODY ELSE ABOUT IT, BECAUSE I FEARED THEY MIGHT THINK ME MAD.OSHO, WHAT WAS THIS EXPERIENCE?
[illegible]- 8 [illegible]	Zen: The Path of Paradox, Vol 1, Chapter #1, Chapter title: Join the Farthest Star, 11 June 1977 am, Poona.	Sutra- LIKE THE EMPTY SKY IT HAS NO BOUNDARIES, YET IT IS RIGHT IN THIS PLACE, EVER PROFOUND AND CLEAR. WHEN YOU SEEK TO KNOW IT, YOU CANNOT SEE IT, YOU CANNOT TAKE HOLD OF IT, BUT YOU CANNOT LOSE IT. IN NOT BEING ABLE TO GET IT YOU GET IT. WHEN YOU ARE SILENT IT SPEAKS; WHEN YOU SPEAK, IT IS SILENT. THE GREAT GATE IS WIDE OPEN TO BESTOW ALMS, AND NO CROWD IS BLOCKING THE WAY.
[illegible]- 9 [illegible]? [illegible]!	published in a book titled- "Kasht, Dukh aur Shanti" from- "Yoga: The Alpha and the Omega", Vol 5, Chapter #1, Chapter title: The bridegroom is waiting for you,1 July 1975 am in Buddha Hall	SUTRA- "[illegible], [illegible]"
[illegible]- 10 [illegible]	Misc. english discourses	Quotations on different aspects of life

[illegible]-1
[illegible]

समग्रता से जीओ, और पूरी त्वरा से जीओ, ताकि प्रत्येक क्षण स्वर्णिम हो उठे और तुम्हारा पूरा जीवन स्वर्णिम क्षणों की एक माला बन जाये।
ऐसा व्यक्ति कभी नहीं मरता क्योंकि उसके पास मिदास का स्पर्श होता हैः वह जो भी छूता है, स्वर्णिम हो उठता है।
सही अर्थ में एकमात्र जिम्मेदारी तुम्हारी अपनी सम्भावनाओं के प्रति, तुम्हारी अपनी बुद्विमत्ता और सजगता के प्रति है- और फिर उनके अनुसार व्यवहार करने के प्रति है।
तुम जन्म के साथ वृक्ष की भांति पैदा नहीं होते, तुम केवल बीज की भांति पैदा होते हो। तुम्हें उस बिंदु तक विकसित होना है जहां तुममें फूल खिलने लगें, और वही खिलावट तुम्हारी परितृप्ति होगी, कृतार्थता होगी।
इस खिलावट का पद से कोई संबंध नहीं, धन से कोई संबंध नहीं, राजनीति से कोई संबंध नहीं। इसका संबंध केवल और केवल तुमसे है, यह निजी विकास है। तुम्हें अपने आप में एक महोत्सव बन जाना है।
उटोपिया (आदर्श राज्य) की अभीप्सा मूल रूप से व्यक्ति के भीतर और समाज के भीतर लयबद्वता की अभीप्सा है। लयबद्धता आज तक कभी नहीं रही हैः हमेशा एक अव्यवस्था ही रही है।
समाज विभिन्न संस्कृतियों में, विभिन्न धर्मों में, विभिन्न राष्ट्रों में विभाजित रहा है- और इनका आधार रहे हैं अंधविश्वास, इनमें से कोई भी विभाजन तर्क संगत नहीं है। लेकिन ये विभाजन दर्शाते हैं कि मनुष्य स्वयं के भीतर ही विभाजित है। ये उसके आंतरिक द्वंद्व के ही फैलाव हैं। मनुष्य भीतर एक नहीं है, इसीलिये वह बाहर एक समाज, एक मानवता निर्मित नहीं कर सका है। कारण बाहर नहीं है। बाह्य तो केवल आंतरिक मनुष्य का प्रतिफलन है।
किसी ने आज तक व्यक्ति पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया है। और यही समस्त समस्याओं का मूल कारण है। लेकिन चूंकि व्यक्ति इतना छोटा लगता है, और हम और समाज इतने बड़े लगते है, लोग सोचते हैं, कि हम समाज को बदल सकते हैं और तब व्यक्ति बदल जायेंगे।
ऐसा होनेवाला नहीं है- क्योंकि समाज केवल एक शब्द है। केवल व्यक्ति होते हैं, समाज नहीं होते। समाज के कोई प्राण नहीं होते; तुम उसमें कुछ बदल नहीं सकते। तुम केवल व्यक्ति को बदल सकते हो, चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न लगता हो। और एक बार तुम व्यक्ति को बदलने का विज्ञान जान लेते हो तो वह सभी व्यक्तियों पर सब कहीं लागू होता है।
मुझे ऐसा लगता है, कि एक दिन हम ऐसे समाज को निर्मित कर लेंगे जो लयबद्ध होगा, जो उन कल्पनाओं से भी कहीं बेहतर होगा जो हजारों वर्षां से आदर्श-राज्यवादी करते आए हैं।
वास्तविकता कहीं अधिक सुन्दर होगी। तुम जो हो उससे, और अस्तित्त्व ने जो तुम्हें दिया है उससे, तुम कभी पूरी तरह संतुष्ट नहीं होते हो, क्योंकि तुम्हारा ध्यान कहीं और लगा दिया गया है। तुम्हें वहां जाने के निर्देश मिले हैं जहां अस्तित्त्व ने चाहा ही न था कि तुम हो। तुम अपनी ही सम्भावनाओं की ओर नहीं बढ़ रहे हो।
दूसरे जैसा चाहते है तुम हो, तुम वैसा होने की कोशिश कर रहे हो, लेकिन उससे तृप्ति नहीं मिल सकती है। जब तृप्ति नहीं मिलती, तो तर्क कहता है, ‘शायद यह पर्याप्त नहीं है, और प्रयास करो।’ तब फिर तुम और अधिक के पीछे दौड़़ने लगते हो, तब फिर तुम चारों तरफ देखना शुरू कर देते हो।
और हर व्यक्ति मुखौटा लगाकर प्रगट हो रहा है जो कि मुस्कुरा रहा है, प्रसन्न दिख रहा है और इस तरह हर व्यक्ति, हर दूसरे को धोखा दे रहा है। तुम भी मुखौटा लगाकर सामने आते हो, तो दूसरे सोचते हैं कि तुम ज्यादा आंनदित हो। तुम सोचते हो कि दूसरे ज्यादा आनंदित है।
अहाते के उस पार की घांस हमेंशा ज्यादा हरी दिखती है। वे तुम्हारी घांस को देखते हैं और यह ज्यादा हरी दिखती है। वह सचमुच ही ज्यादा हरी, घनी और सुन्दर मालूम होती है। दूरी इस भ्रम को जन्म देती है। जब तुम पास आते हो, तब तुम्हें दिखना शुरु होता है कि ऐसा नहीं है। लेकिन लोग एक-दूसरे को थोड़े अन्तर पर ही रखते हैं। यहां तक कि मित्र भी, यहां तक कि प्रेमी भी एक-

3

दूसरे को थोड़े अन्तर पर ही रखते हैं। बहुत ज्यादा निकट आना खतरनाक होगा, लोग तुम्हारी असलियत देख सकते हैं।
और प्रारंभ से ही तुम्हें गलत मार्गदर्शन दिया गया है, तो जो भी तुम करोगे दुखी रहोगे। तुम बहुत पैसे वाले को देखते होः तुम्हें लगता है, शायद पैसा आनन्द लाता है। देखो जरा उस व्यक्ति को, कैसा आनन्दित लगता है। तो पैसे के पीछे दौड़ो। कोई व्यक्ति अधिक स्वस्थ है, तो स्वास्थ के पीछे दौड़ो। कोई व्यक्ति कुछ और कर रहा है और बडा तृप्त दिखता है- तो उसका अनुकरण करो। लेकिन है ये सदा दूसरे ही हैं।
समाज ने ऐसी व्यवस्था बना रखी है कि तुम कभी अपनी संभावनाओं के बारे में सोचोगे ही नहीं। और सारा दुख यह है कि तुम, तुम नहीं हो रहे हो। सिर्फ स्वयं जैसे हो जाओ, और फिर कोई दुख नहीं हैं, कोई प्रतिस्पर्धा नहीं हैं, और कोई परेशानी नहीं है कि दूसरे के पास ज्यादा हैं, कि तुम्हारे पास ज्यादा नहीं हैं।
यदि तुम ज्यादा हरी घांस ही पसंद करते हो, तो अहाते के दूसरी और देखने की जरूरत नहीं हैं, अपनी ओर की घांस को ही ज्यादा हरी बनाओ। इतनी आसान बात है। घांस को हरी बनाना।
मनुष्य की जड़े उसकी अपनी संभावनाओं में रहनी चाहिये, चाहे वे संभावनायें जो भी हों। और तब दुनिया इतनी तृप्त होगी कि तुम भरोसा नहीं कर सकते हो।
जीवित होने का अर्थ है तुम्हारे पास हास्य-बोध का होना, गहरे प्रेमपूर्ण ढंग का होना और हंसते-खेलते जीना।
मैं समस्त जीवन-विरोधी प्रवृतियों के विरोध में हूं; लेकिन आज तक दिव्य के प्रति आस्था प्रकट करने का ढंग हमेशा जीवन विरोधी ही रहा है। उसे जीवन समर्थक बनाने के लिये हंसते-खेलते रहने की कला को, प्रेम को, सम्मान को एक साथ जोड़ना पड़ेगा।
जीवन का सम्मान ही दिव्य के प्रति एकमात्र श्रद्धा है, क्योंकि जीवन से ज्यादा दिव्य और कुछ भी नहीं हैं।
मनुष्य बड़े खजानों के साथ पैदा होता हैं, लेकिन वह अपनी पूरी पाशविक विरासत भी साथ लाता है। किसी भी प्रकार हमें इस पाशविक विरासत से स्वयं को मुक्त करना होगा और एक खाली जगह निर्मित करनी होगी ताकि यह खजाना हमारे चेतन तक उभर सके और उसे हम सबके साथ बांट सकें- क्योंकि उस खजाने का एक गुण यह भी हैंः जितना ज्यादा तुम उसे बांटोगे, उतना ज्यादा वह बढ़ेगा।
हमारी कई समस्यायें इसलिये हैं कि हमने कभी उन पर गौर ही नहीं किया हैं, कभी अपनी दृष्टि ही उन पर केन्द्रित नहीं की है यह देखने के लिये, कि वे क्या हैं।
जीवन उन चीजों के हाथों में सौंपो जो सुन्दर हैं। जीवन कुरूप चीजों के हवाले मत करो। तुम्हारे पास बरबाद करने के लिये ज्यादा समय, ज्यादा ऊर्जा नहीं हैं। इतने छोटे से जीवन के साथ, इतने छोटे से ऊर्जा-त्रोत के साथ उसे क्रोध में, घृणा में, उदासी में, ईर्ष्या में गंवाना मूढ़ता ही है।
उसका उपयोग प्रेम के लिए करो, किसी सृजनात्मक कार्य के लिए करो, मित्रता के लिए करो, ध्यान के लिए करो। अपनी ऊर्जा का कुछ ऐसा उपयोग करो कि जो तुम्हें ऊंचाइयों पर ले जाती हो। और जितने ऊंचे तुम जाओगे, उतने ही ज्यादा ऊर्जा के स्त्रोत तुम्हें उपलब्ध होंगे।
सब तुम्हारे हाथ में हैं।
कोई भी मनुष्य अलग द्वीप नहीं हैं। इसे जीवन के एक आधारभूत सत्य की तरह स्मरण रखना है। मैं इस बात पर इसलिये इतना जोर दे रहा हूं क्योंकि हम इसे बार-बार भूलने लगते हैं।
हम सब एक ही जीवन-शक्ति के अंश हैं- एक ही सागर समान अस्तित्त्व के अंश है। मूलतः चूंकि गहरी जड़ों में हम सब एक हैं, इसीलिये प्रेम के उपजने की संभावना भी हैं। यदि हम एक न होते, तो प्रेम की संभावना भी न होती।
मनुष्य अभी भी अपने भीतर अधिकांश पाशविक प्रवृत्तियों को ढोए चला जाता है। उसका क्रोध, उसकी घृणा, उसकी ईर्ष्या, उसकी अधिपत्य की भावना, उसकी धूर्तता, मनुष्य में जिन बातों की निदां की गयी हैं, वे सब उसके गहरे

अचेतन से जुड़ी हुअी लगती हैं। और अध्यात्म की कुल कीमियां इतनी है कि कैसे इस पाशविक अतीत से छुटकारा पाया जाए? बिना इस पाशविक अतीत से छुटकारा पाए, मनुष्य हमेशा विभाजित रहेगा। पाशविक अतीत और मनुष्यता एक होकर नहीं रह सकते, क्योंकि मनुष्यता के गुणधर्म बिल्कुल विपरीत हैं। तो मनुष्य क्या करता है कि वह एक ढोंगी बन जाता है।
जहां तक औपचारिक व्यवहार का प्रश्न है, वह मानवता के गुणों का अनुसरण करता है- प्रेम का, सत्य का, स्वतंत्रता का, गैर-मालकियत की भावना का, करुणा का। लेकिन यह सब ऊपरी-ऊपरी और उथला ही रहता है, और किसी भी पल भीतर छिपा पशु उभर सकता है; कोई भी आकस्मिक घटना उसे प्रगट कर देती है; और वह बाहर उभरे न या उभरे, भीतर चेतना तो विभाजित ही रहती है।
यह खंडित चेतना ही इस प्रश्न को, इस अभीप्सा को जन्म देती रही है, कि कैसे व्यक्ति एक हारमोनियस होल; एक लयबद्ध इकाई में बदल जाए और यही पूरे समाज के लिये भी सच हैः कैसे हम समाज को एक लयबद्ध इकाई बना सकें- जहां कोई युद्ध न हो, जहां कोई द्वंद न हो, जहां कोई स्वर्ग न हो; जाति, रंग, धर्म, और राष्ट्र के कोई भेद न हों।
हमें क्रांति और समाज को बदलने की भाषा में सोचने के बजाय ध्यान तथा व्यक्ति को बदलने के बारे में अधिक-अधिक सोचना चाहिये।
यही एकमात्र संभव उपाय है जिसके द्वारा किसी दिन हम समाज के सारे भेद मिटा सकेंगे। लेकिन पहले ये भेद व्यक्ति के चित्त से छूटने चाहिये- और वे छूट सकते हैं।
ऐसी कोई चीज नहीं है जिस पर ‘सत्य’ का लेबिल चिपका हो- कि एक दिन तुम्हें वह डिब्बा मिल जायेगा और तुम उसे खोलोगे, भीतर रखा सामान देखोगे और कहोगे, ‘अहा! मुझे सत्य मिल गया।’
ऐसा कोई डिब्बा नहीं हैं।
कारण स्पष्ट है कि क्यों लोग सत्य के बारे में बातें करते हैं और झूठ की दुनिया में जीये चले जाते हैं। उनके हृदय में सत्य के लिये अभीप्सा है; वे स्वयं के प्रति ही शर्मिंदा रहते हैं कि वे सच्चे नहीं हैं, इसलिये वे सत्य की बातें करते हैं। लेकिन ये केवल बातें हैं। उसके अनुसार जीना खतरनाक हैं, उतना खतरा वे नहीं उठा सकते।
और स्वतंत्रता के मामले में भी यही बात है। हर व्यक्ति स्वतंत्रता चाहता हैं-जहां तक बातचीत का सवाल है लेकिन सचमुच में कोई स्वतंत्र नहीं है। और कोई सचमुच स्वतंत्र होना चाहता भी नहीं, क्योंकि स्वतंत्रता के साथ जिम्मेदारी आती है, वह अकेली नहीं आती और आश्रित रहना आसान है; जिम्मेदारी तुम पर नहीं होती, जिम्मेदारी उस व्यक्ति पर होती है जिस पर तुम आश्रित हो।
तो लोगों ने जीने का बड़ा खंडितमना ढंग अपना लिया है। वे सत्य की बातें करतें हैं, वे स्वतंत्रता की बातें करते हैं, और जीते वे झूठ में हैं, जीते वे गुलामी में हैं... बहुत तरह की गुलामियों में, क्योंकि प्रत्येक गुलामी तुम्हें किसी जिम्मेदारी से मुक्त करती है।
जो व्यक्ति सचमुच स्वतंत्र होना चाहता है, उसे विशाल जिम्मेदारियां स्वीकार करनी होती हैं। वह अपनी जिम्मेदारियां किसी अन्य पर नहीं थोप सकता। जो भी वह करता हैं, जो भी वह है, वह स्वयं जिम्मेदार है।
सच्चा अहिंसक व्यक्ति वही है जो किसी की हत्या नहीं करता, किसी को नुकसान नहीं पहुंचाता, क्योंकि वह हत्या करने के या किसी को नुकसान पहुंचाने के खिलाफ है। लेकिन यदि कोई उसे नुकसान पहुंचाने लगे, तब भी वह नुकसान पहुंचाने के खिलाफ है। यदि कोई उसकी हत्या करने लगे, तब भी वह हत्या के खिलाफ है; वह स्वयं की भी हत्या नहीं होने देगा।
वह कभी कोई हिंसा शुरू नहीं करेगा, लेकिन यदि कोई हिंसा उसके खिलाफ शुरू की जाती है, तो वह जी जान से लड़ेगा। केवल तभी अहिंसक व्यक्ति स्वतंत्र रह सकता है; नहीं तो वह हमेशा गुलाम रहेगा, दरिद्र रहेगा, हमेशा उसका शोषण होता रहेगा।
स्वयं हो जाना तुम्हें वह सब दे देता है जो तुम्हें परितृप्त कर दे, वह सब जो तुम्हारे जीवन को अर्थपूर्ण और महत्त्वपूर्ण बना दे। सिर्फ स्वयं

हो जाना और अपने स्वभाव के अनुसार विकास करना तुम्हारी नियति को परितृप्त कर देगा।
हमेशा परिवर्तनशील रहो और ऐसे रहो कि तुम्हारे बारे में पहले से कुछ न कहा जा सके। कभी बदलाहट को मत रोको और पुरानी आदतों के अनुसार मत जीओ; तभी जीवन एक हर्षोल्लास बन सकेगा।
जैसे ही तुम यूं जीते हो कि तुम्हारे बारे में भविष्यवाणी की जा सके, तुम यंत्रवत हो जाते हो।
यंत्र के व्यवहार तय होते हैं। वे कल भी वैसे ही थे, वे आज भी वैसे ही हैं, वे कल फिर वैसे ही रहोंगे। वे बदलते नहीं। यह केवल मनुष्य की महिमा है कि वह हर पल बदल सकता है।
जिस दिन तुम बदलना छोड देते हो, सूक्ष्म अर्थो में तुम मर चुके।
हर चीज को दांव पर लगा दो। जुआरी हो रहो! सारे खतरे मोल लो, क्योंकि अगला पल पक्का नहीं, तो चिंता क्यों करे? फिकर क्यों करे?
खतरों के साथ जीओ, हर्षोल्लासपूर्वक जीओ। निर्भय होकर जीओ, बिना किसी अपराध-भाव के जीओ। बिना किसी नर्क के भय के और बिना किसी स्वर्ग के लालच के जीओ।
सिर्फ जीओ।
प्रत्येक भूल सीखने का एक मौका है। केवल इतना कि एक ही भूल बार-बार मत करो- वह मूढ़ता है। लेकिन जितनी नयी गलितयां तुम कर सको करो, डरो मत-क्योंकि केवल यही तरीका है, जो प्रकृति तुम्हें सीखने के लिये देती है। धार्मिकता का सरल-सा अर्थ इतना है कि यह तुम्हारे विकास के लिये चुनौती है, यह बीज के लिये चुनौती है कि वह अपनी परम खिलावट को अभिव्यक्ति दे सकें; वह हजारों फूलों में खिल उठे और अपने भीतर छिपी सुगन्ध को बिखेर दे।
उस सुगन्ध को मैं धार्मिकता कहता हूं।
प्रत्येक व्यक्ति इतना दुःखी है कि वह खुद को ही समझाने के लिए कहीं कुछ कारण ढूंढना चाहता है कि वह इसलिए दुःखी है। और समाज ने तुम्हें इसके लिए एक अच्छा व्यूह प्रदान किया हैः राय बनाना।
स्वभावतः पहले तुम प्रत्येक बात में अपनें संबंध में राय बनाते हो। कोई भी व्यक्ति पूर्ण नहीं है और न कोई व्यक्ति कभी पूर्ण हो सकता है- परिर्पूणता कहीं होती नहीं- तो धारणाएं कायम करना बड़ा आसान है। तुम अधूरे हो, तो कई चीजें ऐसी है जो तुम्हारे अधूरेपन को झलकाती हैं। और फिर तुम नाराज हो, खुद से नाराज और पूरी दूनिया से नाराजः कि मैं पूर्ण क्यों नहीं हूं? और तब फिर तुम केवल एक ही विचार से देखने लगते हो- सब में अपूर्णता खोजना।
और फिर तुम अपने हृदय को खोलना चाहते हो- स्वभावतः क्योंकि जब तक तुम अपने हृदय खोल नहीं देते, तुम्हारे जीवन में कोई उत्सव नहीं, तुम्हारा जीवन लगभग मृत है। लेकिन तुम अपने हृदय को सीधा नहीं खोल सकते। तुम्हें अपनी इस पूरी आरम्भिक शिक्षा को जड़ से उखाड़ फेंकना होगा।
तो पहली बात हैः स्वयं के बारे में राय बनाना छोड़ो।
राय बनाने के बजाय स्वयं को स्वीकार करना शुरू करो, अपनी सारी अर्पूणताओं के सहित, अपनी सारी दुर्बलताओं के सहित, अपनी सारी गलितयों के सहित, अपनी सारी असफलताओं के सहित। स्वयं से पूर्ण होने की मांग मत करो।
यह मांग केवल असंभव की मांग है, और फिर तुम कुंठाग्रस्त होते हो।
आखिर तुम इन्सान ही हो।
जरा पशु-पक्षियों को देखोः कोई भी चिंतित नहीं है, कोई उदास नहीं है, कोई निराश नहीं है, कोई कुंठित नहीं है। तुम किसी भैंस को सनक गयी नहीं देखते हो। वह रोज वही घांस चबाती हुई तृप्त है। वह करीब-करीब बुद्धत्व को उपलब्ध है! कहीं कोई तनाव नहीं, बल्कि प्रकृति के साथ, स्वयं के साथ, जो बुद्ध जैसा है वैसे ही उसके साथ एक गहरी लयबद्धता है।
भैंसें कोई पार्टियाँ नहीं बनाती दुनिया में क्रांति लाने के लिये, भैंसों को महा-भैंसों में बदल देने के लिये, भैंसों को धार्मिक

पुण्यात्मा बनाने के लिये। किसी पशु को मनुष्य की धारणाओं से जरा भी मतलब नहीं हैं।
और वे सब हंसते होंगेः तुम्हें हो क्या गया है? तुम स्वयं क्यों नहीं हो सकते, जैसे हो वैसे हो? किसी और जैसे बनने की जरुरत क्या है?
तो पहली बात है- स्वयं का गहरा स्वीकार।
ऐंद्रिकता की निंदा मत करो।
सारी दुनिया द्वारा इस की निंदा की गयी है, और उनकी निन्दा के कारण ऊर्जा जो ऐंद्रिकता में खिल सकती है वह विकृतियों में, ईर्ष्या में, क्रोध में, घृणा में बहने लगती है- ऐसा जीवन जो रुखा-सुखा है, जिसमें कोई रस नहीं। इंद्रियरस मनुष्यता के लिये बड़े से बड़ा वरदान है। यह तुम्हारी संवेदनशीलता है, यह तुम्हारी चेतना है, जो तुम्हारे शरीर तक छन- छन कर आ रही है।
सदियों-सदियों से मां-बाप यह धारणा ढोते रहे हैं कि बच्चे उनके हैं और बच्चों को बस उनकी प्रतिलिपि (कार्बन कॉपी) भर बनना है। प्रतिलिपि कोई सुन्दर बात नहीं है, और अस्तित्त्व प्रतिलिपि में भरोसा नहीं रखता है- मौलिकता में हर्षोल्हासित होता है।
तुम्हें बच्चों की तुम से आगे विकसत हो जाने में मदद करनी है।
तुम्हें उनकी तुम्हारी नकल न करने में मदद करनी है। वास्तव में माता- पिता का यही कर्तव्य है- बच्चों को नकल में न पड़ने देनें में सहायता पहुंचाना। बच्चें नकलची होते हैं, और स्वभावतः, किसकी वे नकल करने वालें हैं? माता-पिता ही सबसे करीब होते हैं।
अब तक मां-बापों ने इस बात का बड़ा आनन्द लिया है कि उनके बच्चे ठीक उनके जैसे हैं। बाप को गर्व महसूस होता है क्योंकि उसका बेटा उस जैसा ही है। तब एक जीवन बरबाद हुआ; तब उसके लड़के की जरुरत ही न थी, वही पर्याप्त थे। बच्चों द्वारा नकल किये जाने में गर्व महसूस करने की गलत अवधारणा के कारण, हमनें नकलचियों का समाज खड़ा कर दिया है।
आज्ञाकारिता में बुद्धिमत्ता की जरुरत नहीं है। सभी यंत्र आज्ञाकारी हैं। किसी ने कभी नहीं सुना कि कोई यंत्र अवज्ञाकारी है।
आज्ञाकारिता सरल भी है। यह तुम पर से सारे दायित्व का बोझ हटा देता है।
इसमें प्रतिक्रिया की कोई जरुरत नहीं हैं, तुम्हें तो सिर्फ वही करना है जो तुमसे कहा जा रहा है। दायित्व उस स्रोत पर है जहां से आज्ञा आ रही है। एक प्रकार से तुम बहुत स्वतंत्र होः तुम्हारे कृत्य के लिये तुम्हारी निंदा नहीं की जा सकती।
धार्मिकता कोई ऐसी बात नहीं है जिसमें विश्वास किया जाना है, बल्कि कुछ ऐसी बात है जिसे जीया जाना है, जिसे अनुभव किया जाना है... तुम्हारे मन का एक विश्वास नहीं बल्कि तुम्हारे पूरे प्राणों की सुगंध।
मन राय न बनाने वाला, सही-गलत, अच्छे-बुरे की धारणा न बनाने वाला नहीं रह सकता। यदि तुम मन को राय न बनाने के लिए विवश करो तो तुम्हारी बुद्धिमत्ता में अवरोध खड़ा हो जाएगा। फिर मन ठीक से काम नहीं कर सकता। राय बनाने वाला न होना कोइ ऐसी बात नहीं है जो मन के कार्यक्षेत्र में आती हो। केवल वही व्यक्ति राय न बनानेवाला हो सकता जो मन के पार चला गया हो; अन्यथा जो तुम्हें तथ्यात्मक लगता है, एक तर्कसंगत वक्तव्य की तरह, वह केवल तथ्य का आभास मात्र है।
मन जो भी तय करता है, या कहता है, वह उसके संस्कारों द्वारा, उसके पूर्वाग्रहों द्वारा, प्रदूषित रहता है- ये ही वे बातें हैं जो उसे राय बनाने वाला बनाती हैं।
उदाहरण के लिये, तुम किसी चोर को देखते हो। यह एक तथ्य है कि वह चोरी करता रहा है, उसके बारे में सवाल ही नहीं- और तुम चोर के संबंध में एक वक्तव्य देते हो। और निश्चित ही चोरी अच्छी बात तो नहीं है; तो जब तुम किसी व्यक्ति को चोर कहते हो, तुम्हारा मन कहता है, तुम बिल्कुल ठीक बात कह रहे हो, तुम्हारा वक्तव्य बिल्कुल ठीक है।
लेकिन चोर बुरा क्यों है- और बुराई क्या है? वह चोरी करने पर मजबूर क्यों हो गया है? और चोरी का कृत्य अकेला एक कृत्य है; इस एक कृत्य के आधार

पर तुम पूरे व्यक्ति के संबंध में निर्णय ले रहे हो। तुम उसे चोर कह रहे हो। वह केवल चोरी ही नहीं करता है, अन्य बहुत से काम भी करता है।
हो सकता है वह एक अच्छा चित्रकार हो, हो सकता है वह एक अच्छा बढ़ई हो, हो सकता है वह एक अच्छा गायक हो, एक अच्छा नर्तक हो, हजारों गुण उस व्यक्ति में हो सकते हैं। पूरा मनुष्य बड़ी चीज है, चोरी करना अकेला एक कृत्य है। एक कृत्य के आधार पर तुम पूरे व्यक्ति के संबंध में वक्तव्य नहीं दे सकते। तुम उस व्यक्ति को जरा भी जानते नहीं हो, और तुम उस कृत्य तक के बारे में नहीं जानते हो कि किन परिस्थितियों में यह कृत्य हुआ है। शायद उन परिस्थितियों में तुमने भी चोरी ही की होती। शायद उन परिस्थितियों में चोरी करना बुरी बात न थी... । क्योंकि हर कृत्य परिस्थितियों पर निर्भर है। यदि तुम पूरी दुनियां में चारों और देखो और तुम अलग-अलग लोगों के संस्कार देखो, और उनकी अच्छे और बुरे, सही और गलत की धारणाएं देखो, तो पहली बार तुम्हें पता चलेगा कि शायद तुम्हारा मन भी मनुष्यता के एक किसी स्वर्ग विशेष का हिस्सा भर है। वह सत्य के संबंध में कोई खबर नहीं देता, वह केवल उस वर्ग विशेष के संबंध में खबर देता है।
और इस मन के माध्यम से जो कुछ भी तुम देखते हो, वह केवल तुम्हारी धारणा मात्र है।
अस्तित्त्व एक है। उसकी अभिव्यक्तियां लाखों हैं, लेकिन उनमें जो भाव अभिव्यक्त हो रहा है वह एक है। यह एक भगवत्ता है, सृजन की अनंत विविधताओं सहित।
पैसा बड़ी अजीब चीज है। यदि तुम्हारे पास पैसा है ही नहीं, तो यह आसान बात है, तुम्हारे पास है ही नहीं तो कोई जटिलता नहीं है। लेकिन यदि तुम्हारे पास पैसा है, तो वह निश्चित ही जटिलताएं पैदा करता है।
सबसे बड़ी समस्या जो पैसा पैदा करता है, वह यह है कि तुम्हें यह पता नहीं चलता कि लोग तुम्हें चाहते हैं या तुम्हारे पैसे को चाहते हैं। और इसे तय करना इतना मुश्किल होता है कि लगता है, पैसे पास न होना ही बेहतर होता। कम से कम जीवन आसान तो होता।
अब पैसा, जो इतना बड़ा आनन्द हो सकता था, गहन संताप का कारण बन गया है।
लेकिन संताप का कारण पैसा नहीं है, तुम्हारा मन है।
पैसा उपयोगी है; पैसा पास होने में कोई पाप नहीं हैं, इसमें कोई अपराध भाव महसूस करने की कोई जरुरत नहीं हैं।
अब, मन ऐसी समस्याएँ खड़ी करता है।
तुम्हारे पास पैसा है, उसका आनन्द लो। और यदि कोई तुम्हें प्रेम करता है, तो ऐसे प्रश्न मत उठाओ, क्योंकि तुम उस व्यक्ति को बड़ी उलझन में डाल रहे हो। यदि वह कहता है कि वह तुम्हें प्रेम करता है, तो तुम विश्वास नहीं करने वाले। यदि वह कहता है कि वह तुम्हारे पैसे को प्रेम करता है, तो तुम विश्वास लेने वाले हो। लेकिन यदि वह तुम्हारे पैसे को प्रेम करता है, तो सारा प्रेम-संबंध ही खत्म हुआ। गहरे में तुम्हें संदेह बना ही रहेगा कि वह तुम्हें नहीं, तुम्हारे पैसे को प्रेम करता है।
लेकिन इसमें कोई बुराई नहीं हैः पैसा भी तुम्हारा है, ठीक जैसे कि तुम्हारी नाक तुम्हारी है, तुम्हारी आंखे तुम्हारी हैं, तुम्हारे बाल तुम्हारे हैं। और वह व्यक्ति तुम्हें, तुम्हारी समग्रता में प्रेम करता है। पैसा भी तुम्हारा अंग है। उसे अलग मत करो, फिर कोई समस्या नहीं है।
जीवन को यथासंभव कम से कम जटिलताओं और न्यूनतम समस्याओं के साथ जीने की कोशिश करो- और यह तुम्हारे हाथ में है।
अपने जीवन के अंतरतम रहस्यों को जानना कुछ भी नहीं हैं।
तुलना की पूरी धारणा ही मिथ्या है।
प्रत्येक व्यक्ति अनूठा है, क्योंकि कोई उसके जैसा नहीं है। तुलना ठीक होती यदि सभी व्यक्ति एक समान होते- लेकिन वे एक समान नहीं। जुड़वां बच्चे भी एकदम एक जैसे नहीं होते। एक भी व्यक्ति खोज पाना असंभव है जो ठीक तुम जैसा हो। तो हम अनूठे व्यक्तियों की आपस में तुलना कर रहे हैं, उसी से सारी मुसीबत पैदा होती है।

जीवन की सबसे कठिन, लेकिन सबसे सारभूत बात यह है कि जीवन को सुन्दर बातों में और मूढतापूर्ण बातों में विभाजित न किया जाये, जीवन को विभाजित ही न किया जाये। वे सारी बातें एक ही पूर्ण के अंश हैं।
बस जरा से हास्य-बोध की जरुरत है। और मेरे अनुसार व्यक्ति को पूरा होने के लिये हास्य-बोध का होना एकदम जरुरी है।
छोटी-छोटी मूढ़तापूर्ण बातों में गलत क्या है? तुम उन पर हंसकर उनका आनन्द क्यों नहीं ले सकते? सारे समय तुम तय करते रहते हो, कि क्या सही है, क्या गलत है। सारे समय तुम न्यायाधीश की कुर्सी पर बैठे हो- और वह तुम्हें गंभीर बना देता है।
फिर, फूल सुन्दर हैं, लेकिन कांटों का क्या हों? वे भी फूलों के ही अस्तित्त्व के हिस्से हैं। फूल कांटों के बिना नहीं हो सकेंगे; कांटे रक्षक हैं। उनका भी कुछ काम है, कुछ उद्देश्य, कुछ अर्थ।
लेकिन तुम विभाजित करते हो- तब फूल सुंदर हैं और कांटे कुरुप हो जाते हैं। लेकिन स्वयं वृक्ष के भीतर वही रस जो फूलों में जा रहा है, वही कांटों में भी जा रहा है। वृक्ष तो कोई भेद नहीं करता, कोई राय नहीं बनाता। फूलों का पक्ष नहीं लिया जाता और कांटों को केवल बर्दाश्त भर नहीं किया जाता, दोनों का पूरा स्वीकार है। और हमारे जीवन में हमारा भी यही झुकाव होना चाहिए।
जीवन में चीजें हैं, छोटी चीजें, जिनके बारे में यदि तुम राय बनाते हो तो वे मूढ़तापूर्ण दिखेंगी, बेवकूफी भरी लगेंगी। लेकिन वह तुम्हारी धारणा बनाने की दृष्टि के कारण है; अन्यथा वे भी कुछ आवश्यक कार्य संपादित करने के लिए हैं।
मन का पूरा कार्य है तोड़ते जाना। हृदय का काम है जोड़नेवाली कड़ी को देखना, जिसके प्रति मन बिल्कुल अंधा है।
मन उसको समझ नहीं सकता जो शब्दों के पार है; वह केवल उसी को समझ सकता है जो भाषा से और तर्क से समझ में आता हो। उसका अस्तित्त्व से, जीवन से, और सत्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। मन स्वयं एक कल्पना है।
तुम मन के बिना नहीं जी सकते। तुम हृदय के बिना नहीं जी सकते। और जितनी ज्यादा गहराई से तुम जीते हो, उतना ही ज्यादा तुम्हारे हृदय का उसमें हाथ है।
जीवन बहाव है, जीवन एक नदी है, एक सतत प्रवाह!
लोग स्वयं को ठहरा हुआ सोचते हैं। केवल वस्तुएं ठहरी हुई होती हैं, केवल मृत्यु मैं बदलाहट नहीं होती- जीवन लगातार बदल रहा है। जितना ज्यादा जीवन होगा- उतनी ज्यादा बदलाहट होगी। भरपूर जीवन, और हर पल एक तीव्र बदलाहट।
कोई श्रेष्ठ नहीं है, कोई हीन नहीं है और कोई समान भी नहीं है। हर व्यक्ति अनूठा है।
समानता मनोवैज्ञानिक रूप से गलत है। प्रत्येक व्यक्ति अलबर्ट आइन्स्टीन नहीं हो सकता और प्रत्येक व्यक्ति रवींन्द्रनाथ टैगोर भी नहीं हो सकता। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि रवींन्द्रनाथ टैगोर श्रेष्ठ हैं, क्योंकि तुम रवीन्द्रनाथ टैगोर नहीं हो सकते। रवीन्द्रनाथ के लिए भी ‘तुम’ बनना संभव नहीं है।
मेरे कहने का पूरा अभिप्राय यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अनूठी अभिव्यक्ति है। हमें श्रेष्ठता की, हीनता की, समानता की, असमानता की पूरी विचारधारा को ही समाप्त कर देना चाहिये, और उसके स्थान पर नई अवधारणा अनूठेपन की रखनी चाहिये।
और प्रत्येक व्यक्ति अनूठा है।
प्रेम से देखो और तुम पाओगे कि प्रत्येक व्यक्ति में कुछ है, जो किसी और में नहीं है।
जो कुछ भी मनपसंद हो बस वही करो- मनपसंद तुम्हारे लिए और मनपसंद तुम्हारे आसपास के वातावरण के लिए; बस कुछ ऐसा करो जो तुम्हें गीतों से भरे और तुम्हारे आसपास उत्सव का एक संगीत पैदा करे। ऐसे जीवन को मैं धार्मिक जीवन कहता हूं।

इसमें कोई सिद्धांत नहीं होते, इसमें कोई अनुशासन नहीं होता। उसका अकेला एक ही रुख होता है- और वह है, बुद्धिमत्ता से जीना।
आज्ञाकारिता में एक सरलता है; अनाज्ञाकारिता के लिये थोड़े ऊंचे स्तर की बुद्धिमत्ता की जरुरत होती है। कोई भी मूढ़ आज्ञाकारी हो सकता है- सच तो यह है कि केवल मूढ़ ही आज्ञाकारी हो सकते हैं।
बुद्धिमत्तापूर्ण व्यक्ति निश्चित ही पूछनेवाला है, क्यों? क्यों मुझे ऐसा करना है? और जब तक मुझे इसके कारणों और परिणामों का पता नहीं, मैं इसमें सम्मिलित नहीं होने वाला। तब वह जिम्मेदार बन रहा है।
संत के लिये दुष्ट होना सर्वथा असंभव है, लेकिन एक दुष्ट व्यक्ति संत हो सकता है।
मनुष्य ने अभी तक अकेलेपन के सौंदर्यबोध को पहचानना नहीं सीखा है।
वह हमेशा किसी से संबंध बनाने के लिए तड़प रहा है, किसी के साथ होने के लिए; मित्र के साथ, पिता के साथ, पत्नी के साथ, पति के साथ, बच्चे के साथ... किसी न किसी के साथ।
उसने समाज बनाये हैं, क्लब बनाये हैं; लायंस क्लब, रोटरी क्लब। उसने पार्टियाँ बनायी हैं; राजनैतिक, आदर्शवादी। धर्म बनाये हैं; चर्च, मंदिर। लेकिन इन सबके पीछे मूल जरुरत यह है कि तुम किसी तरह यह भूलना चाहते हो कि तुम अकेले हो। इतनी सारी भीडों के साथ जुड़कर तुम कोई बात भुलाने का प्रयास कर रहे हो जो अंधेरे में तुम्हें एकाएक याद आ जाती है कि तुम अकेले पैदा हुए थे, तुम अकेले मरोगे, चाहे तुम कुछ भी करो, तुम अकेले जीते हो। अकेलापन तुम्हारे अस्तित्त्व का इतना आवश्यक अंग है, कि उसे टालने का कोई उपाय नहीं है।
अकेलेपन; अलोननेस को टालने के लिये, किया गया हर प्रयत्न असफल हुआ है, और वह असफल होगा क्योंकि वह जीवन के मूलभूत नियमों के विपरीत है। जरुरत उस बात की नहीं है जिसमें तुम अपने अकेलेपन को भूल सको, जरुरत यह है कि तुम अपने अकेलेपन के प्रति- जो कि एक वास्तविकता है सजग हो सको।
और इसे महसूस करना, इसे अनुभव करना इतना सुन्दर है, क्योंकि यह भीड़ से, दूसरों से तुम्हारी मुक्ति है। यह एकाकी होने के भय से हमारा मुक्त होना है। ‘एकाकी’ शब्द मात्र तुम्हें तत्क्षण याद दिलाता है कि यह एक घाव की तरह हैः उसे भरने के लिये किसी चीज की जरुरत है। यह एक खाली जगह है, और यह चोट पहुंचाता है। इसमें कुछ भरा जाना जरुरी है।
”अकेलेपन”- इस शब्द में किसी खालीपन का, किसी घाव का बोध नहीं है जिसे भरा जाना है। अकेलापन’ का सीधा सा अर्थ होता है- परिपूर्णता। तुम सपूर्ण हो; तुम्हें पूर्ण करने के लिये किसी अन्य की जरुरत नहीं है।
तो अपने उस अंतरतम केंद्र को पाने की कोशिश करो, जहां तुम सदा अकेले हो, सदा से अकेले रहे हो। जीवन में, मृत्यु में, जहां-कहीं भी तुम हो तुम अकेले रहोगे। लेकिन यह इतना भरा-पूरा है, यह खाली नहीं है- यह इतना भरा-पूरा, इतना परिपूर्ण, इतना लबालब, जीवन के सभी रसों से, अस्तित्त्व के समस्त सौंदर्य से, स्व वरदानों से कि एक बार तुमने अपने अकेलेपन का स्वाद लिया कि हृदय के सारे दर्द विदा को जायेंगे। उसके बजाय असीम माधुर्य की, शांति की, उल्लास की, स्व-आनंद की एक नई लय होगी वहां।
इसका अर्थ यह नहीं है कि जो व्यक्ति अपने अकेलेपन में केन्द्रित है, अपने-आप में पूर्ण है, वह मित्र नहीं बना सकता। सच तो यह है, केवल वही मित्र बना सकता है। क्योंकि अब यह उसकी जरुरत नहीं है, अब यह एक बांटना है। उसके पास इतना अधिक है कि वह बांट सकता है।
हम एक ही अस्तित्त्व के हिस्से है। किसी को भी चोट पहुंचाने में तुम स्वयं को ही चोट पहुंचा रहे हो। आज चाहे तुम इसे महसूस न करो, लेकिन एक दिन जब तुम ज्यादा सचेत हो ओगे, तुम कहोगे, हे भगवान! यह घाव मैंने ही किया था स्वयं पर। तुमने किसी दूसरे को चोट दी थी यह सोचकर कि लोग अलग-अलग हैं। कोई अलग-अलग नहीं है। पूरा अस्तित्त्व एक है, एक सुव्यवस्थित इकाई! इसी समझ से अहिंसा का जन्म होता है।

जब तुम क्रोध में होते हो, तुम अपने आपको सजा दे रहे हो। तुम जल रहे होते हो, तुम अपने हृदय को और उसके श्रेष्ठ गुणों को नष्ट कर रहे होते हो- और तुम घृणा से भरे होते हो।
मनुष्य तभी पूर्ण होता है, जब वह अस्तित्त्व से लयबद्ध हो। यदि वह अस्तित्त्व से लयबद्ध नहीं है, तो वह खाली है, पूरी तरह से खाली; और उस खालीपन से, उस रिक्तता से पैदा होता है लोभ।
लोभ इस खालीपन को भरने के लिये है- पैसे से, मकानों से, फर्नीचर से, मित्रों से, प्रेमियों से, किसी भी चीज से- क्योकि तुम खालीपन की तरह नहीं जी सकते। यह भयंकर लगता है। जीवन भूत जैसा लगने लगता है। यदि तुम खाली हो और तुम्हारे भीतर कुछ भी नहीं है, तो जीना असभंव है। अपने भीतर भराव को महसूस करने के दो ही उपाय हैं। या तो तुम अस्तित्त्व के साथ समवर हो जाओ... तब तुम पूर्ण से भर उठते हो, सारे समस्त फूलों से और समस्त सितारों से। यह वास्तविक भराव है, वास्तविक परितृप्ति।
लेकिन यदि तुम वैसा न करो- और लाखों लोग वैसा नहीं कर रहे हैं- तो फिर दूसरा उपाय है, अपने को बस किसी भी तरह के कूड़ा-कचरे से भर लो।
लोभ का ही अर्थ है कि तुम भीतर बहुत खाली महसूस कर रहे हो और तुम इसे जो भी संभव हो उसी चीज से भरना चाहते हो; इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह चीज क्या है?
एक बार यह तुम्हारे समझ में आ जाए तो फिर लोभ के साथ तुम्हें कुछ नहीं करना है। तुम्हें पूर्ण के साथ परिसंवाद में होने के लिए कुछ करना पड़ता है। ताकि तुम्हारा भीतरी खालीपन विदा हो जाए।
मनुष्य का पूरा अतीत दरिद्रता की प्रशंसा करता रहा है और उसे अध्यात्म के बराबर स्थान देता रहा है, जो कि बिल्कुल बकवास है।
अध्यात्म मनुष्य को घटनेवाली महानतम समृद्धि है। शेष सारी समृद्धियां उसमें समाहित है, यह किसी अन्य समृद्धि के विरोध में नहीं है, यह तो बस सभी प्रकार की दरिद्रता के विरोध में है।
एक तरफ तो लोग गरीबी को सम्मान देंगे, और दूसरी तरफ कहते हैं, गरीबों की सेवा करो। अजीब है! यदि गरीबी इतनी आध्यात्मिक बात है तो हर अमीर आदमी को गरीब बना देना सर्वाधिक आध्यात्मिक कृत्य होगा। अमीर व्यक्ति की सहायता करो गरीब होने में, ताकि वह आध्यात्मिक हो सके। तब गरीबों की मदद क्यों करते हो? क्या तुम उसकी आध्यात्मिकता को नष्ट करना चाहते हो?
प्रचुरता में जीना ही जगत में एकमात्र आध्यात्मिक बात है।
पैसा बहुत बोझिल विषय है, सिर्फ इस कारण से हम आज तक कोई स्वस्थ व्यवस्था नहीं दे पाये जिसमें पैसा पूरी मनुष्यता का सेवक हो, कुछ लालची लोगों का मालिक भर नहीं।
पैसा बोझिल विषय है क्योंकि मनुष्य की पूरी मानसिकता लालच से भरी हुई है। वरना पैसा वस्तुओं के आदान-प्रदान का एक सीधा-सादा माध्यम है, उत्तम माध्यम; उसमें कुछ गलत नहीं है। लेकिन जिस ढंग से हमने पैसे की व्यवस्था बनायी है, सब कुछ उसमें गलत प्रतीत होता है।
यदि तुम्हारे पास पैसा नहीं है, तो तुम निन्दित किये जाते हो, तुम्हारा पूरा जीवन अभिशाप बन जाता है। और पूरे जीवन भर तुम किसी भी तरीके से पैसा पाने की कोशिश में लगे रहते हो।
यदि तुम्हारे पास पैसा है, तो वह मूल बात को तो बदलता नहीं- तुम और अधिक चाहते हो, और अधिक चाहने का कोई अंत नहीं है। और अंततः जब तुम्हारे पास बहुत पैसा हो जाता है- यद्यपि वह पर्याप्त नहीं होता, वह पर्याप्त होता ही नहीं; वह उससे ज्यादा है जितना किसी दूसरे के पास हो- तब तुम अपराध भाव महसूस करने लगते हो, क्योंकि तरीके जो तुमने पैसा जमा करने के लिये अपनाये थे वे गंदे थे, अमानवीय थे, हिंसक थे। तुम शोषण कर रहे थे, तुम लोगों का खून चूस रहे थे, तुम परजीवी थे। तो अब पैसा तो तुम्हारे पास हो गया है, लेकिन वह तुम्हें उन सब अपराधों की याद दिलाता है जो तुमने उसे हासिल करने में किए हैं।
उससे दो तरह के लोग पैदा होते हैः एक जो अपराधभाव से छुटकारा पाने के लिये धर्मार्थ संस्थाओं को दान करने लगते हैं; और दूसरे जो इतना अपराधभाव

महसूस करता है कि या तो वह पागल हो जाता है या आत्महत्या कर लेता है। उसका स्वयं का अस्तित्त्व एक संताप बन जाता है। हर सांस बोझिल हो जाती है। और अजीब बात यह है कि उसने अपने पूरे जीवन इस सारे पैसे को पाने के लिए ही काम किया क्योंकि समाज अमीर होने की, शक्तिशाली होने की इच्छा को, महत्त्वकांक्षा को उकसाता है।
और पैसा शक्ति लाता है; वह सबकुछ खरीद सकता है, केवल उन कुछ चीजों को छोड़कर जो पैसे से नहीं खरीदी जा सकती हैं। लेकिन उन चीजों की कोई फिक्र नहीं करता।
ध्यान नहीं खरीदा जा सकता, प्रेम नहीं खरीदा जा सकता, मित्रता नहीं खरीदी जा सकती, अहोभाव नहीं खरीदा जा सकता- लेकिन इन सब बातों में किसी का कोई रस नहीं हैं।
जरा अस्तित्त्व को और उसकी प्रचुरता को देखो इतने सारे फूलों की क्या जरुरत है दुनिया में? बस गुलाब पर्याप्त होते। लेकिन अस्तित्व प्रचुर है; लाखों-करोड़ों फूल, लाखों-करोडों पक्षी, करोडों जानवर, हर चीज प्रचुरता में।
प्रकृति कोई त्यागी- तपस्वी नहीं है, वह हर ओर नृत्य में लीन है- सागर में, वृक्षों में। वह हर ओर गीत गा रहा है- देवदार के वृक्षों से गुजरती हवा में, पक्षियों में... ।
क्या जरुरत है लाखों-लाखों सौर-मन्डलों की? हर सौर-मन्डल में लाखों- लाखों तारों की कोई आवश्यकता तो प्रतीत नहीं होती बजाय इसके कि अस्तित्त्व का स्वभाव ही प्रचुरता है; कि समृद्धि ही उसके प्राण हैं; कि अस्तित्त्व दरिद्रता में यकीन नहीं करता।
मैं लोभ को इच्छा के रूप में नहीं देखता। वह कोई अस्तित्त्वगत बीमारी है। तुम पूर्ण (होल) के साथ लयबद्ध नहीं हो; और पूर्ण के साथ वही लयबद्धता ही तुम्हें पवित्र (होली) बना सकती है।
मेरे देखे, लोभ वासना कतई नहीं है, तो तुम्हें लोभ के बारे में कुछ करना नहीं है। तुम्हें उस खालीपन को समझने की कोशिश करनी है, जिसे तुम करने की कोशिश कर रहे हो, और प्रश्न पूछो, मैं रिक्त क्यों हूं? पूरा अस्तित्त्व इतना भरा है, मैं क्यों रिक्त हूं? शायद मैं मार्ग से भटक गया हूं। मैं ठीक दिशा मैं यात्रा नहीं कर रहा हूं। मैं अस्तित्त्वगत नहीं रह गया हूं, यही मेरे खालीपन कारण है।’
तो अस्तित्त्वगत हो, अपने को छोड़ दो, और मौन में, शांति में, ध्यान में अस्तित्त्व के करीब आओ। और एक दिन तुम देखोगे कि तुम इतने भर गये हो, लबालब भर गये हो कि उल्लास, आनन्दमयता, आशीष तुमसे छलक कर बह रहे हैं। तुम्हारे पास ये सब इतने ज्यादा हो गये हैं कि तुम इन्हें पूरी दुनियां को दे सकते हो और फिर भी ये चुकेंगे नहीं।
उस दिन, पहली बार, तुम कोई लोभ नहीं महसूस करोगे-पैसे के लिए, भोजन के लिए, वस्तुओं के लिए, किसी भी चीज के लिए। तुम जीआगे बिना किसी लोभ के जो पूरा नहीं होता, बिना किसी घाव के जो भरता नहीं, तुम जीओगे स्वाभाविक होकर और जिस चीज की जरुरत होगी, वह तुम्हें मिलेगी।
हर व्यक्ति किसी न किसी रूप में हीन महसूस करता है। और कारण यह है कि हम स्वीकार नहीं करते कि हर व्यक्ति अनूठा है। श्रेष्ठता और हीनता का कोई सवाल नहीं है। हर व्यक्ति अपने जैसा आप ही है। तुलना का प्रश्न ही नहीं उठता।
हमनें लोगों को जैसे वे हैं वैसे ही स्वयं को स्वीकार करने नहीं दिया है। जिस पल तुम स्वयं को जैसे तुम हो वैसे ही स्वीकार करते हो, बिना किसी तुलना के, सारी श्रेष्ठता और सारी हीनता विदा हो जाती है। स्वयं के समग्र स्वीकार में तुम हीनता, श्रेष्ठता की इन ग्रंथियों से मुक्त हो जाते हो।
अन्यथा तुम पूरी जिन्दगी उनसे पीड़ित रहोगे।
और मैं उस व्यक्ति की कल्पना नहीं कर सकता, जिसके पास इस जगत में सब कुछ हो। लोगों ने कोशिश की है और बुरी तरह असफल हुए हैं।
बस स्वयं हो जाओ, और वही पर्याप्त है।

सूरज ने तुम्हें स्वीकार किया है, चांद ने तुम्हें स्वीकार किया है, वृक्षों ने तुम्हें स्वीकार किया है, सागर ने तुम्हें स्वीकार किया है, पृथ्वी ने तुम्हें स्वीकार किया है। और अधिक तुम क्या चाहते हो?
तुम इस पूरे अस्तित्त्व द्वारा स्वीकार किये गये हो।
इस बात का आनन्द मनाओ!
समर्थन मिलना और मान्य किया जाना हर व्यक्ति की जरुरत है।
हमारे पूरे जीवन का ढांचा ऐसा है कि हमें सिखाया जाता है कि जब तक मान्यता न हो, हम कुछ नहीं हैं, हमारी कोई कीमत नहीं है। हमारा काम महत्त्वपूर्ण नहीं है, बल्कि मान्यता। और वह चीजों को उलटा कर देना है। हमारा काम में महत्त्वपूर्ण होना चाहिये कि वह अपनेआप में एक आनन्द हों। तुम्हें इसलिये काम नहीं करना चाहिए कि मान्यता मिले, बल्कि इसलिये कि सृजनात्मक होना तुम्हारा आनन्द है। तुम काम को काम के लिये ही प्रेम करते हो। तुम काम करो यदि तुम्हें उसे प्रेम हो।
मान्यता की मांग मत करो। यदि वह मिलती है, उसे सहजता से स्वीकार करो। यदि वह नहीं मिलती, उसके बारे में सोच-विचार मत करो। तुम्हारी परितृप्ति तो स्वयं काम में ही होनी चाहिए।
और यदि सभी लोग यह सरल सी कला सीख लें- अपने काम को प्रेम करने की, वह चाहे जो भी काम हो, बिना किसी मान्यता की मांग किये उसका आनन्द लेना- तो यह दुनिया ज्यादा सौंदर्यपूर्ण और उत्सवपूर्ण होगी; अन्यथा इस दुनिया ने तुम्हें एक दुर्भाग्यपूर्ण ढांचे में फंसा रखा है। जो तुम करते हो वह इसलिए नहीं अच्छा है कि तुम उसे प्रेम करते हो, कि तुम उसे ठीक से करते हो, बल्कि इसलिए कि दुनिया उसे मान्यता देती है, उसके लिये पुरस्कार देती है, तुम्हें स्वर्ण-पदक देती है, नोबल प्राइज देती है।
उन्होंने सृजनात्मकता के समूचे अंतस्थ मूल्य को खत्म कर दिया है- क्योंकि तुम लाखों लोगों को तो नोबल प्राइज नहीं दे सकते। और तुमने हर व्यक्ति में मान्यता प्राप्त करने की आकांक्षा जगा दी है, तो कोई व्यक्ति अपने काम का ही आनन्द लेते हुये, शांति से, मौन से काम ही नहीं कर सकता। और जीवन छोटी-छोटी बातों से बना है। उन छोटी बातों के लिये कोई इनाम, कोई पदवी सरकार द्वारा नहीं दी जाती, न हीं विश्वविद्यालयों द्वारा कोई मानद उपाधि दी जाती है।
जिस व्यक्ति को अपनी निजता का कोई भी अहसास है, वह अपने ही प्रेम के साथ, अपने ही काम के साथ जीता है, बिना इसकी जरा भी चिंता किए कि लोग उस काम के बारे में क्या सोचते हैं।
आनन्द किसी चीज को पूरा करने में नहीं है; आंनद इस बात में है कि तुमने उसकी आकांक्षा की, कि तुमने अपनी पूरी त्वरा से उसकी आकांक्षा की, कि जब तुम काम कर रहे थे तुम सब कुछ भूल गये थे, पूरी दुनिया को; केवल वही काम ही तुम्हारे प्राणों का एक मात्र केन्द्र हो गया था। और उसी में तुम्हारा आनन्द और तुम्हारा पुरस्कार है- पूरा करने में नहीं, किसी बात के स्थायी होने में नहीं।
इस अस्तित्त्व की तेज बहती धार में, हमें हर क्षण में ही छिपा उसका पुरस्कार खोज लेना होगा। जो कुछ भी हम कर रहे थे, हमनें अपनी तरफ से सर्वोतम रूप से किया, हमने आधे-आधे मन से नहीं किया। हम कुछ पीछे बचा कर नहीं रख रहे थे, हम उस कृत्य में अपने पूरे प्राण उंडे़ल रहे थे।
वहीं हमारा आनन्द है।
यह बस एक तथ्य है कि हर व्यक्ति अनूठा है, और हर व्यक्ति की एक खास निजता है। हमें बस इस धारणा को छोड़ना पड़ेगा कि लोगों को कैसा होना चाहिये, और इसके स्थान पर इस दर्शन को स्थापित करना होगा कि लोग जैसे भी हैं, सुन्दर हैं। ऐसा होना चाहिये कि कोई सवाल ही नहीं हैं, क्योंकि हम कौन हैं किसी पर कोई ‘चाहिये’ थोपने वाले? यदि अस्तित्त्व तुम्हें वैसे ही स्वीकार करता है जैसे तुम हो, तो हम कौन होते हैं अस्वीकार करने वाले।
तो बस जरा सा रूख में बदलाहट- और यह एक बहुत आसान बात है एक बार तुम्हारे ख्याल में आ जाए तोः हर व्यक्ति अनूठा है, हर व्यक्ति जैसा है वैसा है, और उसे वैसा ही होना चाहिये जैसा वह है। स्वीकृत होने के लिए उसे

कोई अन्य होने की जरुरत नहीं हैं। वह पहले ही स्वीकृत है। इसी को मैं कहता हूं निजता का सम्मान, लोगों का सम्मान- जैसे वे हैं।
पूरी दुनिया इतना प्रेमपूर्ण आनंदमय स्थान हो सकती है यदि हम लोगों को वैसा ही स्वीकार कर सकें जैसे वे हैं।
साम्यवाद जो प्रेम से, समझ से, उदारता से आता हैं, सच्चा होगा।
साम्यवाद जो जबरदस्ती के माध्यम से आये, वह झूठा होगा।
और इस दुनिया में एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं है, चाहे वह कैसा भी गरीब क्यों न हो, जिसके पास योगदान करने के लिए कुछ न हो।
क्यों न ऐसे जीवन का निर्माण करो जहां पैसा या पद का अनुगमन न पैदा करता हो, बल्कि बस हर व्यक्ति को और-और अवसर प्रदान करता हो।
सत्तात्मक लोग ही वे लोग हैं जो हीनता की ग्रंथि से ग्रसित हैं।
अपनी हीनता को छिपाने के लिये वे अपनी श्रेष्ठता को थोपते हैं। वे सिद्ध करना चाहतें हैं, कि वे कुछ हैं, कि उनका शब्द ही सत्य है, कि उनका शब्द ही नियम है। लेकिन गहरे में वे बड़े हीन प्राणी हैं।
प्रकृति में निश्चित ही कोई पदानुगमन नहीं है। पदानुगमन मनुष्य के मन का खेल है, क्योंकि बिना पदानुगमन के अहंकार को पोषण नहीं मिलता; वह मर जाता है।
प्रकृति में, हर चीज को अवसर है, स्थान है, और वहां कोई भी मालिक नहीं बन रहा होता है। कोई भी मालिक नहीं है और कोई भी गुलाम नहीं हैं। प्रकृति करीब-करीब एक सजीव इकाई की तरह काम करती है जिसमें निजता तो नष्ट नहीं होती, लेकिन जिसमें अहंकार को भी पनपने का मौका नहीं है। इसलिये वृक्षों में अहंकार नहीं है, पक्षियों में अहंकार नहीं है। किसी भी पशु में अहंकार नहीं है। यह समस्या केवल मनुष्य के साथ ही पैदा होती है।
यह मनुष्य का सौभाग्य है- केवल मनुष्य का सौभाग्य है- अकेला होना, पूरी दुनिया के खिलाफ अकेला खड़ा होना यदि उसे लगता है कि वह सत्य के साथ है। यदि तुम्हें लगता है कि यही है वह रास्ता जो स्वतंत्रता की ओर ले जाता है, तो किसी भी तरह की जिम्मेदारी स्वीकार लो। तब वे जिम्मेदारियाँ तुम पर बोझ नहीं बनने वाली हैं। वे सब तुम्हें ज्यादा परिपक्व, ज्यादा केंद्रित, ज्यादा सदृढ़, ज्यादा सुन्दर व्यक्ति बना देने वाली हैं।
तुम्हारे हाथ में केवल एक ही क्षण होता है-वास्तविक क्षण! और यह क्षण तुम्हें दोबारा नहीं मिलेगा। या तो तुम इसे जीओ या तुम इसे अनजीया छोड़ दो। हर बच्चा इसे समझता है कि वह दुनिया को अपने मां-बाप से भिन्न दृष्टि से देखता है। जहां तक देखने का सवाल है, यह नितांत सुनिश्चत बात है।
उसके मूल्य भिन्न हैं। वह समुद्र-तट सीपें इकट्ठी कर सकता है और मां- बाप कहेंगे, फेंको इन्हें। क्यों तुम अपना समय नष्ट कर रहे हो? और उसके लिए वे इतनी सुन्दर थीं।
वह इस भेद को देख सकता हैं। वह देख सकता है कि उनके मूल्य भिन्न हैं। मां-बाप पैसों के पीछे भाग रहे हैं; वह तितलियां जमा करना चाहता है। वह समझ नहीं पाता कि उनका पैसों में इतना रस क्यों है? क्या करोगे तुम पैसों का? और उसके मां-बाप की समझ में नहीं आता कि वह तितलियों का अथवा इन फूलों का क्या करेगा?
हर बच्चे को पता चल जाता है कि भेद तो है। समस्या केवल यह है कि वह यह प्रगट करने में डरता है कि वह सही है।
जहां तक उसकी बात है, उसे अकेला छोड़ दिया जाना चाहिये। यह बस थोड़े से साहस की बात है- और साहस की बच्चों में कमी है ऐसा भी नहीं, बात केवल इतनी है कि सारे समाज की व्यवस्था ऐसी है कि बच्चे में साहस जैसा सुन्दर गुण भी निन्दित किया जाएगा।
यदि मां-बाप सचमुच ही बच्चों को प्रेम करते हैं तो वे उन्हें साहसी होने में मदद करेंगे, उनके विपरीत जाने में भी साहसी।
वे उन्हें शिक्षकों के विपरीत, समाज के विपरीत, किसी भी उस व्यक्ति के विपरीत जाने के लिए साहसी होने में मदद करेंगे, जो उनकी निजता को नष्ट करने वाला हो।

याद रहे, समझौता कभी मत करना। समझौता मेरी जीवन दृष्टि के सर्वथा खिलाफ है।
तुम लोगों को देखो, वे दुःखी हैं क्योकि उन्होंने हर बात में समझौता किया है, और वे स्वयं को माफ नहीं कर सकते क्योंकि उन्होंने समझौता किया है। वे जानते हैं कि वे दुःसाहस कर सकते थे, लेकिन वे कायर सिद्ध हुये। वे अपनी ही नजरों में गिर गये हैं, उन्होंने आत्म-सम्मान खो दिया है। समझौते का यही परिणाम होता है।
समझौता क्यों करना? हमारे पास खोने को क्या है? इस छोटे से जीवन में उतनी समग्रता से जीओ जितना संभव हो। अति तक जाने से भी मत डरो। तुम समग्र से ज्यादा कुछ हो ही नहीं सकते, वह अंतिम रेखा है। और समझौता मत करो। तुम्हारा पूरा मन समझौते के पक्ष में बोलेगा, क्योंकि वही ढंग है जिस प्रकार हमारा लालन-पालन हुआ है, जिस प्रकार हम संस्कारित किये गये हैं। ”समझौता’ हमारी भाषा के सर्वाधिक कुरुप शब्दों में से है। इसका अर्थ होता है, आधा मैं छोड़ता हूं, आधा तुम छोड़ो; आधे पर मैं राजी होता हूं, आधे पर तुम राजी होओ। लेकिन क्यों? जब तुम्हें पूरा ही मिल सकता है, जब तुम केक खा भी सकते हो और रख भी सकते हो, तो समझौता क्यों? बस जरा सी निर्भिकता, बस जरा सा दुःसाहस; और वह भी केवल शुरू में। एक बार तुमने समझौता न करने के सौंदर्य को और उससे आनेवाली गरिमा को, अखंडता और निजता को तुमने अनुभव कर लिया तो पहली बार तुम्हें महसूस होगा कि तुम्हारी जड़े हैं, कि तुम उस केन्द्र से जीते हो जो तुम्हारा अपना है।
दुःखी व्यक्ति को आसानी से गुलाम बनाया जा सकता है। आनन्दित व्यक्ति, हंसता-खेलता व्यक्ति गुलाम नहीं बनाया जा सकता।
काम (सेक्स) जीवन का प्रारंभ है और मृत्यु उसी जीवन का अंत है; तो वे एक ही ऊर्जा के दो छोर हैं, एक ही ऊर्जा के दो ध्रुव हैं। उन्हें तोड़ा नहीं जा सकता।
शायद काम (सेक्स) मृत्यु है किश्तों में।
और मृत्यु काम (सेक्स) है थोक में।
लेकिन निश्चित ही दोनों किनारों पर एक ही ऊर्जा कार्यरत है।
क्यों न ऐसे जीवन का निर्माण करें जहां काम (सेक्स) कड़वे अनुभव पैदा न करे, ईर्ष्या, असफलताएं; जहां काम (सेक्स) बस एक मौज-मजा भर रहे- किसी अन्य खेल से ज्यादा नहीं, बस एक जैविक खेल। तुम टेनिस खेलते हो; उसका यह अर्थ तो नहीं कि अपने पूरे जीवन तुम्हें एक ही साथी के संग टेनिस खेलना है।
जीवन ज्यादा समृद्ध हाना चाहिये। केवल थोड़ी समझ की जरुरत है, और प्रेम समस्या नहीं रह जाएगा, काम (सेक्स) वर्जना नहीं रह जाएगा।
मन बस अतीत की स्मृतियों का एक संग्रह भर है, और उन्हीं स्मृतियों के कारण भविष्य के संबंध में कल्पनाओं का संग्रह है।
जीवन में प्रत्येक अवसर का उपयोग अपनी बुद्धिमत्ता को, अपनी चेतना को विकसित करने के लिये करो।
साधारणतः हम क्या करते हैं कि प्रत्येक अवसर का उपयोग अपने लिये नर्क निर्मित करने में करते है। केवल तुम ही दुखी होते हो, और फिर अपने दुःख के कारण तुम औरों को दुःखी करते हो।
और जब इतने सारे लोग साथ-साथ रहते हों, और वे सब एक-दूसरे के लिये दुःख निर्मित करें, तो वे गुणा होते जाते हैं। इसी तरह पूरी दुनिया एक नर्क बन गई है।
यह तत्क्षण बदला जा सकता है, बस केवल मूलभूत बात को समझने की जरूरत हैः बुद्धिमत्ता के बिना कोई स्वर्ग नहीं है।
मेरे अनुसार मां-बाप का काम बच्चों को विकसित होने में मदद करना नहीं है; वे तुम्हारे बिना भी विकसित हो जाएंगे।
तुम्हारा काम है उसे सहारा देना, पोषण देना, मदद करना जो अपने आप ही विकसित हो रहा है, निर्देश मत दो और आदर्श मत दो। उन्हें यह न कहो कि क्या सही है और क्या गलत है- उन्हें अपने अनुभव द्वारा ही उसका पता करने दो।

यह पूरी धारणा ही कि बच्चे तुम्हारे मिल्कियत हैं, गलत है। वे तुमसे पैदा होते है, लेकिन वे तुम्हारे नहीं हैं। तुम्हारे पास एक अतीत है, उनके पास केवल एक भविष्य है।
वे तुम्हारे अनुसार नहीं जीने वाले हैं। तुम्हारे अनुसार जीना प्रायः
न जीने के बराबर होगा। उन्हें अपने स्वयं के अनुसार जीना है- स्वतंत्रता में, दायित्व मैं, खतरे में, चुनौती में।
एक बार तुम्हें यह समझ में आ जाए, कि बच्चे तुम्हारे नहीं हैं, कि वे अस्तित्त्व के हैं और तुम केवल एक मार्ग रहे हो, तो तुम्हें अस्तित्त्व के प्रति धन्यवाद से भर उठने के अलावा कोई उपाय न होगा कि उसने तुम्हें कुछ सुन्दर बच्चों के आने के लिए मार्ग के रूप में चुना है। लेकिन तुम्हें उनकी संभावनाओं में, विकास में दखल नहीं देना है। तुम्हें अपने आपको उन पर थोपना नहीं है।
वे उस समय में नहीं जीने वाले हैं जिस में तुम जीये हो, वे उन्हीं समस्याओं का सामना नहीं करने वाले हैं जिनका सामना तुमने किया है। वे किसी दूसरी दुनिया के हिस्से होंगे। उन्हें इस दुनिया, इस समाज, इस समय के लिये तैयार मत करो, क्योंकि तब तुम उनके लिये मुसीबत खड़ी कर रहे होगे। वे स्वयं को अनुपयुक्त, अयोग्य पाएंगे।
क्रूरता एक गलतफहमी है। यह मृत्यु के भय से हमारे भीतर पैदा होती है। हम मरना नहीं चाहते, इसलिये इसके पहले कि कोई तुम्हें मार दे तुम उसे मार देना चाहोगे- क्योंकि बचाव का सर्वश्रेष्ठ तरीका है आक्रमण। और नहीं जानते कि कौन तुम पर हमला कर देनेवाला है।
पशुओं के राज्य में, मनुष्य के जगत में बड़ी प्रतिस्पर्धा है, तो लोग बस हमला किए ही चले जाते है बिना फिकर किए कि किस पर वे हमला कर रहे हैं, अथवा कि क्या वह सचमुच में हम पर हमला करने वाला था। लेकिन इसे जानने का कोई उपाय भी नहीं है- तो मौका न लेना ही बेहतर है।
और जब तुम किसी पर हमला करते हो, धीरे-धीरे तुम्हारा हृदय कठोर से कठोर होता जाता है, और तुम हमला करने में रस लेने लगते हो। यह घटना पशु-जगत में देखी जा सकती है, क्योंकि भोजन के लिये, सत्ता के लिये, वही प्रतिस्पर्धा ... ।
क्रूरता और कुछ नहीं, प्रथम होने की प्रतिस्पर्धात्मक भावना है। यदि उसका मतलब हिंसा हो तो हिंसा सही; लेकिन प्रथम तो होना ही है। यही पशुओं में है, यही मनुष्य में है। लेकिन प्रथम होने की यह दौड़ क्यों?
उसका अस्तित्त्वगत कारण मृत्यु है।
क्रूरता तभी खत्म हाती है- और इसी में से मुझे सूत्र मिला कि क्रूरता है क्यों- जब तुम जानते हो कि मृत्यु नहीं है।
जब तुम अपने भीतर किसी अमृत तत्त्व का अनुभव करते हो, तभी क्रूरता विदा हो जाती है। तब फिर कोई फर्क नहीं पड़ता; तुम्हें दौड़ने की जरूरत नहीं है, तुम दूसरे को अपने से आगे निकल जाने दे सकते हो क्योंकि उस बेचारे को पता नहीं है कि जगत अनंत है, जीवन अनंत है।
किसी चीज को चूकने का कोई उपाय नहीं; यदि वह आज नहीं होती, तो कल होगी। लेकिन तुम किसी भी चीज से चूक नहीं सकते यदि तुम समझते हो।
दरअसल लड़ने में और एक-दूसरे के प्रति क्रूर होने में तुम बहुत कुछ खो सकते हो, क्योंकि यह प्रक्रिया ही तुम्हें कठोर बना देगी, तुम्हारे हृदय को एक पत्थर में बदल देगी। और हृदय यदि पत्थर बन गया हो तो वह उस सबसे चूकने वाला है जो भी श्रेष्ठ है, जो भी सुंदर है, जो भी आनंदपूर्ण है। पशुओं को समझाना कठिन है। लेकिन असली समस्या तो यह है कि मनुष्य को समझाना कठिन है कि प्रतिस्पर्धा के जरिए, हिंसक महत्त्वकांक्षा के जरिए, सब कहीं प्रथम पहुंचने के जरिए तुम एक विक्षिप्त दुनिया पैदा कर रहे हो जहां कोई किसी चीज का आनन्द नहीं लेता और हर व्यक्ति दीन रह जाता है। लोगों को समझाने का एक ही तरीका है, उन्हें अपने अमृतत्त्व को महसूस करने में मदद पहुंचाना, और तुरंत सारी क्रूरता विदा हो जायेगी। यह जीवन का छोटा होना है जो मुसीबत पैदा कर रहा है। यदि तुम्हारे दोनों छोरों पर अनंत हो- अतीत और भविष्य- तो जल्दी में होने की कोई जरूरत नहीं है।

प्रतिस्पर्धा तक की कोई जरूरत नहीं है। जीवन इतना अधिक और इतना लबालब है, तुम उसे चुका नहीं सकते।
जो जीवन के संबंध में, जीने के संबंध में, प्रेम के संबंध में केवल सोचना चाहते हैं- उनके लिये अतीत और भविष्य बिल्कुल ठीक है, क्योंकि वे उनको सोचने के लिए अपार विस्तार देते हैं।
वे अपने अतीत को सजा सकते हैं, उसे जितना सुन्दर बनाना चाहें बना सकते हैं- यद्यपि उन्होंने उसे जीया नहीं; जब वह मौजूद था तब वे वहां न थे। तो ये सब केवल छायाएं हैं, प्रतिबिम्ब है। वे लगातार दौड़ रहे थे, और दौड़ते-दौड़ते ही उन्होंने कुछ चीजें देखी हैं जिन्हें वे सोचते हैं कि उन्होंने जीया है।
अतीत में मृत्यु ही वास्तविकता है, जीवन नहीं।
भविष्य में भी, केवल मृत्यु ही वास्तविकता है, जीवन नहीं।
जो जीने से अतीत में चूक गये हैं, वे उस अन्तराल को भरने के लिये अपने- आप ही भविष्य के सपने देखने लगते हैं। उनका भविष्य उनके अतीत का प्रक्षेपण मात्र है। जो कुछ भी वे अतीत तें चूक गये हैं, उसी की आशा वे भविष्य में कर रहे हैं; और दो ऐसे समय के बीच, जिनका अस्तित्त्व ही नहीं है, एक छोटे से क्षण का अस्तित्त्व है, जो कि जीवन है।
समय के तीन काल माने गये हैं- भूत, वर्तमान, भविष्य, जो कि गलत है।
समय केवल भूत और भविष्य है।
यह जीवन है जिसका हिस्सा वर्तमान है।
तो जो जीना चाहते हैं, उनके लिये इस क्षण को जीने के सिवाय अन्य कोई उपाय नहीं हैं।
केवल वर्तमान ही अस्तित्त्वगत है।
अतीत केवल स्मृतियों का संग्रह है, और भविष्य केवल तुम्हारी कल्पना; तुम्हारे सपनों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।
वास्तविकता अभी, यहीं है।
वर्तमान का समय से कोई संबंध नहीं है। यदि तुम केवल यहां इस क्षण में हो, तो समय है ही नहीं, परम मौन है, परम शांति है, कोई हलन-चलन नहीं; कुछ भी चल नहीं रहा, सब कुछ अचानक ठहर गया है।
वर्तमान तुम्हें जीवन के जल में गहरा गोता लगाने का अथवा जीवन के आकाश में ऊंची उड़ान भरने का अवसर देता है।
लेकिन दोंनों ओर खतरे हैं- ‘अतीत और भविष्य’ मनुष्य की भाषा के दो सर्वाधिक खतरनाक शब्द हैं। अतीत और भविष्य के बीच, वर्तमान में जीना तनी हुई रस्सी पर चलने जैसा है; दोनों तरफ खतरें हैं।
लेकिन एक बार तुमने वर्तमान के रस का स्वाद ले लिया, तो तुम खतरों की परवाह नहीं करते। एक बार तुम जीवन के साथ लयबद्धता में हो गये कि फिर किसी बात से फर्क नहीं पड़ता।
और मेरे देखे, जीवन ही सब कुछ है।
जो जीना चाहते हैं- उसके बारे में सोचना नहीं, प्रेम करना चाहते हैं; उसके बारे में सोचना नहीं, बल्कि होना चाहते हैं; उसके बारे सिद्धांत नहीं- उनके लिए दूसरा कोई विकल्प नहीं है बजाय वर्तमान के क्षण का रसास्वादन करने के। उसे पूरी तरह निचोड़ लो, क्योंकि वह फिर वापस नहीं आनेवाला है। एक बार गया कि वह सदा-सदा के लिये गया।
जीवन उसी विशेष के विस्तार में फैला है; मृत्यु एक क्षण में घटती है। वह इतनी घनीभूत है कि यदि तुमने अपने जीवन को ठीक से जीया है, तो तुम मृत्यु के रहस्य में प्रवेश करने में समर्थ होओगे और मृत्यु का रहस्य यह है कि वह केवल आवरण है। भीतर तुम्हारा अमृतत्त्व है, तुम्हारा शाश्वत जीवन।
मैं भविष्य की ज्यादा नहीं सोचता क्योंकि भविष्य वर्तमान से पैदा होता है। यदि हम वर्तमान को संभाल सकें तो भविष्य अपनेआप संभल गया। भविष्य कहीं शून्य से नहीं आनेवाला, वह इसी क्षण में से पैदा होने वाला है। अगला क्षण इसी क्षण में से पैदा होगा।

यदि यह क्षण सुन्दर है, शान्त है, आनन्दपूर्ण है, अगला क्षण और ज्यादा शान्त, और ज्यादा आनन्दमय होने को बाध्य है।
मेरे अनुसार गंभीरता एक रोग है; और विनोदप्रियता तुम्हें ज्यादा मानवीय बनाती है, ज्यादा विनम्र बनाती है। मेरे अनुसार विनोदप्रियता धार्मिकता का एक अत्यावश्यक अंग है।
मनुष्य को प्रकृति के पार जाने की जरूरत नहीं है। मैं तुमसे कहता हूं, मनुष्य को प्रकृति को परिपूर्ण करना है- जो कोई पशु नहीं कर सकता है और वही फर्क है।
तुम प्राकृतिक प्राणी के रूप में पैदा हुए हो, तुम स्वयं से ऊंचे नहीं उठ सकते। यह अपने ही पैर पकड़कर अपने को ऊपर खींचने जैसा है। तुम थोड़ा-बहुत उचक सकते हो, लेकिन देर-अबेर तुम जमीन पर गिरने वाले हो और हो सकता है कुछ हड्डियां तोड़ लो। तुम उड़ नहीं सकते।
और यही किया जाता रहा है। लोग स्वयं को प्रकृति से ऊपर उठाने का प्रयास करते रहे हैं। जिसका मतलब स्वयं से ऊपर उठने का प्रयास करते रहे हैं। लेकिन वे प्रकृति से भिन्न नहीं हैं।
मनुष्य के पास क्षमता है, बुद्धिमत्ता है, स्वतंत्रता है, अन्वेषण करने की- और यदि तुमने प्रकृति का अन्वेषण पूरी तरह कर लिया, तो तुम घर आ गये।
प्रकृति तुम्हारा घर है।
यह जीवन के सारभूत नियमों में से एक है कि जो भी श्रेष्ठतर है वह बहुत कोमल है। वृक्ष की जड़ें बहुत मजबूत होती हैं, लेकिन फूल नहीं। फूल बहुत कोमल हैं- मात्र तेज हवा का एक झोंका और फूल नष्ट हो सकता है।
यही मनुष्य की चेतना के बारे में सच है। घृणा बहुत मजबूत है, लेकिन प्रेम नहीं। प्रेम बस फूल जैसा है- जो किसी भी पत्थर द्वारा आसानी से कुचल जाता है, किसी भी पशु द्वारा नष्ट हो जाता है।
जीवन के श्रेष्ठ मूल्यों की रक्षा करनी होती है।
निम्नतर मूल्यों की अपने आप में ही एक प्रकार की सुरक्षा है।
एक पत्थर की रक्षा करने की जरूरत नहीं पड़ती, लेकिन उसी के बगल की झाड़ी में गुलाब की सुरक्षा करनी ही पड़ेगी। पत्थर मृत है, वह और अधिक मृत नहीं हो सकता। उसे सुरक्षा की जरूरत नहीं है।
लेकिन गुलाब इतना जीवंत है, इतना सुंदर, इतना रंगीन, इतना आकर्षक। वही खतरा है- वही उसकी शक्ति है। लेकिन वही खतरों को आमंत्रण भी है। कोई भी उसे तोड़ सकता है। पत्थर को तो कोई नहीं उठायेगा, लेकिन फूल तोड़ा जा सकता है। संभोग उच्चतम शिखर पर ही किया जाना चाहिये- और उसके लिये एक खास अनुशासन की जरूरत है। लोगों ने अनुशासन का उपयोग संभोग न करने के लिए किया है। मैं तुम्हें ठीक प्रेम करने के लिए अनुशासन सिखाता हूं, ताकि तुम्हारा प्रेम मात्र एक जैविक कृत्य न हो, जो कभी भी तुम्हारे मनोवैज्ञानिक जगत तक नहीं पहुंचता।
प्रेम की तो तुम्हारे आध्यात्मिक जगत तक भी पहुंचने की क्षमता है और अपने उच्चतम शिखर पर वह तुम्हारे आध्यात्मिक जगत तक पहुंचेगा।
आर्गाज्म; (शिखरोन्माद) बच्चे पैदा करने के लिये जरूरी हो एैसी कोई बात नहीं है। यह चेतना के उच उच्चतर विकास के लिये झरोखा खोलने के लिए है।
आर्गाज्म (शिखरोन्माद) का अनुभव हमेशा गैर कामुक है।
यदि तुम काम द्वारा भी उसे उपलब्ध हो तो भी स्वयं उसमें कामुकता नहीं है।
इससे यह अंतदृष्टि मिलती है कि उस तक पहुंचने की संभावनाएं काम के अतिरीक्त और मार्गों से भी होंगी, क्योंकि वह स्वयं गैर-कामुक है, इसलिए आवश्यक नहीं कि कामुकता ही एकमात्र उपाय हो।
जिसने भी पहली बार यह अनुभव किया, उसने यह निष्कर्श निकाला होगा कि आर्गाज्म तक पहुंचने के अन्य उपाय भी हो सकते हैं। क्योंकि काम उसका आवश्यक अंग नहीं है। उस में काम का कोई प्रभाव, कोई रंग नहीं छूटता।
फिर उसने गौर किया होगा कि यह कैसे घटता है, और फिर चीजें बड़ी साफ हैंः जिस क्षण आर्गाज्म (शिखरोन्माद) घटता है, समय ठहर जाता है, तुम समय के बारे

में भूल जाते हो। तुम्हारा मन ठहर जाता है, विचार रुक जाते हैं। एक गहन शांति और एक गहन होश होता है।
इस अनुभव से गुजरता हुआ कोई भी निरिक्षण करनेवाला स्वाभाविक रूप से सोचेगा, यदि ये सारी बातें बिना काम में गये पायी जा सकें- होश, निर्विचार और समयरहितता- तो तुम कामुकता से बचकर भी आर्गाज्मवाली स्थिति में पहुंच सकते हो। और मेरी समझ है कि इसी तरह मनुष्य ने पहली बार ध्यान खोजा होगा। स्वतंत्रता तो बस तुम्हें हर उस बात के लिये नितांत रूप से जिम्मेदार बनाती है जो तुम हो अथवा जो तुम होने वाले हो।
लोग हैं जो क्रोधित हो जाते हैं। ये ही वे लोग हैं जो क्रांतियां करते हैं, समाज में, राज्य में बदलाहट करते हैं। लेकिन उनकी सारी क्रांतियां असफल रही हैं, क्योंकि क्रोध से पैदा हुई कोई भी बात अज्ञान से आ रही है। उससे कोई भी असली बदलाहट नहीं होने वाली है।
क्रोध द्वारा कोई भी बदलाहट भले के लिये नहीं हो सकती।
मैं चाहता हूं कि तुम एक बात हमेशा याद रखो- कि दुःख और कुछ नहीं बल्कि शीर्षासन करता हुआ क्रोध है। वह भिन्न नहीं है, वह दमित क्रोध ही है। यदि तुम इस का विश्लेषण करो तो तुम इस तथ्य को देख सकोगे। दुःख आसानी से क्रोध में बदल सकता है; इसी तरह क्रोध दुख में बदल सकता है। ये दो भिन्न बातें नहीं हैं... संभवतः एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
दुनिया दुखी है, पीड़ा में है। लोगों के हृदयों में गहन पीड़ा है। लेकिन तुम्हें इस बात के लिए दुःखी होने की जरूरत नहीं है; इस सीधे से कारणवश कि दुःखी होकर तुम भी उन्हीं में शामिल हो जाते हो; तुम दुख को और ज्यादा कर देते हो। यह कोई मदद न हुई।
यह ऐसे ही है जैसे कि लोग रुग्ण हैं, और तुम उनकी रुग्णता देखते हो और तुम भी रुग्ण बन जाते हो। तुम्हारी रुग्णता उन्हें स्वस्थ नहीं बनाने वाली; यह तो बस और रुग्णता पैदा करना है। उनके दुःख को महसूस करने का अर्थ होता है कारणों की खोज कि क्या है जो दुःख और पीड़ा पैदा कर रहा है? और फिर उन कारणों को मिटाने के लिए उनकी मदद करना।
और साथ ही साथ तुम्हें जितना संभव हो उतना आनंदित रहना है, क्योंकि तुम्हारा आनंद ही उन्हें मदद करनेवाला है- तुम्हारा विषाद नहीं। तुम्हें प्रसन्नचित्त रहना ही है। उन्हें पता चलना चाहिये कि इस दुःखी दुनिया में भी प्रसन्नचित्त होना संभव है... ।
क्रोध हमेशा कमजोरी का लक्षण है।
संकट के क्षण तुम्हें वास्तविकता का पता देते हैं जैसी वह है। वह हमेशा ही कोमल है, प्रत्येक व्यक्ति हमेशा ही खतरे में है। बात इतनी ही है कि सामान्य समय में तुम गहरी नींद में सोए होते हो, तो तुम इसे देख नहीं पाते। तुम सपने देखे चले जाते हो, आनेवाले दिनों के लिए भविष्य के लिए सुन्दर-सुन्दर बातों की कल्पनाएं किये चले जाते हो।
और उन क्षणों में जब खतरा करीब होता है, तब अचानक तुम्हें बोध होता है कि हो सकता भविष्य न भी हो, कल न भी आये, कि केवल यही क्षण तुम्हारे पास है। संकट के क्षण बड़े उद्घाटक होते हैं। वे कोई नई बात दुनिया में नहीं लाते; वे तुम्हें केवल दुनिया जैसी है उसके बारे में सचेत करते हैं। यदि तुम इसे नहीं समझते, तो तुम पागल हो सकते हो; यदि तुम इसे समझते हो, तो तुम संबुद्ध हो सकते हो।
चिंता करना किसी काम का नहीं है क्योंकि उससे तुम केवल इस क्षण को चूक रहे होगे, और तुम किसी को मदद न कर पाओगे। तो यही वह राज है कि कैसे खतरे के पार जाना।
राज यह हैः और-और भरपूर जीना शरू करो, और-और ज्यादा समग्रता से, होशपूर्वक ताकि तुम अपने भीतर कुछ ऐसा पा लो जिसे मृत्यु नहीं छू पाती।
यही एक मात्र आश्रय है, एक मात्र सुरक्षा, एक मात्र बचाव।
तो यह सिर्फ हर बात का ठीक से उपयोग करने का सवाल है। वह जो कुछ भी है, उसका ठीक उपयोग करो।
संकट बड़ा है, खतरा बड़ा है, लेकिन अवसर भी उतना ही महान है।

वास्तविकता के विरोध में कोई भ्रम टिक नहीं सकता। वास्तविकता देर-सबेर उसे कुचल ही देने वाली है।
एक माता अथवा पिता का काम बड़ा महान है, क्योंकि वे दुनिया में एक नये मेहमान को ला रहें हैं- जिसे कुछ पता नहीं है, लेकिन जो अपने साथ कुछ संभावनायें ला रहा है। जब तक उसकी संभावनायें विकसित नहीं होती, वह दुःखी रहेगा; और कोई मां-बाप सोच भी नहीं सकते कि उनके बच्चे दुःखी रहें।
वे चाहते हैं कि सुखी हों। बात इतनी ही है कि उनकी सोच गलत है। वे सोचते हैं कि यदि उनके बच्चे डाक्टर बन जायें, प्रोफेसर बन जायें, इंजीनियर या वैज्ञानिक बन जायें, तो वे सुखी होंगे। वे जानते नहीं।
उनके बच्चे केवल तभी सुखी होंगे यदि वे वह बन जाएं जो बनने के लिये वे आये हैं। वे केवल वही बन सकते हैं जिनके बीज वे अपने भीतर लेकर आए हैं। किसी के बारे में (अच्छे-बुरे का) निर्णय लेना कुरूप है इससे लोगों को चोट पहुंचती है। एक ओर तो तुम उन को चोट पहुंचाते जाते हो, उन्हें घाव देते जाते हो, और दूसरी ओर तुम उनका प्रेम, उनका सम्मान चाहते हो। यह असंभव है। उन्हें प्रेम करो, उन्हें सम्मान दो, और शायद तुम्हारा प्रेम और सम्मान उन्हें अपनी बहुत सारी कमजोरियों को, बहुत सारी असफलताओं को बदलने में मदद कर सके क्योंकि प्रेम उन्हें नई ऊर्जा, नये अर्थ, नयी शक्ति प्रदान करेगा। प्रेम उन्हें तेज हवाओं में, उत्तप्त धूप में, घनघोर वर्षा में भी खड़े रहने के लिये नई जड़ें प्रदान करेगा।
जब भी चुनाव का सवाल हो, तो हृदय के खिलाफ बुद्धि को नहीं चुना जा सकता। हृदय से अस्तित्व के साथ तुम्हारा संबध है और मन से समाज के साथ तुम्हारा सबंध है।
यदि तुम दुःखी हो तो तुम गलत हो; यदि तुम आनन्दित हो तो तुम ठीक हो।
जब मैं कहता हूं कि प्रसन्नचित्त रहो, आनंदित रहो, इसका आनन्द मनाओ कि तुम दुःखी और पीड़ित होने की स्थिति में नहीं हो, तो इसके पीछे मेरा एक खास अभिप्राय है।
अभिप्राय यह है कि तुम्हें उन लोगों के लिये एक उदाहरण बन जाना है जो पूरी तरह भूल ही चुके हैं कि जीवन एक आनन्द भी हो सकता है। सारे अंधेरों के बावजूद तुम अभी भी अंधेरो से निर्भार रह सकते हो, तुम अभी भी नृत्य कर सकते हो। अंधेरा तुम्हारे नृत्य को नहीं रोक सकता; उसके पास रोकने की शक्ति नहीं है। मेरे अनुसार यही सच्ची सेवा है।
मन को हृदय का सेवक होने के लिए प्रशिक्षण देना चाहिये।
तर्क को प्रेम की सेवा करनी चाहिये।
और तब जीवन प्रकाश का एक उत्सव बन सकता है।
पुरानी कहावत, ‘जैसा ऊपर वैसा नीचे’ या इसका उलटा! इसमें रहस्यवाद का सारभूत सत्य समाया है। इसका अर्थ है कि न ऊपर न नीचे है, अस्तित्त्व एक है।
मन विभाजन खड़े करता है।
अस्तित्त्व अखंड है।
विभाजन हमारे प्रक्षेपण हैं, और हम इन विभाजनों से तादात्म्य जोड़ा लेते हैं कि हमारा पूर्ण से संबध छूट जाता है।
हमारा मन इस विराट अस्तित्त्व की ओर खुलने वाली एक छोटी-सी खिड़की है, लेकिन जब तुम हमेशा खिड़की में से ही देखते हो, तो खिड़की की चौखट बन जाती है। यद्यपि आकाश पर कोई चौखट नहीं है- वह असीम है- लेकिन हमारी आंखें खिड़की की चौखट को आकाश की चौखट मान लेती हैं। यह कुछ इस जैसा है जो लोग चश्मे का उपयोग करते हैं, कभी-कभार उनके साथ ऐसा होता है कि उनका चश्मा उनकी नाक पर चढ़ा और वे उसे ही ढूंढ़ रहे हैं। वे यह भी भूल जाते हैं कि चश्मे के बिना वे देख नहीं सकते, तो यदि वे ढूंढ़ रहे हैं और देख रहे हैं तो यह पक्का है कि चश्मा अपनी जगह पर है।
लेकिन यदि तुम वर्षों से चश्मे का उपयोग करते रहे हो धीरे-धीरे वे तुम्हारा अंग हो जाते हैं; वे तुम्हारी आंखें हो जाते हैं। तुम उन्हें अपने से अलग नहीं समझते। लेकिन चश्मे का हर जोड़ा देखी जाने वाली चींजों को अपना ही रंग दे सकता है। चश्मे के पीछे से देखने वाले तुम हो, चश्मे स्वयं

से नहीं देख सकते। और बाहर की वस्तुओं का वह रंग नहीं है जो चश्मा उन पर थोप रहा है, लेकिन चश्मे से तुम्हारा ऐसा तादाम्य हो गया है... ।
मनुष्य का मन भी केवल एक उपकरण है। चश्मा तो खोपड़ी के बाहर है, मन खोपड़ी के भीतर है, इसलिये तुम उसे रोज निकालकर नहीं रख सकते। और भीतर तुम उसके इतने निकट हो कि वह निकटता ही तादाम्य बन गयी है।
तो जो भी मन देखता है लगता है कि वही वास्तविकता है और मन वास्तविकता को देख नहीं सकता; मन केवल अपने पूर्वाग्रहों को ही देख सकता है। वह दुनिया के पर्दे पर अपने ही प्रक्षेपण को देख सकता है।
दुनिया में सत्य का सबसे बड़ा दुश्मन पंडित है, जानकार व्यक्ति- और सबसे बड़ा मित्र है वह जो जानता है कि वह नहीं जानता।
हमें कुछ इस तरह बताया, सिखाया, संस्कारित किया गया है कि प्रेम जैसी चीज को भी बुद्धि की बात बन जाना पड़ता है।
प्रेम मूलतः हृदय की बात है, लेकिन हमारे पूरे समाज ने हृदय से बचकर निकलने की कोशिश की है, क्योंकि हृदय तर्कसंगत नहीं है, युक्तिसंगत नहीं है और हमारे मन इस तरह की शिक्षा में प्रशिक्षित किये गये हैं कि कोई भी बात जो तर्कसंगत नहीं है वह गलत है, कोई भी अयुक्ति संगत बात गलत है, केवल तर्कपूर्ण बात सही है।
और हमारी शिक्षा के संस्कार में हृदय के लिये कोई स्थान नहीं है, वह केवल बुद्धि की है। हृदय को हमारे अस्तित्त्व से लगभग हटा ही दिया गया है, उसे मौन कर दिया गया है। उसे विकसित होने का कभी मौका ही नहीं दिया गया है, उसे अपनी संभावनाओं को वास्तविकता में बदलने का अवसर ही नहीं दिया गया है। तो बुद्धि हावी है।
जहां तक पैसों का संबंध है, जहां तक युद्ध का संबंध है, जहां तक महत्त्वकांक्षाओं का सम्बंध है, बुद्धि ठीक है, लेकिन प्रेमसंबंध में बुद्धि सर्वथा व्यर्थ है।
पैसा, युद्ध, आकांक्षा, महत्त्वकांक्षा, प्रेम को तुम इस कोटि में नहीं रख सकते।
प्रेम का तुम्हारे अस्तित्त्व में अलग ही स्रोत्र है जहां कोई विरोधाभास नहीं है।
वास्तविक शिक्षा केवल तुम्हारी बुद्धि को ही प्रशिक्षित नहीं करेगी, क्योंकि बुद्धि तुम्हें एक अच्छी आजीविका तो दे सकती है, लेकिन अच्छा जीवन नहीं। हृदय तुम्हें अच्छी आजीविका नहीं दे सकता, लेकिन एक अच्छा जीवन दे सकता है। और दोनों में से एक को चुनने का कोई कारण नहीं हैः बुद्धि का उपयोग उसके लिए करो जिसके लिए वह बनी है, और हृदय का उपयोग उसके लिए करो जिसके लिए वह बना है।
धर्म, राजनीतिज्ञ, व्यापारी, योद्धा सब चाहते हैं कि बुद्धि प्रशिक्षित की जाये। और हृदय तो एक बाधा हो सकता है, वह बाधा होने वाला है। यदि तुम एक सैनिक हो और यदि तुम्हारे पास हृदय है, तो तुम शत्रु की हत्या नहीं कर सकते। जिस क्षण तुम किसी की हत्या के लिये बंदुक उठाओगे, तुम्हारा हृदय कहेगा, जैसे तुम्हारी पत्नी है तुम्हारी प्रतीक्षा करती हुई- तुम्हारे बच्चे, तुम्हारी बूढ़ी मां और बूढे पिता- इस गरीब की पत्नी भी प्रतीक्षा कर रही होगी, इसके बच्चे, इसके बूढ़े मां-बाप अपने बेटे के घर लौटने की प्रतीक्षा कर रहे होंगे।
इसने तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ा है और तुम इसकी हत्या करने जा रहे हो। किसलिये? काम में तरक्की पाने के लिये?
जब तुम समाज के, एक आदर्श समाज बनने के, एक स्वर्ग बनने के बारे में सोचते हो, यह बात असंभव प्रतीत होती हैः इतने सारे द्वंद्व हैं, और उन्हें लयपूर्ण करने का कोई उपाय नहीं दिखता।
एक लयबद्ध मानव समाज संभव है, संभव होना चाहिये, क्योंकि वह प्रत्येक के विकसित होने के लिए सर्वश्रेष्ठ अवसर होगा, प्रत्येक के स्वयं होने के लिए श्रेष्ठतम अवसर होगा। प्रत्येक के लिए समृद्धतम संभावनाएं उपलब्ध होंगी।
जिस ढंग से समाज की व्यवस्था आज है, वह बड़ी ही मूढ़तापूर्ण है।

आदर्श राज्य की कल्पना करने वाले लोग (उटोपियन्स) स्वप्न द्रष्टा नहीं हैं, लेकिन तुम्हारे तथाकथित यथार्थवादी मूढ़ हैं जो उनकी निंदा करते हैं।
लेकिन एक बात पर दोनों सहमत हैं कि बदलाहट समाज में जरूरी है।
वे सब के सब समाज की फिक्र में हैं और वहीं उनकी असफलता का राज है।
जहां तक मैं देखता हूं, आदर्श समाज की कल्पना कोई न हो सकने वाली बात नहीं है- यह कुछ ऐसी बात है जो असम्भव है, लेकिन हमें कारणों की ओर जाना चाहिए, लक्षणों की ओर नहीं।
और कारण व्यक्ति में हैं, समाज में नहीं।
मनुष्य भूल ही गया है कि सच में वह कौन है?
वह अपने बारे में किसी धारणा से आत्म-सम्मोहित हो गया है, और उस धारणा को वह अपने पूरे जीवन ढोता है, बिना यह जाने कि यह धारणा वह नहीं है, बल्कि केवल छाया है। और तुम अपनी छाया को संतृप्त नहीं कर सकते।
किसी युद्ध की कोई जरूरत नहीं है, किसी झगड़े की कोई जरूरत नहीं, ईर्ष्या की जरूरत नहीं, घृणा की जरूरत नहीं। जीवन इतना छोटा है और प्रेम इतना बहुमूल्य है। और जब तुम अपने जीवन को प्रेम से, समस्वरता से, आनंद से भर सकते हो, जब तुम अपने जीवन को अपने आप में एक गीत बना सकते हो- तब यदि तुम चूकते हो, तो उसके लिए केवल तुम जिम्मेदार हो, अन्य कोई नहीं।
यह केवल समझने का सवाल है; निषेधात्मक, विनाशकारी और अंधेरों की शक्तियों द्वारा नीचे न खींच लिए जाने के लिये केवल जरा सी अंतदृर्ष्टि की जरूरत है।
जरा सी सजगता की जरूरत है अपने को सृजनात्मकता के, प्रेम के और संवेदनशीलता के प्रति समर्पित करने के लिये और इस छोटे से जीवन को गीतों की एक लड़ी बना देने के लिये- ताकि तुम अपने जीवन में नाचो और तुम्हारी मृत्यु तुम्हारे नृत्य का शिखर होगी; ताकि तुम समग्रता से जीओ और समग्रता से मरो, शिकायत के साथ नहीं, बल्कि अहोभावपूर्वक, अस्तित्त्व के प्रति धन्यवादपूर्वक। हर व्यक्ति चाहता है कि प्रेम मिले। और यह एक गलत शरूआत है। और यह इसलिये शुरू होती है क्योंकि छोटा बच्चा प्रेम नहीं कर सकता, कुछ कह नहीं सकता, कुछ कर नहीं सकता, कुछ दे नहीं सकता, वह केवल ले सकता है। छोटे बच्चे का प्रेम का अनुभव केवल पाने का है- मां से पाने का, पिता से पाने का, भाइयों से, बहनों से, अतिथियों से पाने का, अजनबी लोगों से पाने का लेकिन हमेशा पाने का ही। तो पहला अनुभव उसके गहरे अचेतन में घर कर जाता है- कि प्रेम उसे पाना है।
लेकिन समस्या खड़ी होती है क्योंकि हर कोई बच्चा रह चुका है, और सभी की वही चाह है, प्रेम पाने की कोई भी किसी और तरह से पैदा नहीं हुआ है। तो सब मांगते रहे हैं, हमें प्रेम दो और कोई देने वाला है नहीं, क्योंकि दूसरे व्यक्ति का पालन पोषण भी इसी ढंग से हुआ है।
तो थोड़े होशपूर्ण और सचेत होने की जरूरत है कि जन्म के समय की एक दुर्घटना तुम्हारे मन की सतत भावदशा नहीं बनी रह जानी चाहिए। ‘मुझे प्रेम दो,’ ऐसे मांगने के बजाय प्रेम देना शुरू करो। पाने की बात भूल जाओ, केवल दो; और मैं तुम्हें वचन देता हूं, बहुत मिलेगा तुम्हें।
विकास की प्रक्रिया दो ध्रुव के जरिए चलती काम करती है। जैसे तुम एक पैर से चल नहीं सकते, चलने के लिये तुम्हें दो पैर चाहिये, अस्तित्त्व को भी विपरीत ध्रुवों की जरूरत होती है- पुरुष और स्त्री, जीवन और मृत्यु, प्रेम और घृणा- गति पैदा करने के लिये; अन्यथा केवल मौन होगा।
एक ओर तो विपरीत तुम्हें आकर्षित करता है और दूसरी ओर तुम्हें लगता है कि तुम आश्रित हो रहे हो। और कोई भी आश्रित होना नहीं चाहता; इसीलिए प्रेमियों के बीच एक सतत संघर्ष है। वे एक-दूसरे पर हावी होने की कोशिश कर रहे हैं।
नाम प्रेम है, लेकिन खेल राजनीति का है।
पुरुष की सारी कोशिश स्त्री पर हावी होने की है, उसे हीन बनाने की रहती है, उसे विकसित न होने देने की रहती है ताकि वह मानसिक रूप से सदा अविकसित बनी रहे।

पुरुष की गुलामी से स्त्री की स्वतंत्रता, पुरुष के लिये भी स्वतंत्रता का अनुभव रहेगा।
तो मैं कहता हूं कि नारी-स्वतंत्रता आंदोलन (वूमेन्स लिबरेशन मूवमेंट) में केवल स्त्रियों की ही स्वतंत्रता नहीं है, यह पुरुष-स्वतंत्रता आंदोलन भी है; दोनों स्वतंत्र होंगे।
यह गुलामी दोनों को बांध रही है, और लगातार संघर्ष है। स्त्री ने पतियों को सताने की, तंग करने की, नीचा दिखाने की अपनी चालें खोज ली हैं; पुरुष की अपनी चालें हैं। और इन दो लड़ने वाले गुटों के बीच हम आशा करते रहे हैं कि प्रेम घट रहा है। सदियां बीत गईं, प्रेम पैदा नहीं हुआ, या कभी-कभार हो जाता है।
यह है हालत साधारण प्रेम की, जो बस नाम का प्रेम है, वास्तविकता नहीं।
यदि तुम प्रेम के बारे में मेरी दृष्टि पूछते हो... तो यह द्वंद्ववाद का, विरोध का प्रश्न ही नहीं है। स्त्री और पुरुष भिन्न और परिपूरक हैं। अकेला पुरुष आधा है, और वैसे ही स्त्री भी। केवल साथ-साथ, गहरी एकता की भावदशा में ही पहली बार वे समग्रता को, पूर्णता को अनुभव करते हैं। हजारों सालों से पुरुष ने जो स्त्री के साथ किया है, वह बस दानवतापूर्ण है। वह स्वयं को पुरुष के बराबर की सोच ही नहीं सकती। और वह इतने गहरे संस्कारों से कि यदि तुम उसे कहो भी कि वह समान है, तो वह विश्वास नहीं करने वाली। यह बात करीब-करीब उसके मन में बैठ गयी है, यह संस्कार कि वह हर बात में कम है- शारीरिक शक्ति में, बौद्धिक गुणों में।
और पुरुष ने जिसने स्त्री को इस हालत तक नीचे गिराया है, वह भी उसे प्रेम नहीं कर सकता। प्रेम केवल समानता में, मित्रता में ही हो सकता है। यदि तुम बिना ईर्ष्या के प्रेम कर सको, यदि तुम बिना मोह के प्रेम कर सको, यदि तुम किसी व्यक्ति को इतना प्रेम कर सको कि उसकी खुशी ही तुम्हारी खुशी हो, अगर वह किसी दूसरी स्त्री के साथ भी हो और खुश हो तो यह भी तुम्हें खुश करता हो क्योंकि तुम उसे इतना प्रेम करती होः उसकी खुशी तुम्हारी खुशी है। तुम खुश होगे क्योंकि वह खुश है, और उस स्त्री के प्रति अनुगृहित होगी जिसने उस व्यक्ति को आनंदित किया जिसे तुम प्रेम करती हो- तुम ईर्ष्यालु नहीं होगी। तब प्रेम शुद्धता तक पहुंचा।

प्रवचन-2
मौन का नाद, कमल में मणि
-ओशो, ओम मणि पद्मे हुम्, प्रवचन 1 (संस्करण:1988)

प्यारे ओशो,
क्या आप तिब्बती मंत्र ओम मणि पद्मे हुम पर कुछ कहने की कृपा करेंगे?

ओम मणि पद्मे हुम परम अनुभव की सुंदरतम अभिव्यक्तियों में से एक है। इसका अर्थ हैः मौन का नाद, कमल में मणि।
मौन का भी अपना नाद है, अपना संगीत है; यद्यपि बाहरी कान इसे सुन नहीं सकते। वैसे ही जैसे बाहरी आंखें इसे देख नहीं सकतीं।
हमें छह बाह्य ज्ञानेंद्रियां हैं। अतीत में मनुष्य जानता था कि उसे मात्र पांच बाह्य ज्ञानेंद्रियां हैं। छठी नई खोज है। यह तुम्हारे कान के भीतर है; इसीलिए लोग इसे पहचानने में चूक गए। यह संतुलन की ज्ञानेंद्रिय है। तुम जब उनींदे होते हो, या जब तुम किसी शराबी को चलते हुए देखते हो तो यह संतुलन की ही इंद्रिय है जो प्रभावित हुई होती है।
जैसे बाह्य की अनुभूति के लिए ये छह ज्ञानेंद्रियां हैं, ठीक वैसे ही आंतरिक को देखने के लिए, सुनने के लिए, स्पर्श करने के लिए और उसके परम संतुलन तथा सौंदर्यानुभूति के लिए भी छह आंतरिक ज्ञानेंद्रियां हैं। वह बाहरी आंखों के लिए अदृश्य है, किंतु आंतरिक आंखों के लिए नहीं। उसे तुम

बाहरी ज्ञानेंद्रियों से स्पर्श नहीं कर सकते, परंतु भीतरी ज्ञानेंद्रियां उसमें पूरी तरह डूबी हुई हैं।
ओम वह नाद है जब उसके सिवा सब कुछ तुम्हारी चेतना से खो जाता है- कोई विचार नहीं, कोई स्वप्न नहीं, कोई प्रक्षेपण नहीं, कोई अपेक्षाएं नहीं, यहां तक कि कोई एक तरंग भी नहीं, तुम्हारी चेतना की झील बस निस्तरंग है, बिल्कुल दर्पण की भांति हो गई है, उस विरल क्षण में तुम मौन का नाद सुनते हो। यह सर्वाधिक मूल्यवान अनुभूति है, क्योंकि यह न केवल आंतरिक संगीत की द्योतक है, इसकी भी द्योतक है कि भीतर का जगत समस्वरता, आल्हाद और परमानंद से परिपूर्ण है। यह सब कुछ ओम के संगीत में शामिल है।
तुम्हें उसे कहना नहीं है। अगर, तुम उसे कहते हो तो असली बात से चूक जाओगे। तुम्हें उसे सुनना होगा। तुम्हें पूरी तरह शांत होना पड़ेगा, और अचानक यह तुम्हें चारों ओर से घेर लेगा, नृत्य के रूप में। जिस क्षण तुम इसे सुनने में समर्थ हो जाओगे, उसी क्षण अस्तित्त्व के रहस्य में प्रवेश कर जाओगे। तुम इतने सूक्ष्म बन चुके होओगे कि अब पात्र हो कि सारे रहस्य तुम पर खोल दिए जाएं। जब तक तुम तैयार न हो जाओ, अस्तित्त्व प्रतीक्षा करता है।
पूरब के सभी धर्म इस बात पर सहमत हैं कि मौन की अंतिम उच्चतम दशा में जो नाद सुनाई पड़ता है वह ओम के ही समान है।
पूरब की किसी भाषा में ओम को वर्णमाला में नहीं लिखा जाता है, क्योंकि यह भाषा का अंग नहीं है। यह एक प्रतीक के रूप में लिखा जाता है। इसलिए जो प्रतीक संस्कृत में प्रयोग किया जाता है, वही प्राकृत में, पालि में और तिब्बती में- सब जगह एक ही प्रतीक- क्योंकि सभी कालों के सभी रहस्यदर्शी एक ही अनुभव पर पहुंचे हैं कि यह लौकिक जगत का हिस्सा नहीं है; इसलिए इसे स्वर्णाक्षरों में नहीं लिखा जाना चाहिए। इसका अपना ही प्रतीक होना चाहिए, जो भाषा के पार का हो।
सभी संगीत- खासकर शास्त्रीय संगीत- मौन के नाद को पकड़ने का प्रयास करते रहे हैं, ताकि वे लोग भी कुछ वैसा ही अनुभव कर सकें जिन्होंने अपनी अंतरात्मा में प्रवेश नहीं किया है। किंतु वह संगीत वैसा नहीं होता। यह बहुत दूर की प्रतिध्वनि है। यहां तक कि महान संगीतज्ञों को भी ध्वनि का उपयोग करना पड़ता है। लेकिन वह उसे कितने ही सुंदर ढंग से क्यों न व्यवस्थित करे, वह संगीत पूर्णतः मौन नहीं हो सकता। संगीतज्ञ ध्वनियों के बीच मौन का अंतराल पैदा करता है, उसका सारा खेल ध्वनि और मौन का है। जो नहीं समझते हैं, वे ध्वनि को सुनते हैं। जो समझते हैं, वे मौन को सुनते हैं, दो ध्वनियों के बीच के अंतराल को सुनते हैं।
वास्तविक संगीत इन अंतरालों में है। इसे संगीतज्ञ पैदा नहीं करते। संगीतज्ञ तो ध्वनियां पैदा करता है, अंतरालों को छोड़ता जाता है, ताकि तुम उसका कुछ अनुभव कर सको जो रहस्य दर्शियों को उनके अंतःलोक में घटित होता है।
ओम सत्य के खोजियों की सबसे बड़ी उपलब्धि है। ऐसी अनेक घटनाएं हैं जो पूरी तरह अविश्वसनीय हैं, किंतु वे ऐतिहासिक हैं।
मारपा- एक तिब्बती रहस्यदर्शी- जब मरा, उसके निकटतम शिष्य उसके चारों ओर बैठे हुए थे... क्योंकि एक रहस्यदर्शी की मृत्यु उतनी ही महत्त्वपूर्ण होती है जितना उसका जीवन, या शायद कुछ अधिक ही। यदि तुम किसी रहस्यदर्शी की मृत्यु के समय उसके निकट हो सको तो उस समय तुम बहुत कुछ अनुभव कर सकते हो; क्योंकि उसकी संपूर्ण चेतना शरीर का त्याग कर रही है और यदि तुम सावधान और जागरूक हो तो तुम एक नई सुगंध का अनुभव कर सकते हो, एक नया प्रकाश देख सकते हो, एक नया संगीत सुन सकते हो।
मारपा जब मरा, वह एक मंदिर में रहता था। और अचानक शिष्य आश्चर्यचकित हो गए, वे अपने चारों ओर देखने लगे कि ओम का यह नाद कहां से आ रहा है। अंततः उन्होंने पाया कि यह नाद कहीं दूसरी जगह से नहीं बल्कि मारपा की देह से आ रहा है। उन लोगों ने अपने कान उसके हाथों से, पैरों से लगाकर सुना, वे भरोसा न कर सके- उसके संपूर्ण शरीर के भीतर कुछ तरंगायित था जो ओम का नाद पैदा कर रहा था। संबोधि के बाद मारपा जीवन भर इस नाद को सुनता रहा था। इस

नाद को निरंतर भीतर सुनते रहने के कारण यह उसके भौतिक शरीर की कोशिकाओं तक में प्रवेश कर गया था। उसके शरीर का रेशा-रेशा एक विशिष्ट समस्वरता सीख गया था।
लेकिन ऐसा दूसरे रहस्यदर्शियों द्वारा भी अनुभव किया गया है। खासकर मृत्यु के क्षण में, जब सब कुछ अपने चरम बिंदु पर होता है, अंतर उस नाद की तरंगों को विकर्ण करने लगता है। लेकिन मनुष्य इतना अंधा और इतना अविवेकी है कि यह जानकर कि रहस्यदर्शी अपने भीतर मौन के संगीत को अनुभव करते हैं और वे इसे ओम कहते हैं, लोग ओम को मंत्र की तरह जपने लगे; यह सोच कर कि ओम के जाप से वे भी उसे सुनने में सक्षम हो जाएंगे।
इसको जपने से उस नाद को तुम कभी नहीं सुन सकोगे। जप करते समय तुम्हारा मन ही काम कर रहा है।
लेकिन इस बात को तुमसे कहने वाला संभवतः मैं पहला व्यक्ति हूं। अन्यथा सदियों से लोग ओम का जाप सिखा रहे हैं। वह एक मिथ्यानुभव पैदा करता है। और तुम मिथ्या में खो जा सकते हो और असली को कभी अनुभव नहीं कर सकोगे।
मैं तुमसे इसे जपने को नहीं कहता, बस शांत हो जाओ और इसे सुनो। जैसे तुम्हारा मन शांत और स्थिर होता है, अचानक तुम पाओगे कि एक फुसफुसाहट की तरह तुम्हारी अंतरात्मा में ओम उठ रहा है। जब यह स्वयं से पैदा होता है तो इसका गुणधर्म बिल्कुल अलग होता है। यह तुम्हें रूपांतरित कर देता है। आधुनिक भौतिक विज्ञान कहता है कि संसार में सब कुछ विद्युत-ऊर्जा से बना है; और ध्वनि भी अन्य कुछ नहीं, विद्युत-तरंगें हैं। वैज्ञानिक बाहर से काम करते रहे हैं।
रहस्यदर्शी ठीक इसके विपरीत कहते हैं। लेकिन मैं उनमें विरोध नहीं देखता। रहस्यदर्शियों के अनुसार यह संपूर्ण अस्तित्त्व ध्वनिरहित ध्वनि- ओम- से बना है। यह विद्युत और अग्नि भी अन्य कुछ नहीं, ध्वनि का ही सघन रूप हैं।
पूरब में यह बात ज्ञात थी। ऐसे संगीतज्ञ हुए हैं जो अपने संगीत से दीपक को जला सकते थे। जैसे ही संगीत बुझे हुए दीपक के संपर्क में आता है, एकाएक लौ जल उठती है। अतीत में यह एक परीक्षण था कि कोई संगीतज्ञ जब तक अपने संगीत से प्रकाश, अग्नि, लौ नहीं उत्पन्न कर देता, वह अपरिपक्व समझा जाता था। वह सिद्ध आचार्य नहीं समझा जाता था।
भौतिकशास्त्र और रहस्यदर्शी की व्याख्याएं परस्पर विरोधी दिखाई पड़ती हैं, किंतु गहरे में संभवतः कोई स्रोत है जो विरोधाभासों और प्रतिरोधों को समाप्त कर सकता है। संभवतः ये मात्र भिन्न ढंग से व्याख्या करने का मामला है, क्योंकि रहस्यदर्शी भीतर से देख रहा है और भौतिकशास्त्री बाहर को। भौतिकशास्त्री जिसे विद्युत की तरह महसूस करता है, रहस्यदर्शी उसे संपूर्ण अस्तित्त्व के संगीत की तरह अनुभव करता है। वे दोनों भिन्न-भिन्न भाषाओं में कह रहे हैं। और अगर दोनों के बीच चुनाव करना पड़े तो मैं रहस्यदर्शी को चुनूंगा, क्योंकि वह उसे अपने केंद्र पर अनुभव कर रहा है। उसका अनुभव वस्तुओं पर किए गए प्रयोग का नहीं है। उसकी अनुभूति अपनी चेतना पर किए गए प्रयोग की है और चेतना अस्तित्त्व का नवनीत है।
इस मंत्र में अनेक रहस्य छिपे हुए हैं। प्रथम शब्दहीन शब्द ओम है और अंतिम है हुम्। पहला शब्द खिलावट है और अंतिम शब्द बीज।
सूफी लोग अल्लाह के पूरे नाम का उपयोग नहीं करते। अल्लाह परमात्मा के लिए मुसलमानों का नाम है। वे अल्लाहू का उपयोग करते हैं और धीरे-धीरे वे अल्लाहू को भी हू-हू में बदल देते हैं। उन लोगों ने पाया है कि हू की ध्वनि नाभि के ठीक नीचे जीवनस्रोत पर सीधे चोट करती है। क्योंकि तुम अपने जीवन से, अपनी मां से नाभि द्वारा ही जुड़े थे। नाभि के ठीक नीचे तुम्हारा अपना जीवनस्रोत है।
कभी प्रयोग करो- जब तुम हू कहते हो तो नाभि के नीचे चोट पड़ती है। इसका हम अपने सक्रिय ध्यान में उपयोग करते हैं।
यह एक सूफी खोज है, लेकिन इसका प्रयोग तिब्बती ढंग से भी किया जा सकता है।

हू के बजाय- हू कुछ कठोर मालूम पड़ता है, हुम थोड़ा अधिक कोमल लगता है। किंतु कोमल तुम्हारी ऊर्जाओं को जगाने में अधिक समय लेगा। तिब्बत की विशिष्ट जलवायु में संभवतः कोमलतर ही उपयुक्त था। जीवनस्रोत पर चोट करने के लिए उन्हें अधिक चोट की जरूरत नहीं थी। किंतु अरब के तपते रेगिस्तान में सूफी रहस्यदर्शियों ने हू का प्रयोग करना शुरू किया।
जब मैं सक्रिय ध्यान पर काम कर रहा था तो मेरे सामने विकल्प था कि हुम को चुनना या हू को। मैंने दोनों पर प्रयोग किए और मैंने पाया कि भारत में हू अधिक उपयुक्त है, बजाय तिब्बत के ठंडे ऊंचे प्रदेश के जहां सब कुछ भिन्न होना ही है। हुम उनके लिए बिल्कुल ठीक है।
हुम तुम्हारे भीतर ओम पैदा करने के लिए आघात है। यदि तुम जीवन के बीज पर चोट करते हो तो यह मिट्टी में खोने लगता है, हरी पत्तियां, अंकुर निकलने लगते हैं।
ओम और हुम्- इन दोनों के बीच में मणि पद्मे है। मैं नहीं सोचता कि कोई भी परम अनुभव को, परम सौंदर्य को मणि पद्मे से बेहतर रूप में व्यक्त करने में समर्थ हुआ हो। तुम तनिक कल्पना करो। कमल का फूल पूरब में सबसे सुंदर और सबसे बड़ा फूल है। और अगर तुम कमल के फूल पर प्रातःकालीन सूरज की धूप में मणि रख दो, तुम एक अपरिसीम सुंदर अनुभव के समक्ष हो... कमल पुष्प में मणि! परम अनुभव के बारे में कुछ भी कहना बहुत कठिन है, लेकिन तिब्बती रहस्यदर्शियों ने सर्वश्रेष्ठ प्रयास किया है। उसके बारे में बहुत कुछ कहा गया है, लेकिन कमल पर मणि सर्वाधिक उत्कृष्ट अभिव्यक्ति लगती है- क्योंकि यह महानतम और सर्वाधिक सुंदर अनुभूति है और उन्होंने सामान्य जगत की दो सुंदरतम वस्तुओं- कमल और मणि- को चुना है। यह उस सौंदर्य की मात्र अभिव्यक्ति है जिसे तुम अपने भीतर देखते हो।
इस ओम मणि पद्मे हुम मंत्र में एक पूरा दर्शन समाया हुआ है। अंतिम शब्द हुम से आरंभ करो और प्रथम शब्द स्वतः उध्रूत होगा। और जब तुम्हारा आंतरिक अस्तित्त्व मौन के नाद से भर जाएगा तब तुम प्रातःकालीन सूर्य के प्रकाश में कमल पर मणि के सुंदर अनुभव को भी देखोगे। प्रकाशित मणि! और कमल इतना कोमल, इतना त्रैण, इतना सुकुमार! किसी दूसरे फूल से इसकी तुलना नहीं हो सकती।

प्रवचन-3
धर्म और राजनीति

राजनीति सांसारिक है- राजनीतिज्ञ लोगों के सेवक हैं। धर्म पवित्र है- वह लोगों के आध्यात्मिक विकास के लिए पथ-प्रदर्शक है। निश्चित ही, जहां तक मूल्यों का संबंध है राजनीति निम्नतम है, और धर्म उच्चतम है, जहां तक मूल्यों का संबंध है। वे अलग ही हैं।
राजनेता चाहते हैं कि धर्म राजनीति में हस्तक्षेप न करे; मैं चाहता हूं कि राजनीति धर्म में हस्तक्षेप न करे। उच्चतर को हस्तक्षेप का हर अधिकार है, किंतु निम्नतर को कोई अधिकार नहीं।
धर्म मानव-चेतना को सदियों से ऊपर उठाता रहा है। जो कुछ भी मनुष्य आज है, कितनी भी थोड़ी जो चेतना उसके पास है, उसका सारा श्रेय धर्म को है। राजनीति एक अभिशाप रही है, एक विपदा; और जो कुछ भी मानवता में अभद्र है, राजनीति उस सब के लिए जिम्मेवार है।
लेकिन समस्या यह है कि राजनीति के पास शक्ति है, धर्म के पास केवल प्रेम, शांति और दिव्य का अनुभव है। राजनीति धर्म के साथ आसानी से हस्तक्षेप कर सकती है; और वह सदा से हस्तक्षेप करती चली आई है, इस सीमा तक कि उसने बहुत से ऐसे धार्मिक मूल्यों को नष्ट कर डाला है जो पृथ्वी पर मानवता और जीवन के टिके रहने के लिए नितांत आवश्यक हैं।
धर्म के पास पारमाणु हथियार, अणुबम और बंदूकों जैसी सांसारिक शक्तियां नहीं हैं; उसका आयाम बिल्कुल अलग है। धर्म शक्ति की आकांक्षा

नहीं है; धर्म खोज है सत्य की, परमात्मा की। और यह खोज ही धार्मिक व्यक्ति को विनम्र, सरल और निर्दोष बना देती है।
राजनीति के पास सारे विध्वंसात्मक हथियार हैं; धर्म नितांत कोमल है। राजनीति के पास हृदय नहीं है; धर्म शुद्ध हृदय है। वह ठीक वैसे ही है जैसे एक सुंदर गुलाब का फूल- जिसका सौंदर्य, जिसका काव्य, जिसका नृत्य जीवन को जीने योग्य बनाता है, उसे अर्थ एवं महत्ता प्रदान करता है। राजनीति पत्थर जैसी है- मृत। किंतु पत्थर फूल को नष्ट कर सकता है और फूल के पास कोई सुरक्षा नहीं है। राजनीति अधार्मिक है।
राजनेता चीजों को उलटा-पलट कर दे रहे हैं। वे चाहते हैं कि धर्म राजनीति में हस्तक्षेप न करे। मनुष्य जाति को गुलामी में रखने के लिए, मनुष्यों को गुलाम बना देने, उनकी स्वतंत्रता नष्ट कर देने, उनकी चेतना नष्ट कर देने के लिए राजनीति के पास समूचा एकाधिकार चाहिए- उन्हें यंत्र-मानव में बदल देने के लिए ताकि राजनीतिज्ञ लोग शक्ति और प्रभुता का मजा ले सकें।
राजनीतिज्ञों के लिए केवल धर्म ही एक समस्या है। वह उनकी पहुंच और उनकी समझ के बाहर है। धर्म अकेला क्षेत्र है जहां राजनीतिज्ञ को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, क्योंकि धर्म ही एकमात्र आशा है।
राजनीति, सदियों से, बस लोगों की हत्या करती रही है, उन्हें विनष्ट करती रही है- राजनीति का सारा इतिहास अपराधियों का, हत्यारों का इतिहास है। तीन हजार वर्षों में राजनीतिज्ञों ने पांच हजार युद्ध पैदा किए हैं। लगता है राजनीतिज्ञ के भीतर बर्बरता की मूल-प्रवृत्ति बहुत शक्तिशाली है; उसका सारा आनंद विनष्ट करने में, आधिपत्य जमाने में है।
धर्म उसके लिए समस्या पैदा करता है, क्योंकि धर्म ने जगत को चेतना के शिखर प्रदान किए हैं- गौतम बुद्ध, जीसस, चवांग्त्सू, नानक, कबीर। ये पृथ्वी के नमक हैं। राजनीति ने जगत को क्या दिया है? चंगेज़ खां? तेमूरलंग? नादिरशाह? सिकंदर? नेपोलियन? इवॉन दि टेरॅबॅल? जोसेफ स्टालिन? एडोल्फ हिटलर? बेनिटो मुसोलिनी? माओत्से तुंग? रोनाल्ड रेगन?- ये सब के सब अपराधी हैं। सत्ता में होने के बजाय इन्हें सींखचों के पीछे होना चाहिए; ये अमानवीय हैं।
और वे आध्यात्मिक रूप से बीमार लोग हैं। शक्ति और आधिपत्य की महत्त्वाकांक्षा बीमार मनों में ही उपजती है। यह हीनता की ग्रंथि से उपजती है। जो लोग हीनता-ग्रंथि से ग्रसित नहीं हैं वे शक्ति की फिक्र नहीं करते; उनका सारा प्रयास शांति के लिए होता है, क्योंकि जीवन का अर्थ केवल शांति में ही जाना जा सकता है- शक्ति मार्ग नहीं है। शांति, मौन, अनुग्रह, ध्यान- ये धर्म के मूलभूत अंग हैं।
मूढ़ राजनीतिज्ञों द्वारा धर्म को नियंत्रित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। स्थिति ऐसी है जैसे कि बीमार लोग चिकित्सकों को नियंत्रित करने का प्रयास कर रहे हों, यह बताते हुए कि उन्हें क्या करना और क्या नहीं करना चाहिए। सुन लो उनसे, क्योंकि बीमारों का बहुमत है, किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि चिकित्सक बीमारों द्वारा नियंत्रित हो। चिकित्सक मनुष्यता के घावों को भर सकता है, बीमारियों से छुटकारा दिला सकता है। धर्म चिकित्सक है।
राजनीतिज्ञ लोग पर्याप्त नुकसान पहुंचा चुके हैं, और समूची मानवता को एक सार्वभौम आत्मघात की तरफ ले जा रहे हैं। और इस पर भी राजनेता हिम्मत रखते हैं कहने की कि धर्म को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए- जब कि इस ग्रह पर समस्त जीवन खतरे में है! केवल मनुष्य ही नहीं, बल्कि निर्दोष पक्षी और उनके गीत, मौन वृक्ष और उनके पुष्प- वह सब कुछ जो जीवित है।
पृथ्वी से जीवन को विदा कर देने के लिए राजनीतिज्ञ लोग पर्याप्त विध्वंसक शक्ति निर्मित करने में सफल हो गए हैं; और वे लगातार और-और पारमाणु हथियारों का ढेर लगाए जा रहे हैं। वास्तव में, आज से तीन वर्ष पहले इतने पारमाणु हथियार थे कि प्रत्येक मनुष्य सात बार नष्ट किया जा सके, यह समूची पृथ्वी सात बार नष्ट की जा सके, अथवा ऐसी सात पृथ्वियां नष्ट

की जा सकें। एक मनुष्य एक ही बार मरता है; इतनी सारी विध्वंसक शक्ति इकट्ठा करने की कोई जरूरत नहीं है।
सारी राजनीति झूठों पर टिकी है।
अभी हाल ही में- मुझे यकीन नहीं आया कि कोई ऐसा व्यक्ति जो पागल नहीं है, ऐसे वक्तव्य दे सकता है- रोनाल्ड रेगन ने एक वक्तव्य दिया। वे सीनेट के समक्ष इन्कार कर रहे थे- लगातार- कि वे कुछ एक देशों को कोई भी हथियार दिए जा रहे थे। और अब छानबीन से पता चला है कि वे झूठ बोल रहे थे- दो वर्षों से लगातार झूठ बोल रहे थे। गरीब देशों को विध्वंसक हथियार दिए गए हैं, और थोड़ी मात्रा में नहीं- बहुत बड़ा ढेर। अब तथ्य प्रकाश में आ गए हैं और रोनाल्ड रेगन को एक वक्तव्य देना पड़ा, और वक्तव्य जो उन्होंने दिया है, उस पर मुझे हंसी आयी- इतना बेतुका।
उन्होंने कहा, ‘अपने हृदय में, मैं अभी भी जानता हूं कि जो कुछ मैंने कहा वह सत्य था।’ किंतु तथ्य जो प्रकाश में आए हैं, वे बताते हैं कि वह झूठ था। मुझे अभी भी अपने हृदय में विश्वास है कि मैं सच ही बोलता आ रहा था। वे तथ्यों को स्वीकार कर रहे हैं, और फिर भी, साथ-साथ कह रहे हैं, मुझे अभी भी अपने हृदय में विश्वास है कि मैं जो कुछ भी कह रहा था, सच था, यद्यपि तथ्य उसे गलत साबित कर रहे हैं।
राजनीतिज्ञ झूठों पर जीते हैं; राजनीतिज्ञ वायदों पर पलते हैं- किंतु वे वायदे कभी पूरे नहीं किए जाते। वे विश्व में सर्वाधिक अयोग्य लोग हैं। उनकी एकमात्र योग्यता है कि वे निरीह जनता को मूर्ख बना सकते हैं; अथवा गरीब देशों में, उनके मत खरीद सकते हैं। और एक बार वे सत्ता में आ गए तो पूरी तरह भूल जाते हैं कि वे जनता के सेवक हैं; वे ऐसा व्यवहार करने लगते हैं जैसे कि वे जनता के स्वामी हैं।
वे मनुष्य के अंतर्जगत के विषय में क्या जानते हैं? वे आनंदमग्नता के विषय में, भगवत्ता के विषय में क्या जानते हैं? तथापि, वे चाहते हैं कि धर्म को राजनीति में हस्तक्षेप न करने दिया जाए लेकिन उनके संबंध में क्या? क्या उन्हें धर्म के साथ हस्तक्षेप करने दिया जाए? क्या निम्नतर उच्चतर को अधिशासित करने जा रहा है? क्या लौकिक पवित्र को अधिशासित करने जा रहा है? वह मानवता का परम दुर्भाग्य होगा।
जहां तक मेरा ख्याल है, सारे राजनीतिज्ञों को ध्यानी होना चाहिए, अंतर्जगत के संबंध में कुछ पता होना चाहिए; ज्यादा चैतन्य होना चाहिए, ज्यादा करुणापूर्ण, प्रेम के स्वाद से परिचित; अस्तित्त्व के मौन का अनुभव उनके पास हो और इस ग्रह के सौंदर्य का, और अस्तित्त्व के उपहारों का। और उन्हें विनम्र और अनुग्रहपूर्ण होने की कला सीखनी चाहिए।
धर्म को सारे राजनीतिज्ञों का शिक्षक होना चाहिए। यदि राजनीतिज्ञों के पास धार्मिकता की कोई सुगंध नहीं आ जाती, तो मानवता का कोई भविष्य नहीं है। धर्म को राजनीतिज्ञों के साथ हस्तक्षेप करना ही होगा। राजनीतिज्ञों के साथ धर्म के हस्तक्षेप बिना... राजनीतिज्ञ अंधे हैं, उनके पास आंखें नहीं हैं; वे बहरे हैं, सत्य को सुन पाने के लिए उनके पास शांत चित्त नहीं है।
लेकिन राजीव गांधी चिंतित क्यों हैं कि धर्म और राजनीति को अलग किया जाना चाहिए? राजनीति छोटी बात है। धर्म मनुष्य का समग्र विकास है। राजनीति को धर्म की विशाल अनुभूति का अंशमात्र होना चाहिए। किसी विभाजन की कोई आवश्यकता नहीं है। लेकिन राजनीतिज्ञ, क्योंकि वह सत्ता में है, इतना अहंकारी हो जाता है कि वह सोच नहीं सकता उन विनम्र, सरल किंतु बुद्धिमान लोगों के पास जाने के बाबत।
समस्याएँ बढ़ती जाती हैं; राजनीतिज्ञ उन्हें हल करने में नपुंसक सिद्ध हुए हैं। किंतु वे उन लोगों के पास नहीं जाएंगे जो उन्हें दिशा प्रदान कर सकते हैं, जो उन्हें सलाह दे सकते हैं क्योंकि उनके पास स्पष्टता है।
मैं राजनीतिज्ञ नहीं हूं। मैंने अपने जीवन में कभी मतदान नहीं किया है और न करनेवाला हूं- कभी; क्योंकि दो बंदरों के बीच चुनाव करने का अर्थ भी क्या है? क्या सिर्फ इसलिए कि वे दो अलग ढंग के झंडे पकड़े हुए हैं? क्या सिर्फ इसलिए कि उनके चिन्ह भिन्न हैं? आखिर त बंदर तो बंदर ही हैं।

उनमें धर्म के प्रति, धार्मिक लोगों के प्रति एक गहन सम्मान की जरूरत है, क्योंकि एक बात निश्चित हैः धार्मिक लोग चुनाव लड़ने नहीं जा रहे हैं- कोई धार्मिक व्यक्ति मतों की भीख नहीं मांगनेवाला। मूलतः उसके पास अपने अहंकार के पोषण की कोई आकांक्षा नहीं है क्योंकि छिपाने के लिए कोई हीनता- ग्रंथि नहीं है। अपने मौन में, अपनी शांति में, अपनी आनंदमग्नता में वह परम श्रेष्ठता को जान चुका है। अब उससे आगे और कुछ नहीं है, उसके ऊपर और कुछ नहीं है।
अब वह एक मंदिर बन चुका है; उसका परमात्मा उसके स्वयं के भीतर है। राजनीतिज्ञ का अस्तित्त्व युद्धों पर आधारित है, दंगे पैदा करवाने पर आधारित है, अशांति पर आधारित है- ये सब उसके पोषण हैं। एडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा हैः जब तक तुम्हारे दुश्मन न हों तुम एक महान नेता नहीं बन सकते। यदि तुम्हारे दुश्मन न भी हों, तो यह झूठ निर्मित करो कि तुम्हारा देश खतरे में है, क्योंकि लोग जब भयभीत हों तो वे गुलाम बनने को तैयार हैं। जब लोग भयभीत होते हैं, वे राजनीतिज्ञ का अनुसरण करने को राजी हैं।
यद्यपि वह एक विक्षिप्त व्यक्ति था, कभी-कभार उसने ऐसे वक्तव्य दिए जो बहुत अर्थपूर्ण हैं। उसने कहा है, ‘मनुष्य जाति के महानतम नेता युद्धों के दिनों में पैदा होते हैं। तो जब तक एक महान युद्ध न हो, तुम एक महान नेता नहीं बन सकते; एक महान नेता होने की आकांक्षा पूरी करने मात्र के लिए तुम्हें करोड़ों लोगों की हत्या करनी होगी।’
और वह सही हैः शांति के दिनों में, लोगों को किसी का अनुसरण करने की जरूरत नहीं; उन दिनों में लोग किसी नेता को करीब-करीब देवता नहीं बना देते जिससे उसके वचन ही कानून बन जाते हों।
राजनीतिज्ञ हर तरह से उपाय करते हैं अपने देश को भयभीत रखने के लिए। चीन भारत की सीमा पर परमाणु-अस्त्र जमा कर रहा है; पाकिस्तान भारत की सीमा पर फौजें जमा कर रहा है- भारतीय राजनेता जिद किए जाते हैं कि यह सच है। पाकिस्तान में, वे जिदपूर्वक कहे चले जाते हैं कि भारत उनकी सीमा पर फौजें जमा कर रहा है; चीन में, वे जिद किए जाते हैं कि भारत परमाणु-अस्त्र तैयार कर रहा है। पार्लियामेंटों में वे कहे चले जाते हैं, हम कुछ भी ऐसा निर्मित नहीं कर रहे हैं- किंतु वह एक सफेद झूठ है।
चीनी नेता को चीन के लोगों को भयभीत रखना पड़ता है। भारतीय नेता को भारत के लोगों को भयभीत रखना पड़ता है। पाकिस्तानी नेताओं को पाकिस्तान के लोगों को भयभीत रखना पड़ता है।
तुम्हारे भय में उनकी शक्ति है।
जितना ज्यादा वे तुम्हें भयभीत रख पाते हैं, उतने ही ज्यादा वे शक्तिशाली होते हैं। देश के बाहर वे इन कल्पनाओं को गढ़ते चले जाते हैं, और देश के भीतर वे जारी रखते हैः हिंदू-मुस्लिम दंगे, हिंदी- भाषा और गैर-हिंदी-भाषा लोगों के बीच दंगे। वे चाहते हैं कि तुम किसी भी बात के लिये, मगर लड़ते रहो- कोई भी तुच्छ बात के लिये।
यदि तुम लड़ने में संलग्न हो, वे शक्ति और सत्ता में हैं। यदि तुम लड़ना बंद कर दो, उनकी शक्ति विदा हो जाती है। यह एक भद्दा खेल है।
यह धार्मिक लोगों के कर्तव्यों में से एक है कि वे स्वयं को राजनीति से ऊपर रखें और लोगों को सृजनात्मक मूल्यों की और, अधिक-अधिक मानवता की ओर ले चलें। दरअसल, अगर धर्मों की समझ में एक बात आ जाये, कि सारी मनुष्यता एक है और किसी राष्ट्र की कोई आवश्यकता नहीं है, ये सारे बौने राजनीतिज्ञ विदा हो जायेंगे।
किंतु सबसे अनोखी बात यह है कि राजनीतिज्ञ लोग कहे चले जाते हैं कि धर्म और राजनीति को पृथक रहना चाहिये। क्यों? क्यों सत्य को राजनीति से पृथक रहना चाहिये? और क्यों प्रेम को राजनीति से पृथक रहना चाहिये? क्यों ध्यानपूर्ण चेतना को राजनीति से पृथक रहना चाहिये? क्यों एक प्रार्थनापूर्ण हृदय को राजनीति से पृथक रहना चाहिये?
हां, मैं समझता हूं कि इस अर्थ में उसे पृथक रहना चाहिये कि वह उच्चतर है। राजनीतिज्ञ को मनोवैज्ञानिक-उपचार और आध्यात्मिक-उपचार की आवश्यकता

है और उसे धार्मिक लोगों के पास सलाह के लिये जाना चाहिये। प्राचीन भारत में ऐसी स्थिति थी। हमने वे दिन देखे है; भिखारियों के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिये जिनके पास कुछ भी न था- और उनकी सलाह लेने के लिए।
सम्राट उनके चरण छुआ करते जिन्होंने आत्मज्ञान उपलब्ध कर लिया था, क्योंकि उनका आशीर्वाद मात्र तुम्हें रूपांतरित कर सकता है। राजनीति कार्यमूलक है; वह उपयोगितावादी है- परंतु उसके पास मनुष्य को उच्चतर चेतना में ले चलने का कोई उपाय नहीं है। और विशेषतः भारत के संदर्भ में, यह एक ऐसी भद्दी स्थिति बनी हुई है कि देखकर पीड़ा होती है।
महात्मा गांधी कहा करते थे, स्वतंत्रता से पूर्व कि भारत का प्रथम राष्ट्रपति किसी महिला को बनाया जायेगा। और न केवल यह महिला होगी वरन शूद्र भी होगी- निम्नतम अस्पृश्य वर्ग से।
लेकिन जैसे ही आजादी आई, वे सारे वायदे जिनकी वे बातें किया करते थे भूल गये और वही पुराने सत्ता के खेल शुरू हो गयेः पंडित जवाहरलाल नेहरू एक ब्राह्मण है; वे महिला नहीं हैं और वे शूद्र नहीं हैं। पुनः ब्राह्मण की ही सत्ता कायम होती है। और चालीस वर्षों से, ब्राह्मणों का एक परिवार भारत पर आधिपत्य जमाये हुए है। उन्होंने करीब-करीब अपना व्यक्तिगत राजवंश बना रखा है। यह प्रजातंत्र नहीं रह गया है।
थोड़ा तथ्यों पर गौर करोः भारतीय जनता पर महात्मा गांधी की पकड़ क्या थी? वे धार्मिक होने का स्वांग कर रहे थे- वे एक धार्मिक व्यक्ति नहीं थे- एक हिंदू संत होने का स्वांग कर रहे थे, क्योंकि हिंदु बहुत हैं, वे ही देश का शासन करने वाले थे। यही कारण था कि वे भारत के अविभाजन की जिद पकड़े हुए थे, क्योंकि एक अविभाजित भारत में, हिंदू सत्ता में होंगे; हिंदुओं के हाथों से कोई सत्ता छीन नहीं सकता क्योंकि बाकी सब लोग अल्पमत में हैं। इस राजनीति पर कोई ध्यान नहीं देता- कि वे धर्म तक का उपयोग भद्दे मंतव्यों के लिये कर रहे थे।
डा. अंबेदकर अस्पृश्यों के लिये अलग मत की मांग कर रहे थे और मैं उस व्यक्ति से पूर्णतः सहमत हूं, इस सीधे से कारण से कि पांच हजार वर्षों से ये लोग दमित किये गये हैं, शोषित किये गये हैं; मनुष्य के रूप में उनकी सारी गरिमा नष्ट कर दी गयी है- और वे हिंदू-जनसंख्या का चौथाई भाग है। और वे गंदा काम करते हैं; उनका सम्मान होना चाहिये, उस के लिये उनकी इज्जत की जानी चाहिए। लेकिन इससे विपरीत, उनकी छाया तक अस्पृश्य है। यदि एक अस्पृश्य की छाया पर पड़ जाता है, आपको स्वयं को शुद्ध करने के लिए तुरंत स्नान करना होगा।
अंबेदकर एकदम सही थे अस्पृश्यों के लिये अलग मत मांगने में, ताकि उन्हें पक्का हो सके कि पार्लियामेंट में एक चौथाई सदस्य उनके होंगे। अन्यथा वे पार्लियामेंट में पहुंचने में कभी सफल न होंगे; वे मन द्वारा निर्मित पांच हजार वर्ष पुराने, भद्दे जाति-व्यवस्था-नियमों को बदलने में कभी सफल न होंगे।
बड़े-बड़े अपराधी हैं, किंतु लगता है मनु उन में सर्वप्रिय हैं। एडोल्फ हिटलर के मन में मनु के प्रति बड़ा सम्मान था, फ्रेडरिक नीत्शे के मन में मनु के प्रति बड़ा सम्मान था- गौतम बुद्ध के प्रति नहीं- और मनु इस देश के लिये एक अभिशाप सिद्ध हुए हैं। उन्होंने करोड़ों लोगों से उनकी सारी मानवी गरिमा छीन ली; वे पशुओं की तरह जी रहे हैं।
अंबेदकर यह कहने में पूर्णतः तर्कसंगत थे, वे सही थे कि इन लोगों को अलग मत का अधिकार मिलना चाहिये, किंतु गांधी ने आमरण अनशन शुरू कर दिया इस बात के लिए कि अंबेदकर अपना आंदोलन बंद कर दें; अन्यथा, वे कुछ खाएंगे- पीएंगे नहीं जब तक कि मृत्यु ही नहीं आ जाती। अब यह सर्वथा अतर्कपूर्ण है। क्योंकि तुम लोगों को उपवास करके राजी कर लेते हो, इसका अर्थ यह नहीं कि तुम सही हो। यह ब्लैकमेल है; यह धमकाना हैः मैं आत्महत्या कर लूंगा यदि तुम मुझसे राजी नहीं होते।
स्वभावतः सारा देश अंबेदकर पर दबाव डाल रहा था, अपना आंदोलन बंद करो; अन्यथा गांधी की मृत्यु तुम्हारे लिये और अस्पृश्यो के लिए बहुत खतरनाक सिद्ध होगा। वे जिंदा जला दिये जाएंगे। उनके गांव जला दिये जाएंगे

क्योंकि हिंदू लोग बदला लेंगे कि अस्पृश्यों ने गांधी को मार दिया है। जितनी देर संभव हुआ अंबेदकर ने खींचा, किंतु अंततः समर्पण कर दिया- यह देखते हुए कि शायद यदि गांधी की मृत्यु हो ही जाती है... ! यद्यपि यह कोई तर्क नहीं है।
यदि मैं अंबेदकर की जगह होता तो मैंने गांधी को कहा होता, तुम मर सकते हो क्योंकि तुम्हारी मृत्यु कोई तर्क नहीं है। यह उतनी ही मूर्खतापूर्ण कहानी है जैसी कि एक मैंने सुना है।
एक बहुत बदसूरत आदमी एक सुंदर लड़की से विवाह करना चाहता था- और उसकी उम्र लड़की के पिता के जितनी थी। और उसने गांधीवादी तरीका अपनाया; उसने अपना बिस्तर लिया, लड़की के घर के सामने पडा़ रहा और आमरण अनशन घोषित कर दिया, जब तक कि लड़की का पिता लड़की का विवाह उससे कर देने के लिये राजी नहीं हो जाता। अब हर आदमी उस बेचारे के प्रति सहानुभूति अनुभव कर रहा थाः वह मर रहा है। क्या महान प्रेमी है। हमने ऐसे प्रेमियों के बारे सिर्फ कहानियों में सुना है, और वह वास्तव में एक मजनू, एक फरहाद, एक महिवाल है।
पिता भारी कठिनाई में था; लड़की अत्यंत भय में थी। सारे दिन घर पर भीड़ जमा रहती और लोग चिल्लातेः उसकी मृत्यु तुम्हारे लिये खतरनाक होगी। यह व्यक्ति कोई हिंसात्मक व्यवहार नहीं कर रहाः यह तो अहिंसात्मक व्यवहार ही कर रहा है, एक धार्मिक व्यक्ति, उपवासरत।
किसी आदमी ने लड़की के पिता को सलाह दी, तुम किसी पुराने गांधीवादी के पास जाओ यह पता करने के लिये कि ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिये। गांधीवादी ने कहा, ‘इसमें कोई समस्या नहीं। एक बहुत बदसूरत वेश्या है, बहुत बूढ़ी... तुम बस इसे एक सौ रुपये दे दो और वह भी उस आदमी के बगल में अपना बिस्तर लगाकर पड़ी रहे, यह कहते हुए कि यदि तुम मुझसे विवाह नहीं करते तो मैं आमरण अनशन करूंगी। रात में उस आदमी ने अपना बिस्तर समेटा और भाग निकला।
ये तर्क नहीं है।
और अंबेदकर अपना आंदोलन खत्म करने के लिये विवश कर दिये गये और संतरे के रस की गिलास लेकर वे गांधी के पास गये कि वे अपना अनशन समाप्त करें। यह राजनीति की सेवा में धर्म को लगाना है। कोई धार्मिक व्यक्ति वैसा नहीं कर सकता।
भारत के अखंड और एक बने रहने की अवधारणा भी कुछ और नहीं बल्कि राजनीति थी जो हिंदुओं की सेवा में उपयोग की जा रही थी, ताकि मुसलमान अथवा ईसाई अथवा जैन अथवा सिख कभी सत्ता में न आ सकें इसलिये की जा रही थी, इससे हिंदु सत्ता में बने रहेंगे- क्योंकि वे बहुमत में हैं।
जिन्ना, जिसने पाकिस्तान बनाया, जरा भी धार्मिक व्यक्ति न था; किंतु उसने भी धर्म का उपयोग किया। उन्होंने अलग देश बनाने के लिये मुसलमानों का आंदोलन खड़ा किया; अन्यथा वे सत्ता में न आ सकेंगे- कभी। अचानक वह एक महान मुसलमान बन गये, एक महान धार्मिक व्यक्ति और धर्म के नाम पर... वह सब राजनीति थी- ने महात्मा गांधी धार्मिक थे और न मुहम्मद अली जिन्ना धार्मिक थे। लेकिन दोनों सत्ता चाहते थे।
तब से, चालीस वर्ष बीत चुके हैं- राजनीतिज्ञों ने इस देश के लिये किया क्या है? जब यह देश आजाद हुआ, इसकी आबादी केवल चालीस करोड़ थी। वे जनसंख्या- विस्फोट को रोकने में भी सफल नहीं हुए, जो कि बिना किसी पारमाणु हथियारों के इस देश को नष्ट कर देनेवाला है। अब जनसंख्या दुगुने से भी अधिक है; नब्बे करोड़ लोग! और इस सदी के अंत तक, भारत दुनिया का सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश होगा। अब तक, चीन था, किंतु चीन अधिक वैज्ञानिक व्यवहार कर रहा है और अपनी जनसंख्या कम करने के प्रयास कर रहा है। इस सदी के अंत तक, दुनिया का हर चौथा आदमी भारतीय होगा।
और राजनीतिज्ञ क्या करते हैं? वे संतति-नियमन के पक्ष में, गर्भपात के पक्ष में लोगों से कुछ भी कहने में भयभीत है, क्योंकि उनका रस इस बात में जरा भी नहीं है कि यह देश बचता है या नष्ट हो जाता है; उनका सारा रस इस बात में है कि वे किसी को नाराज नहीं करना चाहते। लोगों के पास अपने पूर्वाग्रह हैं- राजनीतिज्ञ उनके पूर्वाग्रहों को छूना नहीं चाहते

क्योंकि उन्हें उनके मतों की आवश्यकता है। यदि वे उनके पूर्वाग्रहों को चोट पहुंचाते हैं, तो ये लोग उन्हें अपना मत प्रदान करनेवाले नहीं।
केवल एक धार्मिक व्यक्ति ही, जिसके पास स्पष्ट देखने की क्षमता है और जिसे लोगों के मतों की आवश्यकता नहीं है, सत्य को कह सकता है, क्योंकि धार्मिक व्यक्ति को आपसे कुछ भी अपेक्षा नहीं है- राजनीतिज्ञ केवल प्रीतिकर झूठ बोल सकते हैं, दिलासापूर्ण झूठ बोल सकते हैं, ताकि उनके मत प्राप्त कर सकें- उल्टे, सत्य बोलना उसके जीवन के लिये खतरनाक हो सकता है; यह सदा से ऐसा ही रहा है। जब भी सत्य बोला गया है, बोलनेवाले को सूली लगा दी गयी है। राजनीतिज्ञ लोग सता की तलाश में हैं, सूली की नहीं।
दुनिया को अधिक से अधिक ऐसे धार्मिकों की जरूरत है जो सूली लगने की कीमत पर भी सत्य बोलने को तैयार हों। धार्मिक व्यक्ति सूली लगने से नहीं डरता, जिसका सरल सा कारण यह है कि उसे पता है कि मृत्यु एक झूठ है। अधिक से अधिक, वे उसका शरीर नष्ट कर सकते है; लेकिन उसका चैतन्य, उसकी आत्मा, उसके भीतर का परमात्मा तो जिये ही चला जायेगा।
धर्म की प्रतिष्ठा ऊपर रहनी चाहिये, और धार्मिक लोग सुने जाने चाहिये। संसद को सतत धार्मिक लोगों को आमंत्रित करते रहना चाहिये कि वे उन्हें कुछ उपाय सुझा सकें कि कैसे देश की समस्याएं हल की जाएं, क्योंकि वे स्वयं तो कुछ भी हल करने में सर्वथा नपुंसक हैं। समस्याएं बढ़ती जाती हैं, किंतु राजनीतिज्ञ का अहंकार यह नहीं स्वीकार करना चाहता कि कोई उनसे भी ऊपर है। लेकिन चाहो अथवा न चाहो, धार्मिक व्यक्ति तुमसे ऊपर है। तुम लोगों की चेतना में रूपांतरण नहीं ला सकते- वह ला सकता है।
निश्चित ही, धर्म को अपनी पवित्रता से नीचे उतरकर राजनीति के तुच्छ मसलों में नहीं आना चाहिए। वास्तव में मैं इस बात से सहमत हूं कि धर्म और राजनीति को अलग रहना चाहिए। उनमें दूरी विशाल है। धर्म आसमान का एक सितारा है, राजनीतिज्ञ जमीन पर रेंग रहे जंतु हैं।
वे अलग हैं। लेकिन यह सवाल नहीं है कि उन्हें अलग होना चाहिए। राजनीतिज्ञों को यह स्मरण रखना चाहिए कि वे सांसारिक मसलों पर काम कर रहे हैं। और वह मानवता का असली गंतव्य नहीं है।
धार्मिक लोग हर संभव प्रयत्न कर रहे हैं मानवता को उस बिंदु तक ऊपर उठाने का- उसकी चेतना को, उसके प्रेम को, उसकी करुणा को- जहां युद्ध असंभव हो जाते हैं, जहां राजनीतिज्ञ धोखा नहीं दे सकते लोगों को, जहां उनके झूठों और वायदों का भंडाफोड़ किया जा सके। यह राजनीति में हस्तक्षेप नहीं हैः यह मात्र लोगों की सुरक्षा करना है राजनीतिज्ञों के शोषण से। अलग वे पहले से ही हैं। राजीव गांधी को यह धारणा किसने दी कि धर्म और राजनीति अलग-अलग नहीं हैं?
राजनीति कुछ ऐसी बात है जिसका स्थान गंदी नालियों में हैं। धर्म का स्थान उन्मुक्त, स्वच्छ आकाश में है- जैसे कोई उड़ता हुआ पक्षी, जो अस्तित्त्व के केंद्र पर ही पहुंच जाने के लिए सूर्य के आरपार उड़ा जा रहा हो।
निश्चित ही धार्मिक लोग राजनीति में भागीदार नहीं हो सकते; लेकिन राजनीतिज्ञों को विनम्रता सीखनी चाहिए- उनकी शक्ति को उन्हें अंधा नहीं बनाने देना चाहिए। शक्ति भ्रष्ट करती है और आत्यंतिक शक्ति आत्यंतिक रूप से भ्रष्ट करती है; और सारे राजनीतिज्ञ अपनी शक्ति द्वारा भ्रष्ट हैं। और उनके पास शक्ति क्या है? क्योंकि वे तुम्हारी हत्या कर सकते हैं- उनकी शक्ति एक कसाई की है, जिसमें कुछ भी महिमाशाली नहीं, सम्माननीय नहीं। धार्मिक व्यक्ति के पास एक बिल्कुल अलग किस्म की शक्ति होती हैः यह उसकी उपस्थिति में है, यह उसके महत प्रेम और जीवन के प्रति सम्मान में है; यह अस्तित्त्व के प्रति उसके अनुग्रह भाव में है।
हमें नहीं भूलना चाहिए कि निम्नतर को अपनी सीमाओं के भीतर ही रहना चाहिए; और जितना संभव हो देश के बुद्धिमान लोगों को संसद को उन समस्याओं पर संबोधित करने के लिए बुलाते रहना चाहिए जिनको हल करने में राजनीतिज्ञ समर्थ नहीं हैं- जिन्हें हल करने की समझ ही नहीं है उनके पास।

लेकिन राजीव गांधी के इरादे सर्वथा दूसरे हैं। वे चाहते हैं कि राजनीतिज्ञ धर्म सहित सब पर आधिपत्य जमानेवाली एकमात्र शक्ति हों; और धर्म भी राजनीतिज्ञों के इशारे पर चले।
मैं इस इरादे की समग्रस्तः भर्त्सना करता हूं। धर्म राजनीतिज्ञों के निर्देशों पर नहीं चल सकता। राजनीतिज्ञों को धार्मिकों की सलाह मानने की कला सीखना चाहिए। समस्याएं इतनी छुद्र हैं कि कोई भी समझदार और हितैषी व्यक्ति सरलता से उनका हल कर सकता है। लेकिन राजनीतिज्ञ उन्हें हल करना नहीं चाहता; वह उन्हें हल करने की केवल बात करता है क्योंकि उसकी शक्ति इस बात पर निर्भर है कि आपके पास कितनी ज्यादा समस्याएं हैं। जितनी अधिक समस्याएं होंगी। तुम्हारी, उतने ही दयनीय होगे तुम, उतना ही शक्तिशाली होगा वह।
धार्मिक चेतना के लिए, जितने अधिक आनंदित तुम हो, जितने अधिक प्रेमपूर्ण, जितने अधिक उत्सवपूर्ण... वह चाहता है कि तुम्हारा जीवन एक गीत हो, एक नृत्य। क्योंकि वही एकमात्र वह ढंग है जिस प्रकार हमें जीवन के स्रोत की उपासना करनी चाहिए- अपने आनंद द्वारा, अपने गीतों द्वारा और अपने नृत्यों द्वारा।

प्रवचन-4
जीवन का अंतिम उपहार

प्यारे ओशो,
क्या आप मृत्यु तथा मृत्यु की कला के संबंध में कुछ कहेंगे?
देव वंदना, मृत्यु के संबंध में सबसे पहली बात समझने जैसी है कि मृत्यु एक झूठ है। मृत्यु होती ही नहीं; यह सर्वाधिक भ्रामक बातों में से एक है। मृत्यु एक और झूठ की छाया है- उस दूसरे झूठ का नाम है अहंकार। मृत्यु अहंकार की छाया है। क्योंकि अहंकार है, इसलिए मृत्यु भी प्रतीत होती है।
मृत्यु को जानने, मृत्यु को समझने का रहस्य स्वयं मृत्यु में नहीं है। तुम्हें अहंकार के अस्तित्त्व की गहराई में जाना होगा। तुम्हें देखना और निरीक्षण करना और ध्यान देना होगा कि यह अहंकार क्या है? और जिस दिन तुम यह पा लोगे कि अहंकार है ही नहीं, कि यह कभी था ही नहीं- यह केवल प्रतीत होता था क्योंकि तुम सजग नहीं थे, यह प्रतीत होता था क्योंकि तुमने अपने अस्तित्त्व को अंधकार में रखा हुआ था- जिस दिन यह समझ में आ जाता है कि अहंकार अचेतन मन की रचना है, अहंकार विलीन हो जाता है और उसके साथ ही मृत्यु तिरोहित हो जाती है।
तुम्हारा वास्तविक स्वरूप शाश्वत है। जीवन न पैदा होता है न मरता है। लहरें आती हैं और जाती हैं, सागर बना रहता है- लेकिन लहरें हैं क्या? केवल आकृतियां, सागर के साथ हवा का खेल। लहरों का कोई ठोस अस्तित्त्व नहीं है। ऐसे ही हम हैं- लहरें, खिलौने।
लेकिन अगर हम लहरों की गहराई में झांकें तो वहां एक सागर है और इसकी शाश्वत गहराई है और इसका अथाह रहस्य है। अपनी सत्ता की गहराई में झांको और तुम सागर को पाओगे। और उस सागर का अस्तित्त्व है; सागर सदा है। तुम यह नहीं कह सकते यह था और तुम यह भी नहीं कह सकते यह होगा, तुम इसके लिए केवल एक काल का उपयोग कर सकते हो, वर्तमान कालः यह है।
धर्म की पूरी खोज यही है। खोज केवल यही हैः जो वास्तव में है उसको पा लेना। हमने उन चीजों को स्वीकार कर लिया है जो वास्तव में हैं ही नहीं- और उनमें सबसे बड़ी और सबसे केंद्रीय चीज है अहंकार। और निःसंदेह, इसकी सबसे बड़ी छाया बनती है- और वह छाया मृत्यु है।
जो लोग मृत्यु को सीधे समझने जाएंगे, वे कभी भी इसके रहस्य में प्रवेश नहीं कर सकेंगे। वे अंधकार के साथ लड़ रहे होंगे। अंधकार का अस्तित्त्व नहीं है, तुम उसके साथ नहीं लड़ सकते। प्रकाश लाओ, और फिर अंधकार है ही नहीं।

हम अहंकार को कैसे जान सकते हैं? अपने जीवन में थोड़ी और सजगता लाओ। प्रत्येक कृत्य को पहले से कम यांत्रिक ढंग से करो, और तुम्हें कुंजी हाथ लग गयी। अगर तुम चल रहे हो, तो रोबोट की भांति मत चलो। इस भांति मत चलते रहो जैसे तुम सदा चलते रहे हो, इसे यांत्रिक ढंग से मत करो। इसमें थोड़ी सजगता लाओः धीमे हो जाओ, प्रत्येक कदम पूरी सजगता के साथ उठाओ।
छोटे-छोटे कार्यों में इस तरह का प्रयास करो। तुम्हें कोई बहुत बड़ी चीजें नहीं करनी हैं। खाना खाते हुए, स्नान करते हुए, तैरते हुए, चलते हुए, बात करते, सुनते, अपना भोजन पकाते, अपने कपड़े धोते हुए- प्रक्रिया को अ-यांत्रिक कर दो। अ-यांत्रिक इस शब्द को याद रखो; जागरूक होने का इसमें पूर्ण रहस्य है।
मन एक रोबोट है। रोबोट की अपनी एक उपयोगिता है; इसी ढंग से मन कार्य करता है। तुम कुछ सीखते होः जब तुम इसे सीखते हो, प्रारंभ में इसके प्रति सजग रहो। उदाहरण के लिए, अगर तुम तैरना सीखते हो, तो तुम बहुत सजग होते हो, क्योंकि तब जीवन खतरे में है। अथवा अगर तुम कार चलाना सीखते हो, तब तुम बहुत सजग होते हो। तुम्हें सजग होना पड़ता है, तुम्हें बहुत चीजों के प्रति सजग होना पड़ता है। स्टीयरिंग, व्हील, सड़क, गुजरते हुए लोग, एक्सीलरेटर, ब्रेक, क्लच- तुम्हें सब कुछ के प्रति सजग होना पड़ता है।
बहुत सी चीजें हैं जिन्हें तुम्हें याद रखना है, और तुम कांप रहे हो, और अब कोई गलती करना खतरनाक है। यह बहुत खतरनाक है, इसलिए तुम्हें सजगता रखनी पड़ती है। लेकिन जिस क्षण तुमने ड्राइविंग सीख ली, उतनी सजगता की जरूरत नहीं रहेगी। तब तुम्हारे मन का रोबोट इसे सम्हाल लेगा।
यही है हम जिसे सीखना कहते हैं। कुछ सीखने का अभिप्राय है कि अब यह चेतना से रोबोट में स्थानांतरित कर दी गयी है। सीखने का कुल इतना ही मतलब है। एक बार कोई चीज तुमने सीख ली, अब यह तुम्हारे चेतन मन का हिस्सा न रही, यह अचेतन मन को सौंप दी गयी। अब अचेतन इसे कर सकता है; अब तुम्हारी चेतना कुछ और सीखने के लिए स्वतंत्र है।
यह अपने आप में बहुत महत्त्वपूर्ण है। अन्यथा, तुम एक ही चीज को पूरा जीवन सीखते रहोगे। मन एक बहुत अच्छा सेवक है, एक बहुत अच्छा कंप्यूटर है। तुम्हें सजग रहने के लिए सदा सक्षम रहना है, कि यह तुम पर पूर्ण रूप से अधिकार न जमा ले, कि यह पूरी तरह सर्वेसर्वा न बन जाए, कि एक द्वार सदा खुला रहना चाहिए जहां से तुम रोबोट के बाहर आ सको।
इस द्वार के खोलने को ध्यान कहते हैं। लेकिन स्मरण रहे, रोबोट इतना कुशल है कि यह ध्यान को भी अपने नियंत्रण में ले सकता है। एक बार तुम्हारे सीख लेने के बाद, मन कहता हैः अब तुम्हें इसकी चिंता की कोई जरूरत नहीं, मैं इसे कर सकता हूं। मैं इसे करूंगा, तुम इसे मुझ पर छोड़ दो।
और मस्तिष्क कुशल है; यह एक बहुत सुंदर मशीन है, कुशलता से कार्य करती है। वास्तव में, हमारा सब विज्ञान, ज्ञान में हमारी संपूर्ण तथाकथित प्रगति के साथ, मानवीय मस्तिष्क जैसी परिष्कृत चीज पैदा नहीं कर पाया। दुनिया में बड़े से बड़े कंप्यूटर भी मस्तिष्क की तुलना में प्राथमिक कक्षा के हैं।
मस्तिष्क तो एक चमत्कार है।
लेकिन जब कोई चीज इतनी ताकतवर होती है, तो उसमें खतरा होता है। तुम इससे और इसकी ताकत से इतने अधिक सम्मोहित हो सकते हो कि तुम अपनी आत्मा खो सकते हो। अगर तुम सजग होना पूर्णतः भूल चुके हो, तब अहंकार निर्मित होता है।
अहंकार आत्यंतिक असजगता की अवस्था है। तुम्हारे पूरे अस्तित्त्व पर मन ने अधिकार जमा लिया है; यह कैंसर की भांति तुम्हारे ऊपर फैल गया है, पीछे कुछ भी नहीं छूटा है। अहंकार कैंसर है भीतर का- आत्मा का कैंसर है। और एकमात्र इलाज है, एकमात्र इलाज मैं कहता हूं- ध्यान। तब तुम अपने मन से कुछ क्षेत्र वापस लेना शुरू कर देते हो। और यह प्रक्रिया कठिन है, पर आनंददायी भी है। प्रक्रिया कठिन है लेकिन जादू भरी है। प्रक्रिया कठिन है परंतु चुनौतीपूर्ण है, रोमांचक है। यह तुम्हारे जीवन में एक नया आनंद लाएगी। जब तुम रोबोट से अपना अधिकार-क्षेत्र वापस पा लोगे तो तुम हैरान

होकर देखोगे कि तुम एक सर्वथा नए व्यक्ति बन रहे हो, कि तुम्हारा अस्तित्त्व फिर से नया हो गया है, कि यह तो एक नया जन्म है।
और तुम चकित होओगे कि तुम्हारी आंखें पहले से अधिक देखती हैं, तुम्हारे कान पहले से अधिक सुनते हैं, तुम्हारे हाथ पहले से अधिक स्पर्श करते हैं, तुम्हारी देह पहले से अधिक अनुभव करती है, तुम्हारा हृदय अधिक प्रेम करता है- हर चीज पहले से अधिक हो जाती है। और अधिक केवल परिमाण में ही नहीं, गुणात्मक रूप में भी। तुम न केवल अधिक वृक्ष देखते हो, बल्कि वृक्षों में और गहरा देखते हो। वह जो वृक्षों में हरा है वह और हरा हो जाता है- इतना ही नहीं, बल्कि यह प्रदीप्त हो उठता है। इतना ही नहीं, बल्कि वृक्ष अपना एक व्यक्तित्व पाने लगता है। इतना ही नहीं, बल्कि अब तुम अस्तित्त्व के साथ सहभागिता की अनुभूति कर सकते हो।
और जितने अधिक अधिकार-क्षेत्र तुम पा लोगे, उतना ही तुम्हारा जीवन अधिकाधिक जगमग और रंगीन हो जाएगा। तब तुम एक इंद्रधनुष बन गए- सभी रंगोंवाले, संगीत के सभी स्वर- पूरी अष्टपदी। तुम्हारा जीवन और समृद्ध हो गया, बहु-आयामी, जिसमें गहराई है, ऊंचाई है, अतिसुंदर वादियां हैं और अति सुंदर सूर्योज्ज्वल शिखर हैं।
तुम फैलना शुरू हो जाते हो। तुम जैसे ही रोबोट से अपने अधिकार वापस ले लेते हो, तुम जीवंत होना शुरू हो जाते हो।
यह ध्यान का चमत्कार है; यह कुछ ऐसी चीज है जिसे चूकना नहीं चाहिए। जो लोग इसे चूक गए हैं, वे जीए ही नहीं हैं। और जीवन को ऐसी सघनता में, ऐसी मस्ती में जानना, यह जानना है कि मृत्यु नहीं है। जीवन को न जानना मृत्यु को पैदा करता है; जीवन का अज्ञान मृत्यु को पैदा करता है।
जीवन को जानना यह जानना है कि मृत्यु नहीं है, कभी थी ही नहीं। मैं घोषणा करता हूंः कोई कभी नहीं मरा, और कोई कभी नहीं मरेगा। चीजों का स्वरूप ऐसा है कि मृत्यु असंभव है- केवल जीवन है। हां, जीवन अपने रूप बदलता रहता हैः एक दिन तुम यह हो, और दूसरे दिन तुम कुछ और ही हो। वह बच्चा कहां गया जो तुम कभी थे? क्या वह बच्चा मर गया? क्या तुम कह सकते हो कि वह बच्चा मर गया? बच्चा मर नहीं गया है, फिर तब बच्चा है कहां? रूप बदल गया है। बच्चा अपने सारतत्त्व में अभी भी मौजूद है, लेकिन अब तुम जवान पुरुष अथवा जवान स्त्री बन गए हो। बच्चा अपने पूरे सौंदर्य के साथ विद्यमान है; उसके ऊपर नई समृद्धियां आच्छादित कर दी गयी हैं। और फिर एक दिन तुम बूढ़े हो जाओगे। तब तुम्हारी जवानी कहां गयी? मर गयी? नहीं, फिर कुछ और अधिक घटित हुआ है। बुढ़ापा अपनी फसल ले आया है, बुढ़ापा अपनी बुद्धिमत्ता ले आया है, बुढ़ापा अपनी सुंदरताएं ले आया है।
बच्चा निर्दोष है, वह उसका सारतत्त्व है। जवानी ऊर्जा से लबालब है, वह उसका सारतत्त्व है। और बूढ़े व्यक्ति ने सब देख लिया है, सब जी लिया है, सब जान लिया हैः बुद्धिमत्ता घटित हुई है, वह उसका सारतत्त्व है। परंतु उसकी बुद्धिमत्ता में उसकी जवानी का कुछ अंश मौजूद है; यह भी लबालब है, प्रदीप्त है, तरंगायित है, धड़कती है, जीवंत है। और इसमें बच्चे का भी कुछ अंश है; यह निर्दोष है।
अगर बूढ़ा आदमी जवान भी नहीं है, तब केवल उसकी उम्र बढ़ी है, वह बूढ़ा नहीं हुआ है। वह समय और आयु में बढ़ा है, परंतु परिपक्व (विकसित) नहीं हुआ है। वह चूक गया है। अगर बूढ़ा आदमी बच्चे की भांति निर्दोष नहीं है, अगर उसकी आंखों से बच्चे की भांति स्फटिक स्पष्टता नहीं झलकती, तब उसने अभी तक जीया ही नहीं है।
अगर तुम समग्रता से जीयो तो होशियारी और कुटिलता गायब हो जाएगी और श्रद्धा पैदा होगी। ये सब कसौटियां हैं जिनसे पता चलता है कि तुम जीए कि नहीं। बच्चा कभी मरता नहीं है, उसका केवल रूपांतरण होता है। जवान कभी मरता नहीं है, बस फिर एक नया रूपांतरण होता है। और क्या तुम सोचते हो कि बूढ़ा आदमी मर जाता है? हां, देह गायब हो जाती है, क्योंकि इसका काम पूरा हो गया। किंतु चैतन्य की यात्रा जारी रहती है।
अगर मृत्यु एक सत्य होती, तो अस्तित्त्व बिल्कुल व्यर्थ होता, अस्तित्त्व पागल होता। अगर एक बुद्ध की मृत्यु होती है, उसका अभिप्राय है

कि एक ऐसा अपूर्व सुंदर संगीत, ऐसी गरिमा, ऐसी महिमा, ऐसी सुंदरता, ऐसा काव्य अस्तित्त्व से अदृश्य हो गया। तब तो अस्तित्त्व बहुत मूढ़ है। तब प्रयोजन ही क्या हुआ? तब विकास कैसे संभव है? तब क्रमिक विकास कैसे संभव है?
बुद्ध तो एक दुर्लभ हीरे हैं। यह घटना कभी-कभार घटित होती है। लाखो- करोड़ों लोग कोशिश करते हैं, तब कहीं कोई एक व्यक्ति बुद्ध बनता है। और फिर उसकी मृत्यु होती है, और सब समाप्त हो जाता है। फिर क्या प्रयोजन हुआ? नहीं, बुद्ध मर नहीं सकते। वे विलीन हो जाते हैं, अस्तित्त्व उनको अपने में समा लेता है। बुद्ध बने रहते हैं। अब यह सातत्य देह मुक्त है; क्योंकि अब वे इतने वितीर्ण हो गए हैं कि कोई देह उनको अपने में समाहित नहीं कर सकती सिवाय स्वयं समष्टि के। वे इतने सागर जैसे हो गए हैं कि अब उनके छोटे- छोटे रूप संभव नहीं हैं। अब उनका केवल सारभूत अस्तित्व होता है। अब फूल की भांति नहीं, केवल सुगंध की भांति ही उनका अस्तित्त्व होता है। अब वे आकार नहीं ले सकते, अब वे केवल अस्तित्त्व की एक निराकार प्रज्ञा की भांति रह सकते हैं।
विश्व अधिकाधिक प्रज्ञावान हुआ है। बुद्ध के पहले यह इतना बुद्धिमान नहीं था, कुछ अभाव था। जीसस के पहले यह इतना बुद्धिमान नहीं था, मोहम्मद के पहले यह इतना बुद्धिमान नहीं था। इन सबका योगदान है। अगर तुम ठीक समझो, परमात्मा कुछ ऐसी घटना नहीं है जो घटित हो चुकी, बल्कि जो घटित हो रही है। परमात्मा प्रतिदिन घटित हो रहा है। बुद्ध ने कुछ सृजन किया है, महावीर ने कुछ सृजन किया है, पतंजली ने कुछ सृजन किया है, लाओत्सु, जरथुत्र, अतीशा, तिलोपा- इन सबका योगदान है।
परमात्मा का सृजन हो रहा है। तुम्हारे हृदयों को पुलकित हो जाने दो कि तुम भी परमात्मा का सृजन कर सकते हो। तुम्हें बार-बार यह बताया गया है कि परमात्मा ने दुनिया को बनाया। मैं तुम्हें बताना चाहूंगाः हम प्रतिदिन परमात्मा का सृजन कर रहे हैं।
और तुम परिवर्तन देख सकते हो। अगर तुम ओल्ड टेस्टामेंट में देखो, तो ओल्ड टेस्टामेंट का ईश्वर जो शब्द बोलता है वे बहुत मूढ़तापूर्ण हैं। ओल्ड टेस्टामेंट का ईश्वर कहता हैः मैं बहुत ईर्ष्यालु ईश्वर हूं। क्या तुम ईश्वर को ईर्ष्यालु सोच सकते हो? जो मेरा अनुकरण नहीं करेंगे उन्हें कुचलकर नरक की अग्नि में फेंक दिया जाए। वे लोग जो मेरी आज्ञा नहीं मानते, उनसे बदला लिया जाएगा।
क्या तुम बुद्ध के मुंह से निकलते ऐसे शब्द सोच सकते हो? नहीं, परमात्मा की धारणा का प्रतिदिन परिष्कार हो रहा है। मोज़ेज़ का परमात्मा आदिम है, प्रारंभिक है, अल्पविकसित है; जीसस का परमात्मा कहीं अधिक परिष्कृत, कहीं अधिक सुसंस्कृत है। जितना अधिक मनुष्य सुसंस्कृत होता है, उतना अधिक उसका परमात्मा सुशिक्षित होता है। जितनी अधिक मनुष्य में समझ बढ़ती है, उतना अधिक उसका परमात्मा समझदार होता है, क्योंकि तुम्हारा परमात्मा तुम्हारा प्रतिनिधित्व करता है।
मोज़ेज़ का परमात्मा नियम है, जीसस का परमात्मा प्रेम है। बुद्ध का परमात्मा करुणा है, अतीशा का परमात्मा एकदम शून्य और मौन है।
हम परमात्मा के नए आयामों की खोज कर रहे हैं, हम परमात्मा में नए आयाम जोड़ रहे हैं, परमात्मा का सृजन किया जा रहा है। तुम केवल खोजी ही नहीं हो, तुम सर्जक भी हो। और भविष्य परमात्मा के और बेहतर दर्शन करेगा।
बुद्ध कभी मरते नहीं, वे हमारी परमात्मा की धारणा में विलीन हो जाते हैं। जीसस हमारे परमात्मा के सागर में समाहित हो जाते हैं। और वे लोग जो अभी जागृत नहीं हुए हैं, वे भी मरते नहीं हैं। उन्हें किसी न किसी रूप में पुनः-पुनः आना पड़ता है, क्योंकि जाग्रत होने की संभावना रूपों के माध्यम से ही केवल होती है।
विश्व एक संदर्भ है जाग्रत होने के लिए- एक अवसर है।
अतीशा को याद करो। वह कहता है- अवसर की प्रतीक्षा मत करो- क्योंकि विश्व ही एक अवसर है; हम पहले से ही इसमें हैं। विश्व एक अवसर है सीखने के लिए। यह विरोधाभासी प्रतीत होता हैः समय एक अवसर है समयातीत को सीखने का,

देह एक अवसर है देहातीत को जानने का, पदार्थ एक अवसर है चैतन्य को सीखने का, सेक्स एक अवसर है समाधि को सीखने का। यह पूरा अस्तित्त्व एक अवसर है। क्रोध एक अवसर है करुणा को सीखने का। लोभ एक अवसर है बांटना सीखने के लिए। और मृत्यु एक अवसर है अहंकार में जाने और देखने के लिए कि मैं हूं कि मैं नहीं हूं। अगर मैं हूं, तब शायद मृत्यु संभव है। अगर तुम यह जान लो कि तुम नहीं हो, केवल शुद्ध शून्य है भीतर, कि भीतर कोई नहीं है- अगर तुम अपने भीतर कोई नहीं अनुभव कर सको, तब मृत्यु कहां है? मृत्यु क्या है? कौन मर सकता है?
वंदना, तुम्हारा प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। तुम पूछती होः क्या आप मृत्यु के संबंध में कुछ कहेंगे?
केवल एक ही बात कि मृत्यु नहीं होती।
और तुम पूछती हो... और मृत्यु की कला क्या है?
जब मृत्यु है ही नहीं, तुम मृत्यु की कला कैसे सीखोगी? तुम्हें जीने की कला सीखनी होगी। अगर तुम जीवन जीना जानती हो, तो तुम जीवन और मृत्यु के संबंध में सब कुछ जान जाओगी। लेकिन तुम्हें विधायक की ओर जाना होगा।
कभी भी नकार को अपने अध्ययन का विषय मत बनाओ, क्योंकि नकार है ही नहीं। तुम कितना ही उस पर काम करते रहो, तुम कहीं नहीं पहुंचोगे। प्रकाश को समझने की कोशिश करो, अंधकार को नहीं। जीवन को समझने की कोशिश करो, मृत्यु को नहीं। प्रेम को समझने की कोशिश करो, घृणा को नहीं।
अगर तुम घृणा में जाओ, तुम कभी इसे समझ नहीं पाओगे, क्योंकि घृणा प्रेम की अनुपस्थिति है। ऐसे ही अधंकार प्रकाश की अनुपस्थिति है। तुम अनुपस्थिति को कैसे समझ सकते हो?
अगर तुम मुझे समझना चाहते हो, तब तुम मुझे समझो, मेरी अनुपस्थिति को नहीं। अगर तुम इस कुर्सी का अध्ययन करना चाहते हो, तो इस कुर्सी का ही अध्ययन करना होगा- न कि जब आशीष इसे उठाकर लेकर चला गया है, तब तुम अनुपस्थिति का अध्ययन करने लगोगे। तुम किस बात का अध्ययन करोगे?
सदा सजग रहो। कभी किसी नकार में मत फंसो। अनेक लोक नकारात्मक चीजों का अध्ययन करते रहते हैं; व्यर्थ उनकी ऊर्जा नष्ट हो जाती है।
मृत्यु की कोई कला नहीं है। अथवा जीने की कला ही मरने की कला है। जीयो! परंतु तुम्हारे तथाकथित धार्मिक लोग तुम्हें सिखाते रहे हैं कि जीयो मत। वे मृत्यु के निर्माता हैं। बहुत परोक्ष ढंग से उन्होंने मृत्यु की रचना की है, क्योंकि उन्होंने तुम्हें जीने के प्रति बहुत भयभीत कर दिया है। सब कुछ गलत हैः जीवन गलत है, संसार गलत है, शरीर गलत है, प्रेम गलत है, संबंध गलत है, किसी चीज का मजा लेना गलत है। उन्होंने तुम्हारे भीतर प्रत्येक चीज के प्रति इतना अपराध-भाव भर दिया है, हर चीज की इतनी निंदा कर दी है कि तुम जी नहीं सकते।
और जब तुम जी ही नहीं सकते, तो फिर क्या रह गया? अनुपस्थिति, जीवन की अनुपस्थिति- और वही मृत्यु है। और तब तुम कांप रहे हो, उस चीज के सामने कांप रहे हो, जो है ही नहीं, जो तुम्हारी अपनी ही रचना है। और चूंकि तुम मृत्यु के महान भय में कांपने लगते हो, पुरोहित बहुत शक्तिशाली बन जाता है। वह कहता है, मत चिंता करो, मैं हूं तुम्हारी मदद करने को। मेरा अनुकरण करो। मैं तुम्हें नरक से बचाऊंगा और मैं तुम्हें स्वर्ग में ले जाऊंगा। और जो लोग मेरे साथ हो गए हैं बच जाएंगे, और कोई भी नहीं बचेगा।
ईसाई ऐसी ही बातें लोगों को कहते रहते हैं, जब तक तुम ईसाई नहीं बनते, तुम बच नहीं सकते। केवल जीसस ही तुम्हारी रक्षा करेगा। निर्णय का दिन निकट आ रहा है, और निर्णय के दिन, जो लोग जीसस के साथ होंगे, वह उन्हें पहचान लेगा। वह उनको चुन लेगा। और दूसरे लोग, लाखों-करोड़ों लोग, सदा-सदा के लिए केवल नरक में फेंक दिए जाएंगे। स्मरण रहे, भागने का कोई उपाय नहीं है, वे सनातन काल तक नरक में फेंक दिए जाएंगे।
और ऐसा ही दूसरे धर्मों का रवैया है। लेकिन लोग भय के कारण किसी भी चीज से चिपकने लगते हैं- जो भी उनके एकदम निकट उपलब्ध हो। अगर तुम संयोग से हिंदू, जैन या यहूदी घर में पैदा हो गए हो, तो तुम यहूदी, जैन या हिंदू बन

जाते हो, जैसा भी संयोग हो। जो भी निकट में उपलब्ध है, बच्चा उसी से चिपकने लगता है।

मेरा दृष्टिकोण एकदम भिन्न है। मैं नहीं कहता कि भयभीत होओ - वह तो पुरोहित की चाल है, वह तो उसका व्यावसायिक रहस्य है। मैं कहता हूं कि डर की कोई बात नहीं है, क्योंकि परमात्मा तुम्हारे भीतर है। डरने की कोई बात नहीं है। जीवन को भयमुक्त होकर जीयो। प्रत्येक क्षण को जितनी सघनता से जी सकते हो जीयो। सघनता का स्मरण रखो। और अगर तुम किसी क्षण को सघनता से नहीं जीते हो, तब क्या होता है? तुम्हारा मन दोहराने को लालायित रहता है।

तुम एक स्त्री को प्रेम करते हो, तुम्हारा मन उसे दोहराने को लालायित रहता है। क्यों? तुम एक ही अनुभव को फिर-फिर दोहराने के लिए क्यों लालायित रहते हो? तुम एक प्रकार का खाना खाते हो, तुम इसका आनंद लेते हो, अब तुम उसी भोजन के लिए ललचाते हो। क्यों? कारण यह है कि तुम जो भी करते हो, तुम कभी उसे समग्रतापूर्वक नहीं करते। इसलिए तुम्हारे भीतर कुछ अतृप्ति बनी रहती है। अगर तुम इसे समग्रतापूर्वक करो, तो तुम उसकी पुनरावृत्ति के लिए लालायित नहीं होओगे और तुम कुछ नए की खोज करोगे, अज्ञात का अन्वेषण करोगे। तुम एक दुष्चक्र में ही नहीं घूमते रहोगे, तुम्हारा जीवन एक विकास हो जाएगा। आमतौर पर लोग वर्तुल में घूमते रहते हैं। वे आगे बढ़ते दिखाई पड़ते हैं, किंतु वे केवल दिखाई भर पड़ते हैं।

विकास का अभिप्राय है कि तुम वर्तुल में नहीं घूम रहे हो, प्रतिदिन कुछ नया घटित हो रहा है, वास्तव में प्रत्येक क्षण कुछ नया हो रहा है। और यह कब संभव होता है? जब तुम सघनतापूर्वक जीना शुरू कर देते हो।

मैं तुम्हें सिखाना चाहूंगा कि कैसे तल्लीनता और समग्रतापूर्वक खाएं, कैसे सघनता और समग्रतापूर्वक प्रेम करें, कैसे छोटी-छोटी चीजें इतनी मस्ती से करें कि कुछ पीछे न छूट जाए। अगर तुम हंसो, तो वह हंसी तुम्हारी जड़ों को हिला दे। अगर तुम रोओ, तो आंसू हो जाओ; आंसुओं के माध्यम से तुम्हारा हृदय उंडेल दिया जाए। अगर तुम किसी का आलिंगन करो, तो आलिंगन ही हो जाओ। अगर तुम किसी का चुंबन लो, तो ओंठ ही हो जाओ, केवल चुंबन ही हो जाओ। और तुम चकित हो जाओगे कि अब तक तुम कितना चूकते रहे हो, कितना तुम चूक गए हो, कैसे तुम अब तक कुनकुने ढंग से जीते रहे हो।

मैं तुम्हें जीने की कला सिखा सकता हूं। उसी में मरने की कला निहित है; तुम्हें इसे अलग से नहीं सीखना है। जो व्यक्ति जीना जानता है, वह मरना भी जानता है। जो व्यक्ति प्रेम में उतरना जानता है, वह यह भी जानता है कि किस क्षण प्रेम के बाहर आ जाना। वह शालीनता से, अहोभावपूर्वक अलविदा कहते हुए प्रेम के बाहर आ जाता है - किंतु केवल वही व्यक्ति जो प्रेम करना जानता है।

लोग नहीं जानते कि कैसे प्रेम करें? और कैसे अलविदा कहें? जब यह कहने का क्षण आता है। अगर तुम प्रेम करते हो तो तुम यह भी जानोगे कि प्रत्येक चीज का प्रारंभ है और प्रत्येक चीज का अंत भी, यह कि शुरू होने का समय होता है और समाप्त होने का भी समय होता है, और इसमें कोई घाव नहीं है। व्यक्ति को घाव नहीं लगता, व्यक्ति जान लेता है कि मौसम चला गया। व्यक्ति निराश नहीं होता है, व्यक्ति इसे बस समझ लेता है।

और व्यक्ति दूसरे को धन्यवाद देता हैः तुमने मुझे कितने सुंदर उपहार दिए! तुमने मुझे जीवन के नए दृष्टिकोण दिए, तुमने कुछ झरोखे खोले जिन्हें मैं अपने आप शायद कभी न खोल पाता। अब समय आ गया है कि हम अलग हो जाएं और अपने रास्ते अलग कर लें। किसी क्रोध में नहीं, किसी आक्रोश में नहीं, किसी शिकवे-शिकायत में नहीं, बल्कि गहन अहोभाव और बहुत प्रेम के साथ, धन्यवाद से भरे हृदय के साथ।

अगर तुम प्रेम करना जानते हो, तो तुम अलग होना भी जानोगे। तुम्हारे अलग होने में एक सौंदर्य और एक गरिमा होगी। और जीवन के साथ भी ठीक ऐसा ही हैः अगर तुम जानते हो कैसे जीएं, तो तुम मृत्यु की कला भी जानोगे। तुम्हारी मृत्यु अत्यंत सुंदर होगी।

सुकरात की मृत्यु बहुत सुंदर होती है, बुद्ध की मृत्यु बहुत सुंदर होती है। जिस दिन बुद्ध की मृत्यु हुई, उस सुबह उन्होंने अपनी सभी शिष्यों को, सभी भिक्षुओं को एकत्रित किया और उन्हें बताया, अब अंतिम दिन आ गया है,

मेरी नौका आ गयी है और मुझे जाना है। यह एक सुंदर यात्रा थी, एक सुंदर संग-साथ था। अगर तुम्हें कोई प्रश्न पूछने हों, तो तुम पूछ सकते हो, क्योंकि आज के बाद मैं तुम्हें भौतिक रूप से उपलब्ध नहीं रहूंगा।
शिष्यों पर एक गहन मौन, एक गहन उदासी उतर आई। बुद्ध हंसे और बोले, उदास मत होओ, क्योंकि यही तो मैं तुम्हें बार-बार सिखाता रहा हूंः जिसका प्रारंभ है उसका अंत है। अब मुझे मेरी मृत्यु के माध्यम से भी तुम्हें सिखा देने दो। जैसे मैं तुम्हें अपने जीवन के द्वारा सिखाता रहा हूं, अब मुझे मेरी मृत्यु के द्वारा भी तुम्हें सिखा देने दो।
किसी को कोई प्रश्न पूछने का साहस नहीं हुआ। उन्होंने पूरा जीवन हज़ारों प्रश्न पूछे थे, और यह कोई प्रश्न पूछने का क्षण न था, उनकी ऐसी मनोदशा न थी, वे तो रो रहे थे।
तो बुद्ध ने कहा, ‘अलविदा।’ अगर तुम्हारे कोई प्रश्न नहीं हैं तो मैं विदा होता हूं। वे आंख बंद करके वृक्ष के नीचे बैठ गए और देह से अदृश्य हो गए। बौद्ध परंपरा में, ऐसे देह से अदृश्य हो जाने को प्रथम ध्यान कहा जाता है। इसका अभिप्राय है अपने शरीर से अपना तादात्म्य तोड़ लेना और समग्रतः, पूर्णतः जान लेना कि मैं शरीर नहीं हूं।
तुम्हारे मन में प्रश्न अवश्य पैदा होगाः क्या यह बुद्ध पहले से नहीं जानते थे? वे इसे पहले से जानते थे, लेकिन बुद्ध जैसे व्यक्ति को तब कोई ऐसी युक्ति निर्मित करनी पड़ती है जिसके द्वारा उनका थोड़ा सा संबंध देह से बना रह सके। अन्यथा वे बहुत पहले ही देह छोड़ देते- बयालीस साल पहले ही वे देह छोड़ दिए होते। जिस दिन उनको संबोधि घटित हुई, उसी दिन। करुणा के कारण उन्होंने एक वासना निर्मित की- दूसरों की मदद करने की वासना। यह भी एक वासना ही है, और यही वासना व्यक्ति को देह के साथ जोड़े रखती है।
उन्होंने लोगों की मदद करने की वासना निर्मित की। मैंने जो कुछ भी जाना है, उसे मुझे बांटना है। अगर तुम बांटना चाहते हो, तो तुम्हें अपने मन और शरीर का उपयोग करना पड़ेगा। वह छोटा सा अंश जुड़ा रहा।
अब वे देह में इस छोटी सी जड़ को भी काट देते हैं; अब उनका देह से तादात्म्य टूट जाता है। प्रथम ध्यान पूरा हुआ, देह छूट गई।
तब दूसरा ध्यानः मन छोड़ दिया गया। उन्होंने बहुत पहले मन को छोड़ दिया थाः एक मालिक की भांति इसे छोड़ दिया था, लेकिन एक दास की भांति इसका अभी भी उपयोग किया जा रहा था। अब तो इसकी एक दास की भांति भी जरूरत न रही, इसे पूरी तरह छोड़ दिया गया है, समग्रतः छोड़ दिया गया है।
और तब तीसरा ध्यानः उन्होंने अपना हृदय छोड़ दिया। अब तक इसकी जरूरत थी, वे अपने हृदय के माध्यम से संचालित हो रहे थे, अन्यथा करुणा संभव न होती। वे हृदय ही थे; अब उन्होंने हृदय से भी अपना संबंध तोड़ दिया।
जब ये तीन ध्यान पूरे होते हैं, तब चौथा घटित होता है। अब वे एक व्यक्ति
न रहे, एक आकार न रहे, एक लहर न रहे। वे सागर में विलीन हो गए। वे वही हो गए जो वे सदा से थे। वे वही हो गए जिसे उन्होंने बयालीस वर्ष पूर्व जान लिया था, लेकिन किसी प्रकार से विलंब करने का प्रयास कर रहे थे, ताकि लोगों की मदद कर सकें।
उनकी मृत्यु ध्यान का एक अत्यंत प्रभावकारी प्रयोग है। और कहा जाता है कि अनेक जो वहां उपस्थित थे, केवल उन्हें धीरे-धीरे जाते देखकर... पहले उन्होंने देखा कि देह पहले जैसी नहीं रही, देह से जीवंतता अदृश्य हो गयी। देह वहीं थी, लेकिन एक बुत की भांति। जो लोग और गहरा देख सकते थे, अधिक ध्यानपूर्ण थे, उन्होंने तुरंत देख लिया कि अब मन को भी छोड़ दिया गया था और भीतर मन नहीं बचा था। जो लोग और भी अधिक गहरा देख सकते थे, वे देख सके कि हृदय भी समाप्त हो गया था। और जो लोग वास्तव में बुद्धत्व के कगार पर खड़े थे, बुद्ध को अदृश्य होते देखकर वे भी अदृश्य हो गए।
जिस दिन बुद्ध की मृत्यु हुई उस दिन उनके अनेक शिष्य संबोधि को उपलब्ध हुए- अनेक, केवल उन्हें मरते देखकर। उन्होंने उन्हें जीते देखा था, उन्होंने उनका जीवन देखा था, लेकिन अब चरमोत्कर्ष आ गया था। उन्होंने उनको मरते देखा, ऐसी सुंदर मृत्यु, ऐसी गरिमा, ऐसी ध्यानमयता। यह देखते हुए अनेक जाग्रस्त हो गए।

एक बुद्ध के साथ होना, एक बुद्ध के साथ जीना, उसके प्रेम की बौछारें प्राप्त करना- एक वरदान है। लेकिन सबसे बड़ा वरदान है तब उपस्थित होना जब एक बुद्ध की मृत्यु होती है। तब तो तुम उस ऊर्जा पर सवार हो सकते हो, तुम उस ऊर्जा के साथ एक महान छलांग ले सकते हो- क्योंकि बुद्ध अदृश्य हो रहे हैं, और अगर तुम्हारा प्रेम महान है और तुम्हारा संबंध गहरा है, तो यह घटना अवश्य घटती है।
ऐसी ही मेरे अनेक संन्यासियों के साथ घटना घटेगी। जिस दिन मैं अदृश्य होऊंगा, तुममें से अनेक मेरे साथ अदृश्य हो जाएंगे।
विवेक मुझे बार-बार कहती है, आपके जाने के बाद मैं एक क्षण भी नहीं जीना चाहती। मैंने उसे कहा, ‘फिक्र मत कर। तुम अगर जीना भी चाहो, तो भी तुम जी न सकोगी।’ अभी कुछ दिन पहले दीक्षा विवेक से कह रही थी, ‘जिस क्षण भगवान गए, मैं भी गई।’
यह सच है। लेकिन यह केवल विवेक और दीक्षा के बारे में ही सच नहीं है, यह तुममें से बहुतों के बारे में सच है। और यह कुछ ऐसा नहीं है कि तुम्हें इसे करना पड़ेगा, यह घटना तो अपने आप घटित होगी। यह तो एक घटना होगी। लेकिन यह केवल तभी संभव है अगर तुम अपने भीतर पूरी श्रद्धा को घटित होने दो।
मेरे जीवित होते हुए, अगर तुम पूरी श्रद्धा को घटित होने दो, तब तुम मेरी मृत्यु में भी मेरे साथ हो सकते हो। लेकिन अगर थोड़ा सा भी संदेह है, तो तुम सोचोगे, लेकिन मैंने अभी तक बहुत सी चीजें नहीं की हैं और मुझे अपना जीवन भी जीना है। मैं जानता हूं कि यह दुखद है कि सदगुरु का जाना हो रहा है, लेकिन मुझे बहुत सी चीजें करनी हैं, मुझे अपना जीवन जीना है... और हजारों वासनाएं। अगर थोड़ा सा भी संदेह है, इसमें हजारों वासनाओं का जन्म होगा। लेकिन अगर संदेह नहीं है, तब सदगुरु की मृत्यु इस पृथ्वी पर कभी भी घटित होने वाली सर्वाधिक मुक्तिदायी अनुभूति है।
बुद्ध बहुत सौभाग्यशाली थे कि उनके महान शिष्य थे। जीसस इतने सौभाग्यशाली नहीं थे, उनके शिष्य कायर थे। उनकी जब मृत्यु हो रही थी, वे सब पलायन कर गए। जब वे सूली पर चढ़े थे, वे शिष्य मीलों दूर भाग गए थे- भय से कि कहीं पकड़े न जाएं। तीन दिनों के बाद जहां उनकी देह रखी गयी थी, वहां से जब पत्थर हटाया गया था उस समय, उनके पटशिष्यों में से कोई एक भी वहां मौजूद न था। केवल मैरी मगदलीन, वेश्या और एक दूसरी मैरी- दो स्त्रियों- ने साहस जुटाया।
शिष्यों को यह भय था कि अगर वे देखने गए कि उनके सदगुरु की देह का क्या हुआ है, अथवा वे देह को नीचे उतारने गए, वे पकड़े जा सकते हैं। केवल दो स्त्रियों में पर्याप्त प्रेम था। जब जीसस के शरीर को सूली से उतारा गया, तब भी तीन स्त्रियों ने उनके शरीर को नीचे उतारा। वे सब महान पटशिष्य वहां नहीं थे।
जीसस बहुत सौभाग्यशाली नहीं थे। और कारण साफ हैः वे कुछ नए का प्रारंभ कर रहे थे। पूरब में, लाखों-करोड़ों वर्षों से बुद्ध होते रहे हैं। समय के बारे में पाश्चात्य धारणा सही नहीं है, समय की पाश्चात्य धारणा बहुत छोटी है, और यह ईसाइयत के कारण ही बहुत छोटी है। ईसाई सिद्धांतवादियों ने यहां तक कि गणना कर ली है कि कब दुनिया निर्मित हुईः 19 मार्च को। मैं विस्मित हो रहा था, इक्कीस क्यों नहीं? परमात्मा केवल दो दिन ही चूक गया! क्राइस्ट के चार हज़ार चार सौ वर्ष पहले, दुनिया बनाई गयी। समय की बहुत छोटी सी धारणा है यह।
यह दुनिया लाखों-करोड़ों वर्षों से अस्तित्त्व में है। अब विज्ञान भी समय की पूर्वीय धारणा के अधिकाधिक निकट आता जा रहा है। पूरब में, हज़ारों- हज़ारों वर्षों से बुद्ध होते रहे हैं, इसलिए हम जानते हैं कि एक बुद्ध के साथ कैसे होना- कैसे उनके साथ जीना, कैसे उन में श्रद्धा करना, और जब वे मर रहे हों तब उनके साथ कैसे होना, और कैसे उनके साथ मरना।
ईसाइयत और पाश्चात्य शिक्षा की कृपा से, इसमें से बहुत कुछ भुला दिया गया है। आधुनिक भारतीय तो बिल्कुल भारतीय नहीं हैं। भारत में भारतीयों को ढूंढना बहुत मुश्किल है, लगभग असंभव है। केवल कभी-कभार मुझे कोई भारतीय मिलता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि जो लोग बहुत दूर-दूर देशों से आते हैं वे

तथाकथित भारतीयों से कहीं अधिक भारतीय होते हैं। तीन सौ वर्षों के पाश्चात्य आधिपत्य और पाश्चात्य शिक्षा ने भारतीय मानस को पूर्णतः उखाड़ फेंका है।
अब पूर्वीय मन से अधिक पश्चिमी मन बुद्धों को समझने के निकट से निकट आता जा रहा है। और कारण यह है कि पश्चिम टैक्नालॉजी और विज्ञान से ऊबता जा रहा है, और अधिकाधिक निराश होता जा रहा है, और उसने देख लिया है कि विज्ञान ने जो आशा बंधायी थी, उसे वह पूरा नहीं कर पाया है। वास्तव में उसने यह देख लिया है कि सभी क्रांतियां असफल हो गई हैं। और अब केवल एक ही क्रांति बची हैः आंतरिक क्रांति, जो आंतरिक रूपांतरण से घटित होती है।
भारतीय अभी भी आशा कर रहे हैं कि थोड़ी सी बेहतर तकनीक से, थोड़ी सी बेहतर सरकार से, थोड़े से और धन से, थोड़े अधिक उत्पादन से सब कुछ ठीक हो जाएगा। भारतीय मन आशा कर रहा है, यह बहुत भौतिकवादी है। आधुनिक भारतीय किसी और देश के लोगों से कहीं अधिक भौतिकवादी है। भौतिकवादी देश भौतिकता से ऊब गए हैं। यह असफल हो गया है; वे निराश हैं और उनका भ्रम टूट गया है।
इसलिए मैं तुमसे कहता हूंः मेरे संन्यासी अधिक भारतीय हैं। चाहे वे जर्मन हों, चाहे वे नार्वे के हों, चाहे वे डच हों, चाहे वे इतालवी, फ्रांसीसी, अंग्रेज, अमरीकी, रूसी, चेकोलावाकियन, जापानी, चीनी हों, लेकिन वे कहीं अधिक भारतीय हैं।
पत्रकार यहां बार-बार आते हैं और पूछते हैंः ‘यहां हमें अधिक भारतीय क्यों नहीं दिखाई देते हैं?’ और मैं कहता हूंः ‘वे सब भारतीय हैं! कुछ थोड़े से विदेशी हैं- कुछ थोड़े से जिन्हें तुम भारतीय समझते हो, बस केवल वही विदेशी हैं। अन्यथा वे सभी भारतीय हैं।’
भारतीय होना कोई भौगोलिक बात नहीं है, यह तो सत्य के प्रति आंतरिक दृष्टिकोण की कुछ बात है। आधुनिक भारत बुद्ध का मार्ग भूल गया है और यह भी भूल गया है कि बुद्धों के साथ कैसे जीया जाता है?
मैं उस संपदा को तुम्हारे सामने पुनः प्रकट करने का प्रयास कर रहा हूं। यह तुम्हारे हृदय की गहराई में उतर जाने दोः पहला सूत्र है जीने की कला। विधायक-भाव से जीवन जीयो। जीवन परमात्मा का पर्यायवाची है; तुम परमात्मा शब्द को छोड़ सकते हो। जीवन परमात्मा है। जीवन का आदर करते हुए बहुत अहोभावपूर्वक जीवन को जीयो। तुम इस जीवन के पात्र नहीं हो, सहज एक उपहार की भांति तुम्हें यह जीवन प्राप्त हुआ है। अनुगृहीत हो और प्रार्थना से भरो और जितना इसका स्वाद ले सकते हो लो, इसका रसास्वादन करो। अपने जीवन को सौंदर्यबोध की एक अनुभूति बनाओ। और इसे सौंदर्यबोध की एक अनुभूति बनाने के लिए बहुत कुछ की आवश्यकता नहीं होती है; बस एक सौंदर्यबोध की चेतना चाहिए, एक संवेदनशील आत्मा चाहिए। और अधिक संवेदनशील बनो, और अधिक सेंसुअल बनो, और इससे तुम अधिक आध्यात्मिक बन जाओगे।
पुरोहितों ने तुम्हारे शरीर को लगभग मृत्यु की अवस्था में ला दिया है। तुम पक्षाघातग्रस्त शरीरों, पक्षाघातग्रस्त मनों और पक्षाघातग्रस्त आत्माओं को ढो रहे होः तुम बैसाखियों के सहारे चल रहे हो। वे सब बैसाखियां फेंक दो। अगर तुम गिर भी जाओ और जमीन पर रेंगना पड़े, तो वह भी बैसाखियों से चिपके रहने से बेहतर होगा।
और जीवन को उसके अच्छा-बुरा, कड़वा-मीठा, अंधकार-प्रकाश, गर्मी-सर्दी- हर संभव रूप में अनुभव करो। सभी द्वंद्वों का अनुभव करो। अनुभव से मत घबराओ, क्योंकि जितना अधिक तुम्हारा अनुभव होगा उतने अधिक तुम परिपक्व बनोगे। सभी संभावित विकल्पों को खोजो, सभी दिशाओं में जाओ, एक घुमक्कड बनो, जीवन और अस्तित्त्व की दुनिया में एक वैगाबांड बन जाओ। और जीने का कोई भी अवसर मत चूको।
पीछे मुड़कर मत देखो। केवल मूर्ख ही अतीत के संबंध में सोचते हैं- मूर्ख, जिनके पास वर्तमान में जीने की प्रतिभा नहीं है। और केवल मूर्ख ही भविष्य की कल्पना करते हैं, क्योंकि वर्तमान में जीने का उनके पास साहस नहीं होता। अतीत को भूल जाओ और भूल जाओ भविष्य को- यही क्षण सब कुछ है। यही

क्षण तुम्हारी प्रार्थना, तुम्हारा प्रेम, तुम्हारा जीवन, तुम्हारा मरण, तुम्हारा सब कुछ बनना चाहिए।
बस यही है। और साहसपूर्वक जीयो, कायर मत बनो। परिणामों की मत सोचो; केवल कायर ही परिणामों के बारे में सोचते हैं। बहुत परिणाम-ग्रस्त मत रहो; वे लोग जो परिणाम-ग्रस्त होते हैं, जीवन को चूक जाते हैं। लक्ष्यों की मत सोचो, क्योंकि लक्ष्य सदा भविष्य में और दूर होते हैं, और जीवन अभी यहीं है, करीब है।
और बहुत उद्देश्यपूर्ण भी मत बनो। इसे मुझे दोहराने दोः बहुत उद्देश्यपूर्ण मत बनो, सदा ऐसे ख्याल मत ले आओ, इसका क्या उद्देश्य है? क्योंकि यह चाल है जिसे तुम्हारे दुश्मनों ने, मानवता के दुश्मनों ने, तुम्हारे जीवन के मूल स्रोत को विषाक्त करने के लिए रची है। इसका क्या उद्देश्य है? तुमने यह प्रश्न पूछा और सब सारहीन हो जाता है।
सुबह हुई है, सूरज उग रहा है और सूरज से प्राची लाल है, और पक्षी गीत गा रहे हैं और वृक्ष जाग रहे हैं, और सब ओर मस्ती है। यह एक आनंद है, फिर एक नया दिन आया है। और तुम वहां खड़े होकर प्रश्न पूछ रहे हो, इसका क्या उद्देश्य है? तुम चूक गए, तुम पूरी तरह चूक गए। तुम अलग-थलग हो गए।
गुलाब का एक फूल हवा में नाच रहा है, इतना कोमल और फिर भी इतना मजबूत, इतना कोमल और फिर भी तेज हवा में संघर्ष कर रहा है, इतना क्षणजीवी और फिर भी कितना आत्मविश्वास! देखो गुलाब के फूल कोः तुमने कभी किसी गुलाब के फूल को चिंतित देखा है? कितना आत्मविश्वास, कितना संपूर्ण आत्मविश्वास है, मानो कि यह यहां सदा रहेगा। एक क्षणभर का अस्तित्त्व है, और कितना भरोसा है सनातनता में! हवा में नाच रहा है, हवा से गुफ्तगू कर रहा है, अपनी सुगंध बिखेर रहा है- और वहां तुम खड़े प्रश्न पूछ रहे हो, इसका क्या उद्देश्य है? तुम एक स्त्री के प्रेम में पड़ते हो और प्रश्न पूछो, इसका क्या उद्देश्य है? तुम अपनी प्रेमिका अथवा अपने मित्र का हाथ हाथ में लेकर बैठे हो और प्रश्न पूछ रहे हो इसका क्या उद्देश्य है? और तुम भले ही हाथ में हाथ लिए बैठे हो, लेकिन अब वहां से जीवन गायब हो गया है, तुम्हारा हाथ मृत हो गया है।
उद्देश्य क्या है? यह प्रश्न उठाते ही सब कुछ नष्ट हो जाता है। मैं तुमसे कहता हूंः जीवन में कोई उद्देश्य नहीं है। जीवन अपना उद्देश्य स्वयं है; यह किसी साध्य का साधन नहीं है, यह अपना साध्य स्वयं है। उड़ता हुआ पक्षी, हवा में झूलता गुलाब, सुबह सूरज का उगना, रात्रि में सितारे, एक पुरुष का एक स्त्री के प्रेम में पड़ना, गली में एक बच्चे का खेलना... कोई उद्देश्य नहीं है, जीवन मात्र अपना आनंद ले रहा है, अपने होने का आनंद ले रहा है। ऊर्जा उमड़ रही है, नृत्य कर रही है, और कोई भी उद्देश्य नहीं है इसका। यह कोई प्रस्तुति नहीं है, यह कोई व्यवसाय नहीं है।
जीवन एक प्रेम की घटना है, काव्य है, संगीत है। ऐसे कचरा प्रश्न मत पूछो कि जीवन का क्या उद्देश्य है? क्योंकि जैसे ही तुमने यह पूछा कि तुमने अपने को जीवन से काट लिया। दार्शनिक प्रश्न जीवन का सेतु नहीं बन सकते, दार्शनिकता को अलग कर देना है।
जीवन के कवि बनो, गायक, संगीतकार, नर्तक, प्रेमी बनो और तुम जीवन का वास्तविक दर्शन जान लोगेः चिरंतन दर्शन।
और अगर तुम जीना चाहते हो... और यह एक सरल कला है। वृक्ष जी रहे हैं और उन्हें कोई सिखा नहीं रहा है। दरअसल वे हंस रहे होंगे यह देखकर कि तुमने ऐसा प्रश्न पूछा है, वे खिलखिला रहे होंगे- हो सकता है तुम उनकी खिलखिलाहट न सुन सको।
पूरा अस्तित्त्व गैर-दार्शनिक है। अगर तुम दार्शनिक हो तो तुम्हारे और अस्तित्त्व के बीच एक खाई है। अस्तित्त्व बस है, कोई उद्देश्य-पूर्ति के लिए नहीं। और जो व्यक्ति सच में जीना चाहता है, उसे उद्देश्य की धारणा तो छोड़ देनी होगी। अगर तुम बिना उद्देश्य के जीना शुरू कर दो, सघनता और समग्रता के साथ, प्रेम और श्रद्धापूर्वक, जब मृत्यु आएगी तो तुम जानोगे कैसे मरना- क्योंकि मृत्यु जीवन की समाप्ति नहीं है, बल्कि जीवन का ही एक हिस्सा है।

अगर तुमने अन्य चीजों को जाना है, अगर तुमने अन्य चीजों को जी लिया है, तब तुम मृत्यु को भी जी सकोगे। वास्तविक समझ वाला व्यक्ति अपनी मृत्यु को वैसे ही जी लेता है जैसे वह अपने जीवन को जी लेता है- उसी सघनता के साथ, उसी पुलक के साथ।
जब सुकरात को जहर दिया जाने वाला था, तब वह खूब पुलकित था। उसके कमरे के बाहर जहर तैयार किया जा रहा था; उसके शिष्य एकत्रित हो गए थे। वह अपने बिस्तर पर तैयार लेटा था, क्योंकि समय निकट आ रहा थाः छह बजे, जैसे ही सूरज डूबेगा, उसको जहर दिया जाएगा। लोग तो सांस तक भी नहीं ले रहे थे और घड़ी छह बजे के करीब आती जा रही थी, और यह महिमावान व्यक्ति सदा के लिए विदा हो जाएगा। और उसने कोई पाप नहीं किया था। उसका केवल एक ही पाप था कि वह लोगों को सत्य बताया करता था, कि वह एक सत्य का शिक्षक था, कि वह समझौता नहीं करता था, कि वह किन्हीं मूर्ख राजनेताओं के समक्ष झुकता नहीं था। वही उसका एकमात्र अपराध था; उसने किसी का कोई नुकसान नहीं किया था। और एथेन्स सदा- सदा के लिए गरीब हो जाने वाला था।
वास्तव में, सुकरात की मृत्यु के साथ, एथेन्स मर गया। तब उसके बाद एथेन्स ने कभी उस गरिमा को नहीं पाया, कभी नहीं। यह एक ऐसा अपराध था, सुकरात का कत्ल, कि एथेन्स ने आत्महत्या कर ली। यूनान की सभ्यता ने फिर कभी ऐसी ऊंचाई नहीं छुई।
कुछ दिनों तक यह जारी रहा, सुकरात की मात्र अनुगूंजें- क्योंकि प्लेटो उसका शिष्य था, मात्र एक अनुगूंज। और अरस्तु प्लेटो का शिष्य था, अनुगूंज की एक अनुगूंज। धीरे-धीरे, जैसे-जैसे सुकरात की अनुगूंजें विदा हो गयीं, युनानी संस्कृति भी दुनिया से गायब हो गयी। उसने गरिमा के दिन देखे थे, लेकिन सुकरात का कत्ल करके इसने आत्महत्या कर ली।
उसके शिष्य बहुत बेचैन थे, परंतु सुकरात उमंग में था, ऐसे ही जैसे तुम एक छोटे बच्चे को किसी प्रदर्शनी में ले जाओ और वह हर चीज को देखकर पुलकित हो जाता है, प्रत्येक चीज कितनी अनूठी है। वह बार-बार उठ बैठता और खिड़की की ओर जाता और जो आदमी जहर तैयार कर रहा था, उससे पूछता, तुम क्यों देर कर रहे हो? अब छह बज गए हैं।
और वह आदमी कहता, ‘सुकरात, तुम पागल हो या क्या हो? मैं केवल इसलिए देरी कर रहा हूं ताकि आपके जैसा सुंदर व्यक्ति थोड़ी देर और रुक सके। मैं सदा के लिए देर तो नहीं कर सकता हूं, लेकिन मैं इतना कर सकता हूं। थोड़ी देर और, थोड़ी देर और रुक जाओ। आप मरने के लिए इतनी जल्दी में क्यों हो?’
सुकरात ने कहा, ‘मैंने जीवन को जान लिया है, मैंने जीवन को जी लिया है, मैं जीवन का स्वाद जानता हूं। अब मैं मृत्यु के बारे में जिज्ञासु हूं। इसलिए मैं इतनी जल्दी में हूं। मैं आनंद से खूब तरंगित हूंः यह ख्याल ही कि अब मैं मरने जा रहा हूं और अब मैं देख सकूंगा कि मृत्यु क्या है! मैं मृत्यु का स्वाद लेना चाहता हूं। मैंने और सब चीज का स्वाद ले लिया है, केवल एक चीज अज्ञात बची है। मैंने जीवन को जी लिया है और उस सबको जान लिया है जो जीवन दे सकता है। यह जीवन का अंतिम उपहार है, और मैं वास्तव में विस्मय-विमुग्ध हूं।’
जो आदमी जीया है, सच में जीया है, वह जानेगा कि कैसे मरना।
वंदना, मृत्यु की कोई कला नहीं है। जीवन की कला ही मृत्यु की कला है, क्योंकि मृत्यु कोई जीवन से अलग नहीं है। मृत्यु जीवन का सर्वोच्च शिखर है, एवरेस्ट, सूर्योज्ज्वल एवरेस्ट। अस्तित्त्व में यह सर्वाधिक सुंदर चीज है।
लेकिन तुम मृत्यु का सौंदर्य केवल तभी जान सकते हो अगर तुम जीवन का सौंदर्य जानते हो। जीवन तुम्हें मृत्यु के लिए तैयार करता है। परंतु लोग तो बिल्कुल जी ही नहीं रहे हैं; हर संभव ढंग की बाधा उनके जीने में आती है। इसलिए वे नहीं जानते कि जीवन क्या है, और परिणामतः वे नहीं जान पाएंगे कि मृत्यु क्या है?
मृत्यु एक झूठ है। तुम इसके साथ समाप्त नहीं हो जाते, तुम केवल एक मोड़ लेते हो। तुम एक दूसरे रास्ते पर चल पड़ते होः तुम इस रास्ते से गायब हो जाते हो और किसी दूसरे रास्ते पर प्रकट हो जाते हो। अगर तुम अभी तक जाग्रत

नहीं हो, अभी तक संबुद्ध नहीं हुए, तब तुम यहां मरते हो, वहां पैदा हो जाते हो। तुम एक शरीर से गायब होते हो और तुरंत तुम किसी और गर्भ में प्रवेश कर जाते हो, क्योंकि लाखों-करोड़ों मूर्ख लोग पूरी दुनिया में सदा संभोग में संलग्न हैं- वे केवल तुम्हारा इंतजार कर रहे हैं। और वे सच में इतने अधिक हैं कि यह अच्छा है कि तुम अचेतन मरते हो और अचेतन रूप से तुम नए गर्भ को चुन लेते हो। अगर यह एक सजग चुनाव होता, तो तुम पगला जाते। कैसे चुनना? किसको चुनना?
अचेतन तुम मरते हो, अचेतन ही तुम निकटस्थ गर्भ जो तुम्हारे अनुकूल होता है उसके द्वारा पैदा हो जाते हो। केवल शरीर चला जाता है, तुरंत ही दूसरा आकार बन जाता है। लेकिन अगर तुम संबुद्ध हो... और संबुद्ध से मेरा क्या अभिप्राय है? मेरा अभिप्राय है कि अगर तुमने अपना जीवन बोधपूर्वक जीया है और तुम जागरण के ऐसे बिंदु पर पहुंच गए हो जहां तुम में अचेतन का कोई अंधकार-क्षेत्र नहीं बचा, तो अब तुम्हारे लिए और कोई गर्भ नहीं है। तब तुम परमात्मा के गर्भ में प्रवेश करते हो- स्वयं अस्तित्त्व में। वही मुक्ति है, मोक्ष है, निर्वाण है।

प्रवचन-5
सूफी दरवेश गोल-गोल घूमने की विधि
(ओशो दि ट्रांसमिशन ऑफ दि लैंप से अनुवादित)

प्यारे ओशो,
अपने बचपन के जिन अनुभवों के विषय में हमने आपको बताया, आपने कहा कि वे अनुभव वास्तव में ध्यान की विधियां हैं जो शरीर से बाहर निकलने के लिए सदियों से उपयोग की जाती रही हैं। क्या यह विधियां बचपन में हुए अनुभवों को देखते हुए ही विकसित की गई थीं, या बचपन में ऐसे अनुभव पिछले जन्मों की स्मृतियों के कारण होते हैं?

ये विधियां- और केवल ये ही नहीं, बल्कि अब तक विकसित की गईं सभी विधियां- मनुष्य के अनुभवों पर ही आधारित हैं।
बहुत सी विधियां बच्चों के सरल अनुभवों पर आधारित हैं। तुम्हें उन अनुभवों को संभव बनाने के लिए फिर से उस सरलता को प्राप्त करना होगा। सदियों से मनुष्य के अंतर जगत में उत्सुकता रखने वाले लोग स्वयं को और दूसरों को देखते हुए विधियां विकसित करते रहे हैं। लेकिन सभी की सभी विधियां कुछ ऐसे अनुभवों पर आधारित होती हैं जो स्वभावतः अपने आप घटते हैं।
ऐसे कितने ही अनुभव हमें रोज होते हैं, लेकिन कोई उनकी परवाह नहीं करता। बल्कि समाज उन अनुभवों को दबाने की कोशिश करता है, क्योंकि वे अनुभव व्यक्ति के विद्रोह का कारण भी बन सकते हैं।
उदाहरण के लिए, जलालुद्दीन रूमी को एक बड़ी ही विचित्र विधि से बुद्धत्व प्राप्त हुआ, जो उसने बचपन में सहज ही सीख ली थी- गोल घूमना।
सभी बच्चों को गोल घूमने में मजा आता है, क्योंकि सामान्यतः तुम्हारा शरीर और तुम्हारे प्राण एक जगह केंद्रित हैं। लेकिन जब तुम गोल घूमना शुरू करते हो और तेज से तेज घूमते चले जाते हो, तो शरीर तो घूमता चला जाता है और एक खास गति पर तुम्हारी चेतना उसके साथ कदम से कदम मिलाकर नहीं चल सकती। तो तुम्हारी चेतना उस पूरे चक्रवात का केंद्र बन जाती है; शरीर घूमता चला जाता है और चेतना बिना हिले एक जगह केंद्रित रहती है।
संसार भर में सभी बच्चे ऐसा करते हैं, लेकिन माता-पिता को डर लगता है कि वे गिर जाएंगे, उनकी हड्डी टूट जाएगी, उन्हें फ्रैक्चर हो जाएगा, शायद बीमार पड़ जाएंगे। तो मां-बाप उन्हें घूमने से रोकते हैं, क्योंकि उन्हें पता ही नहीं है कि बच्चे क्या कर रहे हैं, न उन्होंने कभी बच्चों से पूछा है, ‘तुम घूम क्यों रहे हो और तुम्हें घूमने से क्या मिल रहा है?’

जलालुद्दीन ने बचपन से ही इस विधि का प्रयोग किया और उसका आनंद लिया, और क्योंकि लोग उसे रोकते थे, वह रेगिस्तान में चला जाता और अकेला इस विधि को करता। और इस विधि के लिए रेगिस्तान सबसे अच्छी जगह है, क्योंकि तुम यदि गिर भी जाओ, तो तुम्हें चोट नहीं लगेगी; तुम जितनी गति से घूमना चाहो घूम सकते हो।
उसे नहीं पता था कि उसके साथ कुछ आध्यात्मिक घटना घट रही है, लेकिन वह देख रहा था कि उसमें परिवर्तन आ रहे हैं। वह अलग किस्म का व्यक्ति होता जा रहा था। आसानी से उसे परेशान नहीं किया जा सकता था, निंदित नहीं किया जा सकता था, उसका अपमान नहीं किया जा सकता था। उसकी प्रतिभा की धार तेज से तेज होती जा रही थी।
और वह बाकी के बच्चों जैसा भी नहीं रह गया था, वह अलग ही व्यक्तित्व पैदा कर पाने में सक्षम हो रहा था। उसे खेल-कूद में कोई रस न था। जब बाकी बच्चे खेलते, वह दूर कहीं रेगिस्तान में जाकर गोल-गोल घूमता रहता। यह अनुभव उसके लिए इतना आनंददायी था कि उसे किसी और चीज की सुध ही न थी। लेकिन उसे यह नहीं पता था कि यह कोई आध्यात्मिक विधि है या इसका बुद्धत्व से कोई लेना देना है।
जब वह जवान हुआ, तो कई गुरु उसमें उत्सुक हो गए- उसके गुणों को देखते हुए। वह कुछ अनूठा ही व्यक्ति था। वह बुद्धत्व के ठीक कगार पर खड़ा था, और उसे पता भी नहीं था- वह तो सत्य को खोज भी नहीं रहा था। वह तो बस इस विधि को कर रहा था। और इसे उसने जारी रखा।
और एक दिन उसने निर्णय लिया कि वह अपनी पूरी ताकत लगाकर जितनी देर तक घूम सकता है घूम कर देखेगा। जब थोड़ा-थोड़ा घूमने से ही इतने सुंदर अनुभव हो रहे हैं तो उसने सोचा, यदि मैं घूमता ही चला जाऊं, घूमता ही चला जाऊं तो न जाने क्या होगा! वह छत्तीस घंटे तक, दिन-रात, बिना रुके घूमता रहा। और जब छत्तीस घंटे बाद वह जमीन पर गिरा तो वह अलग ही व्यक्ति था, उसमें से एक अलग ही प्रकाश झर रहा था।
उसने एक परंपरा शुरू की, जो पिछले बारह सौ वर्षों से क्रियाशील है। उसकी परंपरा में सूफी दरवेश गोल-गोल घूमकर नृत्य करते हैं। उनके पास केवल एक ही विधि है- और कोई विधि वे नहीं जानते। उनके पास कोई शास्त्र नहीं है, केवल रूमी की कुछ कविताएं हैं- वह बहुत सुंदर कविता करता था। तो इन दरवेशों के पास रूमी की कविताएं और एक विधि है, गोल-गोल घूमने की। और केवल इस एक विधि के द्वारा इन बारह सौ वर्षों में न जाने कितने लोग परम घटना को उपलब्ध हुए हैं। पर यह परंपरा रूमी के द्वारा शुरू की गई थी, जो सत्य को खोज भी नहीं रहा था।
मैंने संसार में आज तक जितनी विधियां संभव हुई हैं उन सभी को गौर से देखा है, यह जानने के लिए कि वे कैसे शुरू हुई होंगी। मैंने पाया कि ये कोई आविष्कार नहीं हैं, वे तो मनुष्य के उन अनुभवों पर आधारित हैं जो अपने आप हो ही रहे हैं। केवल इन अनुभवों को थोड़ा तराशने की जरूरत है, थोड़ा उन्हें विधि के रूप में ढालने की जरूरत है, थोड़ा परिष्कृत करने की जरूरत है, ताकि जिस व्यक्ति को यह अनुभव संभवतः नहीं हो पा रहे हैं वह उनमें सरलता से प्रवेश कर सके।
ये सभी विधियां इसी तरह से खोजी गई हैं।
मुझे आज तक ऐसी एक भी विधि नजर नहीं आई जो मनुष्य के अनुभव पर आधारित न हो। ऐसा लगता है कि प्रकृति तुम्हें खुद ही वह सामर्थ्य देती है जिसके साथ तुम साधारण मन को पार करके समाधि तक पहुंच सको। लेकिन दुर्भाग्य से अपनी इस सामर्थ्य का हम उपयोग ही नहीं करते, हम उसे समझने की कोशिश भी नहीं करते।
लेकिन संसार में ऐसे लोग हुए हैं जिन्होंने इन सब संभावनाओं को इकट्ठा किया है, उन्हें परिष्कृत किया है, उन्हें सहज बनाया है और सरल बनाया है, ताकि हर कोई उनका उपयोग कर सके।
लेकिन एक बात निश्चित है, कि आध्यात्मिक विकास के लिए ऐसी कोई विधि नहीं हो सकती जिसे बनावटी तौर पर मनुष्य के ऊपर थोपा जा सके। प्रकृति ने

पहले सब कुछ दे दिया है- तुम उसे परिष्कृत कर सकते हो, उसे बेहतर बना सकते हो, उसे साफ कर सकते हो। लेकिन कोई बनावटी विधि आविष्कृत नहीं की जा सकती। प्रकृति के साथ किसी तरह की बनावट काम नहीं देगी। और जब प्रकृति खुद ही तुम्हारी मदद करने को तैयार है, तो बनावटी विधियां बनाने का काम बेवकूफी ही होगा।

प्रवचन-6
तंत्र की विधि- दर्पण में देखना
(ओशो दि ट्रांसमिशन ऑफ दि लैंप से अनुवादित)

प्यारे ओशो,
जब मैं ग्यारह या बारह वर्ष की रही होंगी, मेरे साथ एक विचित्र घटना घटी। स्कूल में एक बार खेल-कूद का पीरियड चल रहा था, मैं यह देखने के लिए कि मैं ठीक-ठाक लग रही हूं या नहीं, बाथरूम में गई। शीशे के सामने मैं खुद को देखने लगी तो अचानक, मैंने पाया कि मैं अपने शरीर और शीशे में अपने प्रतिबिंब दोनों से अलग बीच में खड़ी हूं और देख रही हूं कि मेरा शरीर अपने प्रतिबिंब को शीशे में देख रहा है।
अपने को तीन-तीन रूपों में देखकर मैं हैरान रह गई, और मुझे लगा कि शायद यह कोई तरकीब होगी जिसे मैं सीख सकती हूं। तो उस घटना के बाद, मैंने इस तरकीब को अपनी सहेलियों को दिखाना चाहा, और खुद भी करके देखना चाहा, लेकिन मुझे इसमें सफलता नहीं मिली। उस समय मुझे ऐसा तो नहीं लगा कि मैं साक्षित्व का कोई प्रयोग कर रही थी। मुझे ऐसा लगा कि जैसे मेरे प्राण मेरे शरीर से निकलकर बाहर खड़े हो गए हैं। क्या उस समय जो मुझे हुआ, उसे समझने में अब कोई अर्थ है?

ऐसा कई बच्चों के साथ होता है, लेकिन क्योंकि आसपास का वातावरण होश के प्रति, जागरण के प्रति सहयोगपूर्ण नहीं है, इसलिए वे अनुभव माता-पिता के द्वारा, स्कूल के द्वारा, मित्रों के द्वारा, शिक्षकों के द्वारा समर्थन नहीं पाते। और यदि तुम कहो कि तुम्हें ऐसा हुआ है, तो लोग तुम पर हंसते हैं- और तुम्हें फिर खुद भी लगता है कि शायद तुम्हारे साथ कुछ गलत हुआ, शायद यह कुछ ठीक नहीं था।
उदाहरण के लिए, हर सभ्यता में लगभग सभी बच्चे गोल-गोल घूमना पसंद करते हैं। और हर मां-बाप अपने बच्चों को गोल घूमने से मना करते हैं और कहते हैं, मत घूमो, गिर जाओगे। ये सही है, इस बात की संभावना है कि शायद बच्चा गिर जाए। लेकिन नीचे गिरने से भी कोई बहुत ज्यादा नुकसान हो जाने वाला नहीं है।
लेकिन बच्चे गोल घूमना क्यों पसंद करते हैं? जब शरीर घूम रहा होता है, तो छोटे बच्चे उसे घूमता हुआ देख सकते हैं। वे शरीर के साथ तादात्म्य में नहीं रह जाते, क्योंकि ये उनके लिए बिल्कुल ही अलग अनुभव होता है।
हर चीज के साथ उनका तादात्म्य होता है- चलें तो उसके साथ तादात्म्य बन जाता है, खाएं तो उसके साथ तादात्म्य बन जाता है, वे कुछ भी करें, आमतौर से उसके साथ उनका तादात्म्य बन जाता है। यह तेजी से गोल-गोल घूमना इस प्रकार का अनुभव है कि जितनी तेज शरीर घूमेगा उतने ही उसके साथ तादात्म्य में रह जाने की संभावना कम हो जाती है।
घूमते-घूमते अचानक ऐसा बिंदु आता है कि शरीर तो घूमता चला जाता है, लेकिन उनके प्राण उसके साथ नहीं घूम रहे होते। एक बिंदु पर आकर के उनके प्राण रुक जाते हैं और शरीर को घूमता हुआ देखना शुरू कर देते हैं। कई बार तो वे शरीर से बाहर भी निकल सकते हैं। यदि घूमता हुआ बच्चा एक जगह पर न रुके और घूमता ही चला जाए- बस गोल-गोल घूमता ही चला जाए- तब अचानक वह शरीर से बाहर निकल सकता है और शरीर को घूमता हुआ देख सकता है।
इस तरह की चीजें रोकी नहीं जानी चाहिए उनमें बच्चों की मदद की जानी चाहिए, उनको पोषित किया जाना चाहिए, और बच्चे से पूछना चाहिए, तुम्हें

क्या अनुभव हो रहा है? और उसे बताया भी जाना चाहिए, जो अनुभव तुम्हें हो रहा है वह जीवन का बड़ा मूल्यवान अनुभव है, तो इसे भूलना मत। यदि तुम गिर भी जाओ, तो उसमें कोई नुकसान नहीं है; कोई बहुत ज्यादा तुम्हारी हानि होने वाली नहीं है। लेकिन जो तुम्हें मिलेगा वह अमूल्य होगा। लेकिन बच्चों को रोका जाता है कि यह मत करो, वह मत करो।
बचपन में अपने अनुभवों की बात मैं तुमसे कहूं... । मेरे गांव में एक नदी बहती थी- जब उसमें बाढ़ आई रहती, तो उसे तैरकर कोई भी पार नहीं करता था। वह पहाड़ी नदी थी। साधारणतः वह बहुत छोटी होती थी। लेकिन बरसात के समय में जब उसमें बाढ़ आ जाती, तो उसका पाट कम से कम एक मील चौड़ा हो जाता। पानी का बहाव भी बहुत तेज हो जाता था; तुम उसमें खड़े नहीं रह सकते थे। और पानी गहरा भी था, तो उसमें खड़े होने का कोई उपाय भी न था।
मुझे उस नदी से प्रेम था। मैं बरसात के मौसम का इंतजार किया करता। उस समय उस नदी में उतरना एक अलग ही अनुभव था, क्योंकि उसमें तैरते-तैरते एक ऐसा क्षण आता जब मैं अनुभव कर सकता था कि मैं मर रहा हूं, क्योंकि मैं इतना थक जाता और दूसरा किनारा कहीं नजर न आता, और ऊंची उठती लहरों के साथ-साथ बहाव इतना तेज होता... और वापस जाने का भी कोई उपाय न था, क्योंकि दूसरा किनारा भी इतनी ही दूर पीछे छूट गया होता। मैं ठीक मझधार में होता; और दोनों किनारे एक ही जितनी दूरी पर होते।
मैं इतना थक जाता और पानी मुझे इतने तेज प्रवाह के साथ खींचता कि एक समय ऐसा आता जब मैं देख सकता था, अब मेरे और जीने की संभावना नहीं है। और वह क्षण होता जब अचानक मैं अपने आप को पानी से ऊपर देख पाता और मेरा शरीर पानी में ही होता। जब ऐसा पहली बार हुआ, तो मेरे लिए बड़ा भयावह अनुभव था। मुझे लगा कि शायद मैं मर गया हूं। मैंने सुन रखा था कि जब व्यक्ति मरता है, तो उसकी आत्मा शरीर से बाहर निकल जाती हैः तो मैं शरीर से बाहर निकल गया हूं और मैं मर चुका हूं। लेकिन मैं देख सकता था कि शरीर अभी भी दूसरे किनारे की ओर जाने का प्रयास कर रहा है, तो मैं शरीर के पीछे-पीछे चलता।
वह पहला अवसर था जब मुझे अपने प्राणों और शरीर के बीच के संबंध का पता चला। प्राण तुम्हारे शरीर से नाभि से ठीक दो इंच नीचे जुड़े हुए हैं- एक रजत रज्जु के द्वारा। वह डोरी पदार्थ की नहीं है, लेकिन वह चांदी की तरह चमकती है। और जब भी मैं दूसरे किनारे पर पहुंच जाता, जिस क्षण मैं दूसरे किनारे पर पहुंचता, मेरे प्राण मेरे शरीर में वापस प्रवेश कर जाते। पहली बार तो यह अनुभव भयावह था; लेकिन बाद में तो बड़े आनंद का कारण बन गया।
जब मैंने अपने माता-पिता को कहा, तो वे बोले, ‘किसी दिन तुम उस नदी में डूबकर मर जाओगे। ये इसी बात की ओर संकेत लगता है। उस नदी में जब बाढ़ आई हो, तो वहां कभी मत जाना।’
लेकिन मैंने कहा, ‘मुझे इतना मजा आ रहा है- इतनी स्वतंत्रता वहां है, गुरुत्वाकर्षण वहां नहीं बचता, और अपने ही शरीर को अपने से अलग देखना कितना सुखदायी अनुभव है।’
फिर मैं युनिवर्सिटी चला गया और वहां भी इसी तरह का अनुभव एक बार हुआ। उसके विषय में मैंने बात भी की है। युनिवर्सिटी के केम्पस के ठीक पीछे एक पहाड़ी थी, जहां तीन पेड़ थे। मुझे उन पेड़ों से प्रेम था, क्योंकि होस्टल में तो शांत बैठ पाना लगभग असंभव ही था। तो मैं उस पहाड़ी पर जाकर उन तीनों पेड़ों में से एक पेड़ पर बैठ जाता था। बीच का पेड़ बैठने के लिए बहुत आरामदेह था- उसकी शाखाएं इस तरह फैली हुई थीं कि उन पर आराम से बैठा जा सकता था। और मैं उस पेड़ पर चढ़कर घंटों मौन बैठा रहता।
एक दिन, मुझे पता नहीं कि क्या हुआ- जब मैंने अपनी आंखें खोलीं तो मैंने पाया कि मेरा शरीर जमीन पर पड़ा हुआ है। ये वही अनुभव था जो पहले नदी में कई बार हो चुका था, इसलिए मुझे कोई भय नहीं लगा। लेकिन नदी में ऐसा होता था कि जब मैं दूसरे किनारे पहुंचता तो प्राण अपने आप शरीर में वापस प्रवेश कर जाते थे। मुझे पता नहीं था कि शरीर में वापस कैसे प्रवेश करना है; ये घटना स्वयं अपने आप ही घटी थी, तो यहां मुझे पता ही नहीं लगा कि मैं शरीर में वापस कैसे प्रवेश करूं। मुझे इस बारे में कोई ख्याल ही नहीं था। मैं देख पा रहा था उस डोरी को, जिसने मुझे शरीर से जोड़ रखा था, लेकिन शरीर में कैसे

प्रवेश करना है? कहां से प्रवेश करना? इसकी कोई तरकीब तो मैंने किसी से सीखी नहीं थी। मैं चुपचाप इंतजार करता रहा, और कुछ मैं कर भी नहीं सकता था। एक स्त्री जो होटल में दूध बेचने आया करती थी वह वहां से गुजरी, और उसने देखा कि मेरा शरीर जमीन पर पड़ा हुआ है। वह हैरान हुई। यह देखने के लिए कि मैं जिंदा हूं या मरा चुका हूं, उसने मेरे सिर पर हाथ लगाया। और जिस क्षण उसने मेरे सिर पर हाथ लगाया, मैं अपने शरीर में एक प्रबल शक्ति के साथ प्रवेश कर गया।
मुझे पता नहीं लगा कि उस समय शरीर कैसे प्रवेश कर गया। लेकिन एक बात निश्चित हो गई; यदि कोई पुरुष अपने शरीर से बाहर निकला हो, तो किसी स्त्री का स्पर्श उसे शरीर में वापस लाने के लिए पर्याप्त होता है। और ठीक इससे उलटा भी सत्य है; यदि किसी स्त्री के प्राण उसके शरीर से बाहर निकले हों, तो किसी पुरुष के स्पर्श द्वारा वह अपने शरीर में वापस लौट आएगी। और यह स्पर्श माथे पर तीसरे नेत्र के ऊपर होना चाहिए।
उस स्त्री ने संयोग से ही मेरे सिर को छूकर देखा कि मैं जिंदा हूं या मर चुका हूं। उसे तो कोई ख्याल ही नहीं था कि मैं स्वयं पेड़ पर बैठा देख रहा हूं कि वह क्या कर रही है। जब मैंने अपनी आंखें खोलीं तो वह चौंक गई।
वह बोली, ‘तुम यहां क्या कर रहे हो?’
मैंने कहा, ‘मैं भी तुमसे यही पूछने वाला था कि तुम यहां मेरे माथे पर हाथ क्यों लगा रही हो?’
वह बोली, ‘मैं सोच रही थी शायद कि तुम्हारे साथ कोई दुर्घटना हो गई है। तुम बिल्कुल मरे हुए ही दिख रहे थे।’
मैंने कहा, ‘मैं करीब-करीब मर ही चुका था, और मैं तुम्हारा अनुगृहीत हूं कि तुमने मेरी मदद की। तुम्हारे स्पर्श के कारण ही मैं शरीर में वापस आ पाया हूं।’
वह बोली, ‘तुम्हारा मतलब तुम पेड़ पर बैठे हुए थे?’
वह मुझसे बुरी तरह डर गई। वह मेरे लिए भी दूध लाया करती थी। उसने मेरे रुम में आना ही छोड़ दिया। वह कहने लगी, ‘मुझे उस व्यक्ति के सामने ही नहीं पड़ना। वह तो खतरनाक है। वह क्या कर रहा था? मुझे नहीं पता, लेकिन वह कुछ खतरनाक कर रहा था।’
मुझे किसी तरह उसे खोजकर उसे बताना पड़ा, तुम्हें घबराने की जरूरत नहीं है। मैं कुछ भी नहीं कर रहा था। मैं तो बस ध्यान कर रहा था कि मेरा शरीर नीचे गिर पड़ा। तुमने मेरी मदद की, और मैं अनुगृहीत हूं। और फिर तुम्हारे जैसा अच्छा दूध भी यहां लाने वाला कोई नहीं, तो तुम दूध लाना बंद मत करना। और यदि तुमने दूध लाना बंद कर दिया, तो जब भी तुम उस पेड़ के पास से गुजरोगी मैं वहां बैठना शुरू कर दूंगा- याद रखना! और जब भी तुम गुजरोगी मेरा शरीर जमीन पर पड़ा होगा, और मैं पेड़ पर बैठकर नजारा देखूंगा।
वह बोली, ‘दुबारा ऐसा मत करना। मैं तुम्हें दूध दूंगी- बिल्कुल शुद्ध दूध, बिना पानी मिलाए- लेकिन तुम ऐसा दुबारा मत करना, कम से कम जब मैं वहां से गुजर रही हूं, तब तो बिल्कुल ही ऐसा मत करना।’
तो मैंने कहा, ‘याद रख, यदि तुमने दूध देना बंद कर दिया, तो जब भी तुम वहां से गुजरोगी मैं वहीं बैठा तुम्हें मिलूंगा। मैं तुम्हारे गांव में भी आ सकता हूं; तुम्हारे घर के सामने ही बैठकर भी मैं ऐसा कर सकता हूं।’
वह बोली, ‘मैं गरीब स्त्री हूं। मेरे लिए कोई तकलीफ पैदा मत करो।’ तुम्हारे साथ स्कूल में जो हुआ वह संयोग मात्र था। यदि तुम उस अनुभव को पकड़ने के लिए उसके पीछे लगी होती, तुमने कुछ किया होता तो वह अनुभव दोबारा भी आ सकता था।
वास्तव में, दर्पण में देखना तो तंत्र द्वारा सुझाया गया एक उपाय है- लेकिन उस विधि में बहुत देर तक दर्पण में देखना होता है, ताकि तुम अपने प्रतिबिंब के साथ एक तादात्म्य बना लो, तुम उसके साथ इतने तादात्म्य हो जाओ कि जैसे ही तुम एक कदम पीछे हटो, तो तुम्हारा शरीर उस पुरानी अवस्था में ही खड़ा रह जाए। और स्त्रियों के लिए यह विधि और भी सरल है, क्योंकि उनसे अधिक और कोई भी दर्पण के सामने इतना समय नहीं बिताता।

तंत्र के पुराने शास्त्रों में इस विधि का सुझाव दिया गया है। तुम दर्पण के सामने बैठकर या खड़े होकर लगातार उसमें देखते रहो, देखते रहो।
इतनी देर तक उसमें देखो कि तुम अपने प्रतिबिंब के साथ पूरी तरह एक हो जाओ। फिर तुम एक कदम पीछे हटाओ। तुम्हारा शरीर नहीं हटेगा, लेकिन तुम्हारे प्राण पीछे हट जाएंगे। फिर तुम तीन शरीरों को देख पाओगे।
वैसे अगर, तुम हर रोज एक घंटा दर्पण के सामने बैठ जाओ और अपनी आंखों में झांकते रहो, तो कुछ दिनों में, कुछ हफ्तों में- यह व्यक्ति-व्यक्ति पर निर्भर करता है- एक दिन अचानक तुम देखोगे कि दर्पण खाली हो गया; तुम उसके सामने खड़े होओगे, लेकिन दर्पण खाली हो गया। वह भी एक बड़ा अनुभव है। जब यह अनुभव तुम्हें होगा, तुम पाओगे कि एक अपार मौन और एक शांति जो तुमने पहले कभी नहीं जानी वह अचानक तुम पर उतर आई। तुम्हें लगेगा कि जैसे तुम हर प्रतिबिंब के पार चले गए। और प्रतिबिंबों के पार जाकर वास्तविकता पर लौट आए।
तुम्हारे साथ जो हुआ, अच्छा ही हुआ। ऐसे अनुभव कई बच्चों को होते हैं। मुझे कई लोगों ने बताया है कि उन्हें इस प्रकार के अनुभव हुए, लेकिन कोई इन अनुभवों के पीछे जाने की कोशिश नहीं करता। तो कभी कभार ऐसे अनुभव होते हैं, और फिर व्यक्ति उनके बारे में भूल जाता है, या वह सोचने लगता है कि उसने केवल उनकी कल्पना ही की थी, शायद यह कोई सपना था या कोई कल्पना थी। लेकिन वास्तव में यह अनुभव यथार्थ होते हैं। तुम सच में ही अपने शरीर से बाहर चली गई थीं, और जो तुमने देखा वह शरीर के बाहर आकर जागरण का एक अनुभव था।
उसी प्रकार का जागरण तुम्हें अपने शरीर के भीतर भी साधना होगा। इन दोनों में गुण का कोई भेद नहीं है। और शरीर के बाहर जाने के इस अनुभव को समझ पाने का सरलतम उपाय है कि तुम बिस्तर पर पीठ के बल लेट जाओ। शरीर को बिल्कुल शिथिल छोड़ दो, और जब तुम्हें लगे कि तुम पूरी तरह से विश्राम में आ गए, तो अनुभव करना शुरू करो कि तुम्हारे शरीर से तुम बाहर निकल गए हो, छत की ओर तैरते हुए बढ़ रहे हो। कुछ दिनों में तुम अपने शरीर के ऊपर उठ आने में सक्षम हो जाओगे। लेकिन यह बात पूरी तरह से निश्चित कर लो कि इस अवस्था में कोई तुम्हें परेशान न करे। क्योंकि यदि बीच में आकर कोई तुम्हें हिलाए-डुलाए, या तुमसे बात करने लगे, तो हो सकता है कि वह जो महीन धागा तुम्हें तुम्हारे शरीर से जोड़े हुए है वह टूट जाए, और तुम्हारी मृत्यु हो जाए।
इस प्रयोग को करते समय मोमबत्ती की हलकी-हलकी रोशनी हो, और किसी अगरबत्ती का प्रयोग भी करो। लेकिन जो भी कुछ तुम करते हो- जो अगरबत्ती जलाते हो, जिस तरह की मोमबत्ती जलाते हो- फिर हमेशा उसी तरह की चीजों का उपयोग किया जाना चाहिए, ताकि वे तुम्हारे प्रयोग के साथ जुड़ जाएं।
दो या तीन अनुभवों के बाद तुम जैसे ही वह अगरबत्ती जलाओगे और उस तरह की मोमबत्तियां जलाकर शांत लेटोगे, एकदम से तुम शरीर से बाहर निकल पाओगे। लेकिन इस बात का पूरी तरह से ख्याल रखना पड़ेगा कि इस बीच तुम्हें कोई भी किसी भी तरह की बाधा न दे, कोई भी उस समय उस कमरे में अचानक प्रवेश न कर सके, कोई भी उस कमरे के दरवाजे को खटखटाए नहीं। वह घातक हो सकता है। यदि वह धागा टूट जाए तो उसे वापस जोड़ने का कोई उपाय नहीं है।
जब तुम अपने को यह सुझाव दो कि अब मैं अपने शरीर से बाहर निकलूंगा, अब मैं अपने शरीर से बाहर निकलूंगा, तो उस समय तुम यह सुझाव भी अपने आप को दो कि ठीक तीस मिनट बाद खुद ही मैं अपने शरीर में वापस लौट आऊंगा।
इस बात को कभी भी मत भूलना- क्योंकि शरीर में वापस प्रवेश करना कठिन है। और यदि कभी ऐसा होता है... तो यदि पुरुष ऐसा ध्यान कर रहा है, तो स्त्री को उसके आज्ञा चक्र पर हलके से छूना चाहिए और यदि कोई स्त्री ध्यान कर रही है तो किसी पुरुष को उसके आज्ञा चक्र को हलके से छूना चाहिए। इसलिए यह भी अच्छा होगा कि तुम पहले से अपने दरवाजे पर किसी को बिठा दो, एक तो वह किसी को भीतर आने नहीं देगा, और यदि आधे घंटे के बाद तुम कमरे से बाहर नहीं निकले हो, तो वह आकर तुम्हारे आज्ञा चक्र को छू भी सकेगा। और इस प्रकार आज्ञा चक्र पर छूने भर से ही एकदम तुम अपने शरीर में वापस लौट आते हो।

प्रवचन-7
तंत्र की कल्पना की विधि
(ओशो दि ट्रांसमिशन ऑफ दि लैंप से अनुवादित)

प्यारे ओशो,
बारह से पंद्रह वर्ष की उम्र के बीच, रात के समय बिस्तर पर लेटे हुए मुझे कुछ विचित्र अनुभव हुआ करते थे, जो मुझे बहुत अच्छे लगते थे। मैं बिस्तर पर लेटकर ऐसी कल्पना किया करता था कि जैसे मेरा बिस्तर गायब हो गया, फिर मेरा कमरा, फिर घर, फिर शहर, सभी लोग, पूरा देश, पूरा संसार... जगत में जो कुछ है सब गायब हो गया। बिल्कुल अंधेरा और सन्नाटा बचता; मैं अपने को आकाश में तैरता हुआ पाता।
जब अंतिम चीज तक मिट गई होती तो मेरे चारों और जैसे एक चक्रवात सा बन जाता। मैं उसके अंदर प्रवेश कर जाता; यह अनुभव ऐसा था जैसे काम का अनुभव हो। इससे मेरे पेट में एक मीठी गुदगुदी सी होती, जो कुछ सेकेंड या कभी-कभी एक या दो मिनट के लिए भी चलती।
इस बारे में मैंने अपने माता-पिता से या कभी किसी और से बात नहीं की, क्योंकि मुझे डर था कि वे मुझे कहीं पागल न समझें।
ओशो, यह अनुभव क्या था?

तंत्र में ऐसी एक विधि है जिसमें व्यक्ति को ठीक वही करना होता है जैसा तुमने अभी अपने बचपन के अनुभव के बारे में बताया। बच्चों के लिए आसान है, लेकिन प्रौढ़ लोगों के लिए भी यह असंभव नहीं है। यह कल्पना के अभ्यास पर आधारित एक विधि है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि उससे जो अनुभव तुम्हें होगा वह वास्तविक नहीं होगा।
पहले, मैं तुम्हें तंत्र की विधि के बारे में बताऊं। यह हर उम्र के लोगों के लिए है। इसे अंधेरे में करना होता है, क्योंकि अंधेरे में तुम चीजों को देख नहीं सकते, तो यह कल्पना करना कि चीजें गायब हो रही हैं। आसान हो जाता है।
लेटना सबसे अच्छा और आसन है इस विधि के लिए। क्योंकि मनुष्य मनुष्य बन पाया, थोड़ी बहुत चेतना को उपलब्ध कर सका- अपने दो पैरों पर खड़ा होकर। अब रक्त का प्रवाह उसके सिर में कम से कम होता है। लेटे समय, रक्त बहुत अधिक मात्रा में और बहुत अधिक गति के साथ सिर की ओर प्रवाहित होता है। ऐसा गुरुत्वाकर्षण के कारण होता है। जब तुम खड़े होते हो तो रक्त को गुरुत्वाकर्षण के विपरीत जाना पड़ता है; उसका प्रवाह धीमा पड़ जाता है, मात्रा कम हो जाती है।
यही कारण है कि किसी और पशु के पास चेतन मन नहीं है। चलते समय, गाय या घोड़ा या भैंस वे सब सीधे खड़े नहीं होते। उनके सिर को रक्त की उतनी ही मात्रा मिलती है जितनी शरीर के किसी और अंग को। तो उनके मस्तिष्क में वे सूक्ष्म और छोटे-छोटे कोष नहीं बन पाते जिनके कारण मनुष्य सोच पाने में समर्थ होता है।
लेकिन यह संभावना है- और जहां तक मेरा संबंध है मैं इसे एक निश्चित तथ्य मानता हूं- कि पशु कल्पना करते हैं। उनके पास चेतन मन नहीं है, लेकिन उनके पास अचेतन मन तो है।
किसी कुत्ते की ओर देखो तो तुम समझ सकते हो। एक कुत्ता पास ही बैठा सो रहा है; तुम गौर से उसकी ओर देखोः कभी-कभी बीच में वह काल्पनिक मक्खी पर झपट्टा मारेगा, मक्खी जो वहां है ही नहीं। वह क्या कर रहा है? उसने मक्खी की कल्पना की। मक्खी वहां नहीं थी, लेकिन उसने मक्खी की कल्पना की। और स्वभावतः जैसे पुरुष स्त्रियों के बारे में सोचते रहते हैं, ऐसे कुत्ते मक्खियों के बारे में सोचते रहते हैं।
किसी ने कभी पशुओं के अचेतन में खोजबीन करने की कोशिश नहीं की। अभी तो हम मनुष्य को भी पूरा समझ नहीं सके हैं, तो पशुओं के अचेतन में उतरने का सवाल ही पैदा नहीं होता। अभी तो पंक्ति में उनका नंबर बहुत पीछे है, वे खड़े प्रतीक्षा कर रहे हैं।

लेकिन मेरा मानना है कि पशु भले ही सोच न सकते हों, लेकिन वे सपने लेते हैं- क्योंकि सपने लेने के लिए किसी को सीधे खड़े होने की जरूरत नहीं होती। सपना लेने के लिए तुम्हें लेटना पड़ता है, ताकि तुम्हारा चेतन मन क्रियाशील न रह सके। उसके लिए तो बहुत थोड़े से रक्त प्रवाह की जरूरत होती है; जब रक्त का प्रवाह बढ़ जाता है तो चेतन मन सो जाता है। और यदि बहुत ही अधिक मात्रा में रक्त का प्रवाह होने लगे तो उसकी मृत्यु हो जाती है। लेकिन अचेतन मन काम किए चला जाता है। और उसकी भाषा शाब्दिक नहीं है; उसकी भाषा चित्रमयी है।
तो एक छोटा बच्चा अपने बिस्तर पर लेटकर बहुत आसानी से यह कल्पना कर सकता है कि दीवारें मिट रही हैं, कमरा गायब हो रहा है, बिस्तर गायब हो रहा है, बाहर के सब पेड़ गायब हो रहे हैं। सब कुछ गायब हो रहा है, और पूरा संसार मिट रहा है... केवल वह अकेला रह गया है और उसके चारों ओर सुंदर सन्नाटा और घना अंधेरा है।
लेकिन यह विधि तंत्र के शास्त्रों में सुझाई गई है। और कोई भी इसे कर सकता है- और यह तुम्हारे ध्यान में सहयोगी भी होगा।
यह बड़ी दुर्भाग्य की बात है कि माता-पिता को मनुष्य की पूरी संपदा का पता ही नहीं। अलग-अलग दिशाओं से मनुष्य चेतना को विकसित करने के लिए कार्य करता रहा है। यदि वह सब माता-पिता को उपलब्ध हो जाए, तो शायद वह इस तरह के अनुभवों के होने पर ऐसा नहीं समझेंगे कि बच्चा पागल हो गया है; वे आनंदित होंगे, वे तुम्हारी मदद करेंगे, वे तुम्हें पुरस्कृत करेंगे। वे तुम्हारी मदद करेंगे कि तुम ऐसे अनुभवों में और गहरे जा सको।
संयोग से तुम्हारे हाथ एक सही द्वार लग गया है। और बच्चा तो बड़ी सुगमता से शुरू से ही ध्यान का स्वाद ले सकता है, और वह रोज-रोज उसे विकसित किए चला जा सकता है। जब तक वह युवा होगा तब तक उसका ध्यान में प्रौढ़ हो चुका होगा। फिर बिस्तर पर लेटने की जरूरत नहीं है। फिर वह चाहे बैठे या खड़ा हो, और वह उसी शांति में प्रवेश कर सकता है- खुली आंखों से भी। सवाल बस इतना है कि तुम इस अनुभव में इतने गहरे उतरते चले जाओ, इतने गहरे उतरते चले जाओ कि वह तुम्हारे लिए सहज हो जाए।
लेकिन सभी समाज उन सभी अनुभवों को निंदित करते रहे हैं जो कि तुम्हारे प्राणों को विकसित होने में सहयोगी हो सकें। वे चाहते ही नहीं कि तुम्हारे प्राण विकसित हों। यदि तुमने किसी को बताया होता, तो वह कहते कि तुम पागल हो गए होः बंद करो यह सब; नहीं तो तुम पागल हो जाओगे। और वास्तव में तो उस अनुभव को रोकना तुम्हें पागल बनाने का उपाय है।
इसीलिए मैं कहता हूं कि हर पिता को, हर मां को एक खास प्रशिक्षण से गुजरना चाहिए जिसमें उसे सिखाया जाए कि पिता कैसे होना है? मां कैसे होना है? जहां उन्हें यह सिखाया जाए कि बच्चे में बड़ी संभावनाएं छिपी हैं, और वह ऐसी कई चीजें कर सकता है जो तुम भी नहीं कर सकते, और यही समय है। यदि तुम बच्चे को रोकोगे तो बाद में ये सब चीजें उसके लिए भी उतनी ही मुश्किल हो जाने वाली हैं।
तुम्हारा अनुभव अच्छा था, बहुत अच्छा था। और यदि अब तुम उसे फिर से करने कोशिश करते हो तो शायद तुम बिना किसी कठिनाई के दोबारा से उस अवस्था में प्रवेश कर सको। मेरे पास जो लोग इकट्ठे हुए हैं वे इसी तरह के अनुभवों में उतरने के लिए इकट्ठे हुए हैं; ये सब अनुभव, ये सब विधियां तुम्हारे प्राणों को स्पर्श कर लेने के अलग-अलग उपाय हैं।
यह विधि कल्पना की विधि है। दीवारें गायब नहीं होतीं, और न ही पेड़ या कुछ और गायब होते हैं। यह केवल एक विधि है। लेकिन यदि तुम उनके गायब होने की कल्पना कर सको, तो स्वभावतः तुम ही बच रहते हो, जो कुछ भी करने पर नहीं मिट सकता। तुम्हारे मिटने की कल्पना की कोई विधि संभव नहीं है; साक्षी हर कल्पना के पार है, मन के पार है। जो बच रहता है, वह केवल एक साक्षी है, एक देखने वाला- और वह तुम्हारी शुद्ध चेतना है।
तो इसकी परवाह मत करना कि जो विधि तुमने अपनाई वह मात्र कल्पना भर थी। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि तुम इसमें उत्सुक ही नहीं थे कि दीवारें मिट जाएं; वह एक उपाय था कि किसी तरह ऐसी परिस्थिति पैदा हो जिसमें तुम हर

चीज से मुक्त हो जाओ- चाहे वह चीज वहां है या नहीं- और तुम अपने प्राणों की सुंदर नीरवता को प्राप्त कर लो। ऐसा एक क्षण भी शाश्वत के समान है।
और यह विधि तंत्र की विधि है, जो सदियों से प्रयोग की जाती रही है। निश्चिंत रहो, इससे तुम पागल नहीं हो सकते। वास्तव में इस विधि के द्वारा तुम पागल होने के सब उपाय ही समाप्त कर देते हो; अब केवल शुद्ध चेतना ही बची है। और शुद्ध चेतना कभी पागल नहीं होती।
तो तुम्हारे बचपन में जो हुआ वह बहुत शुभ था। यह अच्छा होता कि यदि तुमने सतत इस विधि को जारी रखा होता, लेकिन इसे तुम फिर से शुरू कर सकते हो- क्योंकि कुछ भी जो एक बार हुआ हो, तुममें एक निशान तो छोड़ ही जाता है; वहां से तुम फिर शुरू कर सकते हो। थोड़ी तकलीफ हो सकती है, शायद उतना सरल अब न हो, लेकिन वह अनुभव लौट आएगा- एक दिन में, दो दिन में, वह अनुभव लौट आएगा।

प्रवचन-8
झेन शुद्ध धर्म है।
(ओशो झेनः दि पाथ ऑफ पैराडॉक्स अंग्रेजी से अनुवादित)

झेन कोई दर्शनशास्त्र नहीं है, बल्कि एक धर्म है। और धर्म जब बिना दर्शनशास्त्र के होता है, बिना किसी शाब्दिक जाल के तो वह घटना बहुत अनोखी हो जाती है। बाकी के सभी धर्म परमात्मा की धारणा के आसपास घूमते हैं। उनके अपने दर्शन हैं। वे धर्म परमात्मा की ओर केंद्रित हैं, मनुष्य केंद्रित नहीं हैं; उनके लिए मनुष्य लक्ष्य नहीं है, परमात्मा उनका लक्ष्य है। लेकिन झेन के लिए ऐसा नहीं है। झेन के लिए, मनुष्य ही अंतिम लक्ष्य है, मनुष्य स्वयं अपने आप में लक्ष्य है। झेन के लिए परमात्मा मनुष्य से ऊपर नहीं है, परमात्मा मनुष्य में छिपी हुई सत्ता का ही नाम है। झेन कहता है कि मनुष्य अपने स्वयं के भीतर परमात्मा को एक संभावना की तरह लिए हुए है।
तो झेन में परमात्मा भी कोई धारणा नहीं है। यदि तुम चाहो तो तुम ऐसा भी कह सकते हो कि झेन कोई धर्म ही नहीं है- क्योंकि परमात्मा की धारणा के बिना कोई धर्म हो कैसे सकता है? निश्चित ही जो लोग एक ईसाई की तरह, एक मुसलमान की तरह, एक हिंदू की तरह, एक यहूदी की तरह बड़े किए गए हैं, जिनका पालन-पोषण इन धर्मों में हुआ है, वे तो विश्वास भी नहीं कर सकते कि किस प्रकार का धर्म है झेन। यदि परमात्मा न हो तो पूरी बात नास्तिकता वाली हो जाती है। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। झेन शुद्धतम धर्म है- बस परमात्मा भर की जगह उसमें नहीं है।
यह बात सबसे पहले समझ लेने की है। इसे अपने भीतर गहरे उतर जाने दो, तभी तुम्हें झेन का अर्थ स्पष्ट हो सकेगा। झेन के लिए प्रार्थना भी व्यर्थ है- प्रार्थना करोगे तो किसकी करोगे? कहीं किसी स्वर्ग में परमात्मा नहीं बैठा है जो कि जीवन को नियंत्रित कर रहा है। इस समूचे अस्तित्त्व का नियंत्रण करने वाला कोई भी नहीं है। पूरा जीवन अपने आप लयबद्धता में, स्वरबद्धता में चल रहा है।
इस जीवन से बाहर बैठा न तो कोई आदेश दे रहा है, न कोई आज्ञा दे रहा है। जब कोई अथारिटी बाहर से बैठकर आज्ञा दे या तुम्हें नियंत्रित करे तो उसके साथ जो संबंध है वह अधिक से अधिक गुलामी भर का हो सकता है... जैसे एक ईसाई गुलाम बन जाता है परमात्मा का, ऐसा ही मुसलमान के साथ होता है, ऐसा ही हिंदू के साथ होता है। जब परमात्मा आदेश देने वाला, नियंत्रण करने वाला हो, तो तुम अधिक से अधिक उसके नौकर हो सकते हो या गुलाम हो सकते हो। तब तुम सारी गरिमा खो देते हो।
लेकिन झेन के साथ ऐसा नहीं है। झेन तुम्हें अथाह गरिमा देता है। तुम्हारे अतिरिक्त कहीं कोई और नियंता नहीं है। तुम्हारी स्वतंत्रता परम है, अंतिम है।
परमात्मा के बिना भी धार्मिक हुआ जा सकता है। वास्तव में, परमात्मा के होते तो तुम धार्मिक हो भी कैसे सकते हो? यही प्रश्न है जो झेन पूछता है।
परमात्मा के होते व्यक्ति कैसे धार्मिक हो सकता है?- क्योंकि परमात्मा तो

तुम्हारी स्वतंत्रता को नष्ट कर देगा, परमात्मा तुम्हारे ऊपर आधिपत्य जमा लेगा।
तुम ओल्ड टेस्टामेंट देखो। परमात्मा कहता है, ‘मैं बहुत ईर्ष्यालु हूं और किसी दूसरे परमात्मा को सहन नहीं कर सकता। जो लोग मेरे साथ नहीं हैं, उन्हें मेरे विरुद्ध ही समझो। मैं बहुत ही क्रोधी किस्म का हूं। यदि तुम मेरी आज्ञा का पालन नहीं करते तो मैं तुम्हें नर्क में डाल दूंगा, तुम्हें सजा दूंगा।’
अब ऐसे परमात्मा के साथ तुम किस तरह धार्मिक हो सकते हो? कैसे तुम स्वतंत्र हो सकते हो और कैसे तुम खिल सकते हो? स्वतंत्रता के बिना तो कोई खिलावट हो ही नहीं सकती। तुम अपनी चरम संभावना को कैसे उपलब्ध हो सकते हो, जब सदा ही तुम्हारे सामने कोई परमात्मा खड़ा है, और तुम्हें आदेश दे रहा है, तुम्हें कह रहा है तुम यह करो, तुम वह करो- तुम्हारा नियंत्रण कर रहा है? झेन कहता है कि परमात्मा के रहते तो मनुष्य गुलाम ही रहेगा; परमात्मा के रहते, मनुष्य पूजा-पाठ से ऊपर नहीं उठ सकता; परमात्मा के रहते मनुष्य भय में ही रहेगा। भय में तुम भला कैसे खिल सकोगे? तुम सिकुड़ जाओगे, सूख जाओगे, धीरे-धीरे मरते रहोगे। झेन कहता है कि यदि परमात्मा न हो तो अथाह स्वतंत्रता मनुष्य को उपलब्ध हो जाती है, कहीं कोई नियंत्रण नहीं बचता। और इसके साथ ही एक बड़ा उत्तरदायित्व मनुष्य के ऊपर आ जाता है।
इसे ऐसा समझो जब तक कोई तुम्हारे बारे में निर्णय ले रहा है, तुम्हारा नियंत्रण कर रहा है तब तक तुम्हें महसूस ही नहीं होता कि तुम्हें भी कुछ अपने लिए करना है। यदि तुम्हारे ऊपर कोई हो तो तुम उत्तरदायित्व भी भूल जाते हो; जब तुम्हारे ऊपर कोई होता है, तो अधिक से अधिक तुम्हारे भीतर उसके खिलाफ प्रतिक्रिया हो सकती है, या विद्रोह हो सकता है। लेकिन उत्तरदायित्व का कोई सवाल पैदा नहीं होता।
परमात्मा को तो समाप्त करना होगा। उसके बिना स्वतंत्रता की कोई संभावना नहीं है, उसके विदा होने पर ही तुम स्वतंत्र हो सकते हो। लेकिन फिर एक बात और- परमात्मा के बिना जीने के लिए बड़ा साहस चाहिए, परमात्मा के बिना जीने के लिए गहरे ध्यान की आवश्यकता है, परमात्मा के बिना जीने के लिए एक सजगता, एक जागरूकता चाहिए।
झेन के लिए यह एक सत्य है कि परमात्मा नहीं है। मनुष्य अपने लिए जिम्मेदार है और उस सारे जगत के लिए भी जिसमें वह जी रहा है। यदि दुख है तो मनुष्य स्वयं उत्तरदायी है; किसी और की ओर तुम नहीं देख सकते। तुम अपना उत्तरदायित्व किसी और के कंधों पर नहीं डाल सकते। यदि यह संसार कुरूप है और पीड़ा में है, तो हम खुद उत्तरदायी हैं- कोई और नहीं है जो इस उत्तरदायित्व को सम्हाल सके। यदि हम विकसित नहीं हो पा रहे हैं तो यह भी हमारा ही उत्तरदायित्व है, इसे किसी और के कंधों पर नहीं डाला जा सकता। हमें अपना उत्तरदायित्व स्वयं लेना होगा।
जब परमात्मा नहीं बचता तो तुम स्वयं पर फेंक दिए जाते हो। और तब विकास होता है। तुम्हें विकसित होना ही पड़ेगा। तुम्हें अपना जीवन अपने हाथों में लेना पड़ेगा; तुम्हें अपनी लगाम अपने हाथों में लेनी पड़ेगी। अब तुम अपने स्वयं के मालिक हो। अब तुम्हें अधिक जागरूक होना पड़ेगा और सजग होना पड़ेगा, क्योंकि जो कुछ भी होने वाला है उसके लिए तुम स्वयं उत्तरदायी होगे। इससे बड़ी जिम्मेदारी तुम्हारे ऊपर आ जाती है। तुम एक-एक कदम फिर फूंककर रखते हो। बिल्कुल अलग ही ढंग से तुम जीने लगते हो। तुम जागने लगते हो। तुम हर चीज के साक्षी हो जाते हो।
और जब परमात्मा नहीं रहा, तो कहीं पार भी नहीं जाना है। पार तुम्हारे भीतर ही है। तुम्हारे पार कोई और पार का जगत नहीं है। क्रिश्चियनिटी में पार का जगत तुम्हारे पार है; झेन में वह जगत तुम्हारे भीतर ही है। तो किसी आकाश की ओर आंखें उठाकर प्रार्थना करने का सवाल नहीं है- वे प्रार्थना व्यर्थ है, तुम खाली आकाश से प्रार्थना कर रहे हो। आकाश तो तुम्हारी चेतना से कहीं नीचे है।
अब कोई बैठा किसी पेड़ की ही पूजा कर रहा है... । कई हिंदू पेड़ों की पूजा करते हैं, तो कई हिंदू जाकर गंगा की या दूसरी नदियों की पूजा करते हैं, कोई

किसी पत्थर की मूर्ति की पूजा कर रहा है, कोई आकाश की ओर हाथ उठाकर प्रार्थना कर रहा है। ऊंची चेतना निम्न चेतना की पूजा कर रही है। प्रार्थना बिल्कुल व्यर्थ है।
झेन कहता हैः ‘केवल ध्यान।’ ऐसा नहीं कि तुम्हें किसी और के सामने घुटने टेकने हैं। गुलामी की यह पुरानी आदत छोड़ दो। बस इतना भर चाहिए कि तुम घड़ी-दो घड़ी के लिए शांत हो जाओ और बैठ जाओ और भीतर की ओर आंखें कर लो और अपने केंद्र पर पहुंच जाओ। वही केंद्र अस्तित्त्व का केंद्र भी है। जब तुम अपने अंतर्तम केंद्र पर पहुंच जाते हो तो तुम अस्तित्त्व के अंतर्तम केंद्र पर भी पहुंच जाते हो। झेन में परमात्मा यह केंद्र ही है। लेकिन वे इसे परमात्मा कहते नहीं। और अच्छा ही है कि वे इसे परमात्मा नहीं कहते। तो पहली बात जो स्मरण रखने जैसी है कि झेन कोई थियोलॉजी, कोई दर्शनशास्त्र नहीं है। झेन एक धर्म है और वह भी बहुत अलग किस्म का। झेन ऐसा धर्म नहीं है जैसे इस्लाम। इस्लाम में तीन बुनियादी बातें हैंः एक परमात्मा, एक किताब, और एक पैगंबर। झेन में कोई परमात्मा नहीं है, कोई किताब नहीं है, कोई पैगंबर नहीं है। पूरा का पूरा अस्तित्त्व स्वयं अपने आप में एक संदेश है; पूरा अस्तित्त्व एक संदेश है।
और स्मरण रखो, परमात्मा अपने संदेश से अलग नहीं है। यह संदेश स्वयं ही दिव्य है। कोई संदेशवाहक नहीं है, झेन इस पूरी की पूरी बेवकूफी को छोड़ देता है। दर्शनशास्त्र खड़ा होता है किताबों के साथ। दर्शनशास्त्र के लिए बाइबिल चाहिए, कुरान चाहिए। दर्शनशास्त्र के लिए ऐसी किताब चाहिए जो पवित्र होने का दावा करे, जो यह दावा करे कि वह विशेष है- कि उसके जैसी कोई और किताब नहीं, कि यह सीधी परमात्मा के मुख से उतरकर आ रही है।
झेन कहता है कि सभी कुछ दिव्य है। तो कुछ भी अलग से विशेष कैसे हो सकता है? सभी कुछ विशेष है। जब ऐसी कोई चीज ही नहीं है जो कि विशेष न हो तो कुछ चीज विशेष कैसे हो सकती है। हर वृक्ष की हर पत्ती और हर समुद्र तट पर पड़ा हर छोटे से छोटा पत्थर भी विशेष है, अनूठा है, पवित्र है। ऐसा नहीं कि कुरान ही पवित्र है, ऐसा नहीं कि बाइबिल ही पवित्र है। जब कोई प्रेमी अपनी प्रेमिका को पत्र लिखता है तो वह पत्र भी पवित्र होता है।
झेन साधारण जीवन में पवित्रता ले आता है।
एक झेन गुरु, बोकूजू, कहा करता था, मैं लकड़ी काटकर लाता हूं, मैं कुएं से पानी लाता हूं। यह सब कितना रहस्यपूर्ण है।
यह कितना रहस्यपूर्ण है! लकड़ी काटकर लाना, कुएं से पानी भर लाना और वह कहता है, कितना रहस्यपूर्ण! यह झेन का दृष्टिकोण है, इससे साधारण चीजें असाधारण में बदल जाती हैं। सांसारिक को पवित्र में बदलने की कीमिया है झेन। जगत और जगत के पार दोनों के भेद आकर झेन में मिट जाते हैं।
इसीलिए मैं कहता हूं कि झेन कोई दर्शनशास्त्र नहीं है। यह शुद्ध धर्म है। दर्शनशास्त्र से तो धर्म प्रदूषित हो जाता है। जहां तक धर्म का संबंध है, वहां तक इस्लाम में और ईसाइयत में और हिंदू धर्म में कोई फर्क नहीं है, लेकिन जहां तक थियोलॉजी का, दर्शनशास्त्र का सवाल है वहां आकर फर्क पड़ने शुरू हो जाते हैं। उनकी अपनी-अपनी थियोलॉजीस हैं। इन अलग-अलग धारणाओं के कारण ही लोग आपस में लड़ते रहे हैं।
धर्म तो एक है; दर्शनशास्त्र कई हैं। दर्शनशास्त्र का अर्थ हैः परमात्मा के संबंध में जानकारी, परमात्मा के संबंध में दिए गए तर्क। ये सब व्यर्थ की लफ्फाजियां हैं, क्योंकि परमात्मा को सिद्ध करने का कोई उपाय ही नहीं है- और न ही उसके न होने को सिद्ध करने का कोई उपाय है। उस बारे में दिया गया कोई भी तर्क, कोई भी विवाद व्यर्थ है। हां, अनुभव किया जा सकता है लेकिन सिद्ध नहीं किया जा सकता- और यही बात करने का प्रयास थियोलॉजी करती है।
अब थियोलॉजी, दर्शनशास्त्र ऐसी बेवकूफियां करता चला जाता है, ऐसी बेवकूफियां करता चला जाता है कि व्यक्ति में यदि जरा भी प्रतिभा हो तो वह उन पर हंसेगा। तुम थोड़े दूर हटकर देखो तो तुम्हें हंसी आएगी। इतनी बेवकूफी भरी बातें की जाती हैं। मध्ययुग में क्रिश्चियन थियोलॉजियन एक बात को लेकर बहुत चिंतित थे, एक पहेली थी जिसे वे सब सुलझाने में लगे थे।

और तुम उस समस्या को देखोगे तो तुम हंसोगे। वे यह सिद्ध करने कि कोशिश में लगे थे कि एक सुई की नोक पर कितने फरिश्ते खड़े हो सकते हैं। इस बारे में किताबें लिखी गईं, बड़े विवाद चले।
थियोलॉजी सब कूड़ा-कर्कट है। और थियोलॉजी के कारण, धर्म विषाक्त हो जाता है। व्यक्ति वास्तव में धार्मिक होगा तो उसके पास कोई दर्शनशास्त्र नहीं होगा। हां, उसके पास अनुभव होगा, उसके पास सत्य होगा, उसके पास वह चमक होगी, लेकिन कोई थियोलॉजी नहीं, कोई दर्शनशास्त्र नहीं। लेकिन विद्वानों के लिए, पंडितों के लिए, तथाकथित जानकारों के लिए थियोलॉजी बड़ी सहायक रही है। पंडितों का बड़ा रस रहा है दर्शनशास्त्र में- पोप्स का, शंकराचार्यों का इसी में ही रस रहा है। उनको इससे लाभ भी बहुत हुआ है। उनका पूरा व्यवसाय इस पर आधारित है।
झेन इस सब की जड़ को काट डालता है। पुरोहित का पूरा व्यवसाय ही नष्ट कर देता है झेन। और पुरोहित का व्यवसाय संसार में कुरूपतम व्यवसाय है, क्योंकि उसका व्यवसाय लोगों को धोखा देने पर टिका है। पुरोहित ने खुद तो जाना नहीं और वह दूसरों को शिक्षा दिए चला जाता है; दार्शनिक ने स्वयं तो जाना नहीं और वह लोगों को दर्शन दे रहा है। वह उतना ही अज्ञानी है जितना कि कोई और- और हो सकता है कि वह सामान्य लोगों से अधिक अज्ञानी हो।
लेकिन उसका अज्ञान बहुत कुशलता से भरा हुआ है। उसका अज्ञान आभूषणों से ढंका है- शास्त्रों से, धारणाओं से; और इतनी चालाकी से वह अपनी अज्ञान को ढंक लेता है, इतनी धूर्तता से कि उसमें कोई भी गलती ढूंढ पाना बहुत कठिन हो जाता है। थियोलॉजी आज तक मनुष्यता के लिए किसी भी प्रकार से सहायक सिद्ध नहीं हुई, लेकिन उससे कुछ लोगों को तो निश्चित ही लाभ हुआ हैः पुरोहित को। थियोलॉजी के कारण वे लोग मनुष्यता को ठगने में कामयाब रहे हैं।
थियोलॉजी तो राजनीति है। वे लोगों को बांटती है। और यदि तुम लोगों को बांटो तभी तुम उनके ऊपर शासन कर सकते हो।
झेन मनुष्यता की ओर अखंडित आंखों से देखता है- लोगों को बांटता नहीं।
झेन की दृष्टि व्यापक है। इसीलिए मैं कहता हूं कि झेन भविष्य का धर्म है।
मनुष्यता धीरे-धीरे उस चेतना की ओर बढ़ रही है जहां थियोलॉजी तो विदा हो जाएगी, केवल अपने शुद्धतम अनुभव में धर्म स्वीकृत होगा।
जापानी भाषा में इसके लिए एक विशेष शब्द है। इसे वे कहते हैंः कोनोमामा या सोनोमामा- अस्तित्त्व का होना। जीवन का यह होना ही परमात्मा है। ऐसा नहीं कि परमात्मा है, लेकिन यह सब होना- जीवन का और अस्तित्त्व का- यही अपने आप में दिव्य है।
वृक्ष का होना, पत्थर का होना, मनुष्य का होना, बच्चे का होना। और होने
की यह जो घटना है यह अपरिभाष्य है। इसमें तुम खो तो सकते हो, इसमें तुम मिट तो सकते हो, इसका तुम स्वाद तो ले सकते हो- कितना रहस्यपूर्ण! लेकिन इसकी तुम परिभाषा नहीं कर सकते, तुम तर्क से उसे सिद्ध नहीं कर सकते, तुम उसके लिए कोई धारणाएं निर्मित नहीं कर सकते।
सभी धारणाएं इस घटना को मार डालती हैं। फिर यह होना शुद्ध होना ही नहीं रहता, फिर तो सारी बात मन की निमर्ति हो जाती है। परमात्मा शब्द परमात्मा नहीं है। परमात्मा की धारणा परमात्मा नहीं है। और न ही प्रेम की धारणा प्रेम है। और न ही प्रेम शब्द प्रेम है। झेन कहता है कि यह बड़ी साधारण सी बात है। झेन कहता है, ‘यह याद रखो कि मेन्यू कार्ड भोजन नहीं है। और मेन्यू कार्ड को खाने मत लग जाओ।’ और सदियों-सदियों से लोग यही कर रहे हैंः मेन्यू कार्ड को खा रहे हैं।
और फिर स्वभावतः यदि वे कुपोषित हैं, वे बढ़ नहीं पा रहे हैं, उनमें कोई शक्ति नहीं है, वे पूरी तरह से जी नहीं पा रहे, तो यह स्वाभाविक है, ऐसा होना ही था। उन्होंने असली भोजन तो लिया ही नहीं। वे भोजन के बारे में बात करते रहे हैं और यह भूल ही गए हैं कि भोजन क्या है? परमात्मा को तो खाना है, परमात्मा का स्वाद लेना है, परमात्मा को जीना है- उसके बारे में कोई विवाद नहीं करना है।
किसी चीज के संबंध में बात करने की प्रक्रिया थियोलॉजी है। और यह संबंध में की जाने वाली बात गोल घेरे में घूमती रहती है, कभी भी वास्तविक

चीज तक नहीं पहुंच पाती। यह एक दुश्चक्र की तरह है। तर्क एक दुश्चक्र है। और झेन हर प्रयास करता है कि तुम्हें उस दुश्चक्र से बाहर निकाल लिया जाए। किस प्रकार तर्क एक दुश्चक्र है?- तुम्हारी धारणा में ही निष्पत्ति छिपी हुई है। निष्पत्ति कोई नई बात नहीं होने वाली है, वह तुम्हारी धारणा में ही छिपी हुई है। और एक बार निष्पत्ति निकालने के बाद फिर तुम उसमें से धारणा बना लेते हो। यह ऐसे ही है जैसे एक बीजः बीज में वृक्ष छिपा हुआ है और फिर वृक्ष और कई बीजों को पैदा करेगा और उन बीजों में कई और वृक्ष छिपे हुए हैं। यह एक दुश्चक्र है; बीज, वृक्ष, बीज। यह चलता चला जाता है। या जैसे, अंडा, मुर्गी; अंडा, मुर्गी; अंडा... यह अनंत श्रृंखला चलती चली जाती है। यह एक चक्र की तरह है।
इस चक्र को तोड़कर बाहर निकल आने का उपाय ही झेन है- शब्दों और धारणाओं के चक्र को तोड़कर स्वयं अस्तित्त्व में उतर जाने का नाम झेन है।
एक झेन गुरु, नानइन, एक बार जंगल में लकड़ी काट रहा था। युनिवर्सिटी का एक प्रोफेसर उससे मिलने आया। स्वभावतः प्रोफेसर को लगा कि यह लकड़हारा जानता होगा कि नानइन पहाड़ों पर कहां रहता है? सो उसने नानइन से पूछा। लकड़हारे ने अपनी कुल्हाड़ी की ओर इशारा करते हुए कहा, इस कुल्हाड़ी के लिए मैंने काफी धन दिया है।
प्रोफेसर ने तो कुल्हाड़ी के बारे में पूछा भी न था। वह पूछ रहा था कि नानइन कहां रहता है? वह पूछ रहा था कि नानइन इस समय अपने आश्रम में होगा भी या कहीं और गया होगा। और नानइन ने अपनी कुल्हाड़ी उठाई और कहा, ‘देखो, इस कुल्हाड़ी के लिए मैंने बहुत धन दिया है।’ प्रोफेसर को थोड़ी परेशानी हुई और इससे पहले कि वह आगे कुछ पूछता, नानइन उसके पास आया और अपनी कुल्हाड़ी प्रोफेसर के सिर पर रख दी। प्रोफेसर तो भय के मारे कांपने लगा और नानइन बोला, यह कुल्हाड़ी बहुत तेज भी है। और प्रोफेसर तो बेचारा भाग गया।
बाद में, जब वह प्रोफेसर आश्रम पहुंचा तो उसने देखा कि वह लकड़हारा और कोई नहीं स्वयं नानइन ही था। फिर उसने दूसरों से पूछा, ‘क्या यह पागल है?’ नहीं, उसके शिष्यों ने कहा। तुमने पूछा कि क्या नानइन आश्रम में है और उन्होंने कहा कि हां। वे कुल्हाड़ी की ओर इशारा करके यह बता रहे थे कि जैसे यह कुल्हाड़ी अभी यहां मौजूद है, वैसे ही वे भी यहां मौजूद हैं। उस क्षण वे लकड़हारे थे; उस क्षण उनके हाथ में जो कुल्हाड़ी थी, उस कुल्हाड़ी के साथ वे पूरी तरह तल्लीन थे। उस समय उस कुल्हाड़ी की जो तेजी है, वही वे थे। तुमसे उन्होंने कहा, ‘मैं यहीं हूं।’ लेकिन तुम पूरी बात ही चूक गए। वे तुम्हें झेन की गुणवत्ता सिखा रहे थे।
झेन के पास कोई धारणा नहीं है। झेन गैर-बुद्धिवादी है। यह संसार में अकेला धर्म है जो तुम्हें अभी और यहीं होना सिखाता है; क्षण-क्षण जीना; इस क्षण में उपस्थित होना, न अतीत, न भविष्य।
लेकिन लोग तो धारणाओं में जीते रहे हैं। और वे धारणाएं उन्हें बचकाना बनाए रखती हैं, वे उन्हें विकसित नहीं होने देतीं। जब तक तुम किसी धारणा में सीमित हो, तब तक तुम विकसित नहीं हो सकते। एक ईसाई होते हुए, या हिंदू होते हुए, या मुसलमान होते हुए, या बौद्ध होते हुए तुम्हारा विकास नहीं हो सकता। तुम बढ़ नहीं सकते; तुम्हारे पास विकसित होने के लिए पर्याप्त स्थान ही नहीं होता; तुम कैद में होते हो।
एक युवा पादरी चर्च के एक लाख डालर स्टॉक मार्केट में हार गया। फिर अगले दिन उसकी सुंदर पत्नी उसे छोड़कर चली गई। वह बेचारा इतना निराश हो गया कि एक दिन नदी के किनारे जाकर उसने आत्महत्या करने की ठान ली। वह नदी में कूदने को ही था कि एक बूढ़ी जर्जर देह वाली स्त्री उसके सामने आई और उसे बोली, ‘बेटे, कूदो मत। मैं जादूगरनी हूं, और यदि तुम तुम मेरे लिए कुछ करोगे तो मैं तुम्हारी तीन इच्छाएं पूरी करूंगी!’
”मेरी कोई मदद नहीं कर सकता’ युवा पादरी ने जवाब दिया।
”पागल मत बनो’ वह बोली। छू मंतर! तुम्हारे चर्च की तिजोरी में सारा पैसा वापस पहुंच गया है। छू मंतर! तुम्हारी पत्नी घर वापस पहुंचकर तुम्हारा इंतजार कर रही है। छू मंतर! अब तुम्हारे अपने बैंक में दो लाख डालर भी पहुंच चुके हैं!

वाह! वाह! मजा आ गया, पादरी खुशी से चिल्लाया। अब मैं आपके लिए क्या कर सकता हूं?
एक रात मेरे साथ प्रेम करते हुए बिताओ।
बिना दांत की इस जर्जर देह वाली बूढ़ी स्त्री के साथ एक रात प्रेम करते हुए बिताने का ख्याल ही अपने आप में घृणापद था। तब भी वचन तो वह दे ही चुका था और बूढ़ी स्त्री उसकी इच्छाएं भी पूरी कर चुकी थी, तो उन्होंने पास ही एक होटल में अपना कमरा बुक किया। सुबह जब यातना भरी रात बिताकर वह घर वापस पहुंचने की तैयारी कर रहा था और कपड़े पहन रहा था तो वह स्त्री उठकर बैठी और बोली, ‘बेटे, तुम्हारी उम्र कितनी है?’
मैं बयालीस साल का हूं! पादरी ने जवाब दिया। लेकिन क्यों?
तुम इतने बड़े हो, तब भी क्या तुम्हें इतना नहीं पता कि जादूगर होते ही नहीं?
यही होता है। यदि तुम परमात्मा में विश्वास करते हो तो तुम किसी भी चीज में विश्वास कर सकते हो- चाहे वह जादूगर हो, जादूगरनी हो, भूत-प्रेत हों। यदि तुम एक तरह की बेवकूफी में विश्वास कर सकते हो, तो तुम किसी भी तरह की बेवकूफी में विश्वास कर सकते हो। लेकिन तुम कभी विकसित नहीं हो पाते हो। तुम बचकाने बने रहते हो।
झेन का अर्थ हैः प्रौढ़ता। झेन का अर्थ हैः सारी इच्छाएं गिर जाने दो और देखो कि वास्तव में क्या है? अपने सपनों को वास्तविकता में लाने की कोशिश मत करो। अपनी आंखों को सपनों से पूरी तरह साफ हो जाने दो, ताकि तुम देख सको कि वास्तविकता क्या है? यह वास्तविकता ही जापानी भाषा में कोनोमामा या सोनोमामा कहलाती है।
सारी धारणाएं और सारे दर्शनशास्त्र तुम्हें वास्तविकता को देखने से रोकते हैं। धारणाएं सारी की सारी आंख पर बांधी जाने वाली पट्टी की तरह है, वे तुम्हारी दृष्टि को रोक देती हैं। न तो कोई ईसाई देख पाता है, न कोई हिंदू देख पाता है, न कोई मुसलमान देख पाता है। क्योंकि तुम धारणाओं से इतने भरे हुए होते हो कि तुम वही देखते हो, जो तुम देखना चाहते हो। तुम वही देखते हो, जो वहां पर नहीं है। तुम चीजें प्रक्षेपित किए चले जाते हो। तुम अपनी स्वयं की एक वास्तविकता निर्मित कर लेते हो जो कि है ही नहीं। और इसी से सारी विक्षिप्तता पैदा होती है। तुम्हारे तथाकथित संतों में सौ में से निन्यानबे तो विक्षिप्त लोग हैं।
झेन एक तरह की प्रौढ़ता लेकर आता है। झेन सभी धारणाओं को गिरा देता है। झेन कहता है, ‘खाली हो जाओ। सब धारणाएं गिरा दो। चीजों की स्वभाव की ओर देखो लेकिन बिना किसी धारणा के, बिना किसी पूर्वाग्रह के, बिना किसी पूर्व धारणा के। चीजों को पहले से मान मत लो- यह आधारभूत नियम है झेन का। तो दर्शनशास्त्र को पूरी तरह से गिरा देना होगा, वरना तुम पूर्वाग्रहों से ग्रस्त रहोगे।’
समझ रहे हो तुम? यदि तुम्हारी पहले से ही कोई धारणा हो, तो इस बात की हर संभावना है कि तुम उसको वास्तविकता में खोज लोगे- क्योंकि मन बहुत ही सृजनात्मक है। स्वभावतः वह सृजन केवल कल्पना में ही होगा। यदि तुम क्राइस्ट को खोज रहे हो तो तुम्हारे सपनों में क्राइस्ट आने लगेंगे, और वह सारी बात कल्पना में ही होगी। अगर तुम कृष्ण को खोज रहे हो तो तुम कृष्ण को पा लोगे, लेकिन वह तुम्हारी कल्पना ही होगी।
झेन बहुत यथार्थवादी है। उसका कहना है कि कल्पना को पूरी तरह गिराना होगा। कल्पना आती है तुम्हारे अतीत से। बचपन से ही तुम किन्हीं खास धारणाओं में संस्कारित किए गए हो। बचपन से ही तुम्हें चर्च ले जाया गया है, मंदिर ले जाया गया है, मस्जिद ले जाया गया है; तुम्हें किसी पंडित के पास, किसी पुरोहित के पास ले जाया गया है; तुम्हें बाध्य किया गया है कि तुम उपदेशों को सुनो- हर तरह की चीजें तुम्हारे मन में ठूंस दी गई हैं। उस सब के बोझ से भरे और दबे हुए, तुम वास्तविकता को नहीं देख पाते।
बोझ से मुक्त हो जाओ। बोझ से मुक्त हो जाना ही झेन है।
झेन बहुत सरल है और फिर भी बहुत कठिन है। जहां तक झेन का अपना संबंध है, वह तो बहुत सरल है- सरलतम, क्योंकि झेन से सहज और कुछ भी नहीं। लेकिन

तुम्हारे संस्कारित मनों के कारण वह बहुत कठिन हो जाता है। जिस विक्षिप्त संसार में हम रह रहे हैं उसके कारण झेन बहुत कठिन हो जाता है। जिन धारणाओं और जिन दर्शनशास्त्रों को लेकर हमारा पालन-पोषण हुआ है, उन सब के कारण झेन बहुत कठिन हो जाता है।
दूसरी बातः झेन कोई दर्शन नहीं, एक कविता है। झेन न तो कोई उपदेश देता है, न कोई विवाद करता है, न कोई तर्क उठाता है। झेन केवल अपना गीत गाता है, यदि तुम्हारा हृदय खुला हो तो तुम उसे सुन लो।
झेन सौंदर्य बोध से भरा हुआ धर्म है। झेन की पूरी की पूरी चिंता सौंदर्य को लेकर है- सत्य को लेकर नहीं। क्यों? क्योंकि सत्य का मार्ग तो रूखा-सूखा है। ऐसा नहीं कि सत्य स्वयं में सूखा है, लेकिन जो लोग सत्य को पाने में उत्सुक होते हैं वे रूखे-सूखे होते हैं। क्योंकि उनकी खोज मस्तिष्क की, बुद्धि की होती है, तो उनके हृदय सिकुड़ जाते हैं, उनमें कोई रसधार नहीं बहती। उनके प्रेम के स्रोत सूखने लगते हैं, वे हिंसक हो जाते हैं, क्योंकि किसी भी तरह उन्हें सत्य को पा लेना है।
झेन के जगत में तुम्हारी बुद्धि की नहीं, तुम्हारे पूरे प्राणों की जरूरत है। ऐसा नहीं कि वहां बुद्धि अस्वीकृत है, लेकिन उसे उसकी सही जगह पर रखा गया है। बुद्धि के हाथों में तुम्हारी पूरी बागडोर झेन में नहीं रहती। तुम्हारी पूरी समग्रता में उसका अपना कार्य है। जैसे, झेन में पांव भी उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं जितना कि तुम्हारा सिर, हाथ भी उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं जितनी कि तुम्हारी बुद्धि, हृदय भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितनी कि तुम्हारी बुद्धि। तुम्हें वहां एक ऑरगेनिज्म की तरह हो जाना पड़ता है। न तुम्हारा कोई हिस्सा ऊपर है, न नीचे है। दर्शनशास्त्र बुद्धि केंद्रित होता है; काव्य समग्र होता है। कविता में एक बहाव होता है। कविता का संबंध सौंदर्य के साथ होता है। और सौंदर्य अहिंसक होता है, और सौंदर्य प्रेम से भरा होता है, और सौंदर्य में एक करुणा होती है।
झेन का खोजी सत्य को सौंदर्य में पाने का प्रयास करता है। पक्षियों के गीतों में, वृक्षों में, मोर के नृत्य में, बादलों में, बिजली में, सागरों में, रेगिस्तानों में- हर जगह वह सत्य को खोजता है। झेन का साधक सौंदर्य की खोज में उतर जाता है और सत्य को पा लेता है।
स्वभावतः सौंदर्य की खोज का एक अलग ही प्रभाव है। जब तुम सत्य को खोज रहे होते हो तो तुम अधिक पुरुष चित्त होते हो; जब तुम सौंदर्य को खोज रहे होते हो तो तुम स्त्री चित्त होते हो। जब तुम सत्य को खोज रहे होते हो तो तुम बुद्धि से, तर्क से चलते हो; जब तुम सौंदर्य को खोज रहे होते हो तो तुम भाव के जगत में उतरने लगते हो। झेन स्त्रैण चित्त धर्म है। काव्य स्त्रैण चित्त है। दर्शनशास्त्र पुरुष चित्त है, अधार्मिक है।
झेन अधार्मिक है- इसीलिए झेन में मात्र बैठे भर रहना एक महत्त्वपूर्ण ध्यान की विधि बन गई है। बस बैठना भर- झाझेन। झेन गुरु कहते हैं कि तुम बिना कुछ किए खाली बैठे रहो, और चीजें अपने आप घटती है। तुम्हें कुछ भी करना नहीं पड़ेगा; तुम्हें किसी चीज के पीछे भागना नहीं पड़ेगा, तुम्हें कुछ खोजना नहीं पड़ेगा। चीजें स्वयं आएंगी। तुम बैठ भर रहो।
यदि तुम मौन बैठ सको, यदि तुम पूरी तरह विश्रांत हो सको, यदि तुम स्वयं
को शिथिल छोड़ सको, यदि तुम अपने सारे तनाव घड़ी भर को छोड़ दो और ऐसी दशा में आ जाओ जहां तुम्हें कहीं जाना नहीं है, कुछ खोजना नहीं है, तो भगवत्ता तुममें उतरने लगती है। हर ओर से दिव्यता तुम्हारी ओर दौड़ी चली आती है। बस, बैठे हुए, बिना कुछ किए, बसंत आता है और फूल अपने आप खिल उठते हैं।
और याद रखो, जब झेन कहता है बैठना भर तो उसका अर्थ बैठना भर ही है- कुछ और नहीं, मंत्र का उच्चार तक नहीं। यदि तुम किसी मंत्र का उच्चार कर रहे हो तो तुम बैठे नहीं हुए हो, तुम एक चक्र में घूम रहे हो, बार-बार, बार-बार किसी चीज को दोहरा रहे हो।
यदि तुम कुछ भी नहीं कर रहे... विचार आ रहे हैं; जा रहे हैं; आ रहे हैं,
जा रहे हैं- वे आएं, तो अच्छा; वे न आएं, तो अच्छा। तुम्हें इसकी परवाह ही नहीं है कि क्या हो रहा है? तुम बस बैठे भर हो। और बैठे-बैठे यदि थक जाओ, तो

लेट जाओ; यदि तुम्हें लगे कि तुम्हारे पांव दुखने लगे, तो उन्हें थोड़ा ढीला कर के बैठ जाओ। तुम स्वाभाविक दशा में रहो। चीजों को साक्षी होकर देखो भी मत। किसी तरह का कोई प्रयास ही मत करो। बैठने भर का यही अर्थ है। बस बैठे-बैठे ही घटना घट जाती है।
झेन की पहुंच स्त्रैण है, और धर्म मूलतः स्त्रैण होता है। विज्ञान पुरुष चित्त होता है, दर्शनशास्त्र पुरुष चित्त होता है- धर्म स्त्रैण होता है। इस जगत में जो भी कुछ सुंदर है- कविता, चित्रकारिता, नृत्य- सब कुछ स्त्रैण चित्त से आया है।
यह जरूरी नहीं कि यह सब स्त्रियों से आया हो, क्योंकि स्त्रियों तो आज तक सृजन करने के लिए स्वतंत्र रही ही नहीं। उनके दिन अब आ रहे हैं। जैसे- जैसे झेन इस संसार में महत्त्वपूर्ण होता जाएगा, स्त्रैण चित्त उभरकर ऊपर आएगा, उसमें एक विस्फोट होगा।
चीजें एक समग्रता में गति करती हैं। आज तक का अतीत पुरुष नियंत्रित रहा है- इसीलिए इस्लाम और क्रिश्चियनिटी और हिंदू धर्म का प्रभाव रहा। भविष्य स्त्रैण होने वाला है; कोमल, अधार्मिक, शांत, सौंदर्य बोध से भरा हुआ, काव्यात्मक होने वाला है। काव्यात्मक वातावरण में झेन संसार की सबसे महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया बन जाएगी।
दर्शनशास्त्र है तर्क; काव्य है प्रेम। दर्शनशास्त्र चीजों को तोड़ता है, उनका विश्लेषण करता है; कविता चीजों को जोड़ती है। दर्शनशास्त्र मूलतः विध्वंसात्मक है; काव्य जीवनदायी है। दर्शनशास्त्र की विधि है विश्लेषण-और यह विधि विज्ञान की भी है, मनोविज्ञान की भी है। देर या अबेर मनोविश्लेषण को हटा देना होगा और मनोसंश्लेषण को जगह देनी होगी। रवींद्रनाथ टेगोर सिग्मंड फ्रॉयड से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि संश्लेषण सत्य के अधिक करीब है, विश्लेषण सत्य से बहुत दूर ले जाता है। यह जगत एक है। यहां कुछ भी अलग-थलग नहीं है। हर चीज एक साथ धड़क रही है।
हम एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं, अंर्तसंबंधित हैं। यह पूरा जगत जीवन का एक ताना-बाना है। घास की एक छोटी सी छोटी पत्ती भी सुदूर तारे से जुड़ी हुई है।
यदि इस पत्ती को कुछ होता है तो उस सुदूर के तारे में भी कुछ परिवर्तन जरूर होंगे। सब कुछ एक साथ है, जुड़ा हुआ है। यह अस्तित्त्व एक परिवार है।
झेन कहता है, ‘चीजों को तोड़ो मत, उनका विश्लेषण मत करो।’
झेन कहता है कि मनुष्य एक समग्रता है, एक ऑरगनिज्म है।
आधुनिक विज्ञान में एक नई धारणा बहुत प्रचलित हो गई है- इसे वे कहते हैं एन्ड्रोजिनी। प्रसिद्ध वैज्ञानिक, बक मिन्टर फुलर ने एन्ड्रोजिनी की परिभाषा देते हुए कहा है, ‘हर इकाई, हर ओरगनिज्म में ऐसा कुछ होता है जो कि केवल उसके टुकड़ों और खंडों का जोड़ भर ही नहीं होता। जब किसी ऑरगनिज्म के सब टुकड़े आपस में जोड़ दिए जाते हैं तो वह काम करने लगता है। जैसे, घड़ी के पुर्जें आपस में जोड़ दिए जाएं तो घड़ी टिक-टिक-टिक करने लगती है। तुम घड़ी को खोल दो और उसके सब पुर्जें अलग-अलग कर दो, तो टिक-टिक गायब हो जाती है। तुम फिर पुर्जों को आपस में जोड़ दो और ठीक पहले जैसी अवस्था में ले आओ, तो टिक-टिक वापस आ जाती है। ये टिक-टिक पुर्जों से अलग है। कोई भी एक पुर्जा इसके लिए जिम्मेदार नहीं हो सकता और न ही अलग-अलग पड़े हुए सब पुर्जें इसके लिए जिम्मेदार हो सकते हैं; इस टिक-टिक के लिए तुम्हें सब पुर्जों को आपस में जोड़ना पड़ेगा।’
यह टिक-टिक आत्मा है, सब पुर्जों को एक साथ जोड़ दिए जाने पर जो प्रकट होती है। तुम मेरा हाथ अलग कर दो, तुम मेरे पांव अलग कर दो, तुम मेरा सिर अलग कर दो, और जो मेरी धड़कन है वह समाप्त हो जाती है। यह धड़कन मेरी आत्मा है। लेकिन यह धड़कन तब तक ही रहती है जब तक मेरे सब हिस्से एक इकाई में बंधे रहें।
परमात्मा इस पूरे अस्तित्त्व की धड़कन है। तुम परमात्मा को इसके सब हिस्सों को अलग-अलग करके नहीं पा सकते। परमात्मा को पाना हो तो तुम्हें अपनी दृष्टि को अखंड रखना होगा। परमात्मा अखंडता का एक अनुभव है। विज्ञान कभी भी उसे खोज नहीं सकता, दर्शनशास्त्र कभी भी उस तक पहुंच नहीं सकता- केवल एक काव्यात्मक दृष्टि, एक अधार्मिकता, एक प्रेमपूर्ण पहुंच के साथ

ही तुम उसे छू सकते हो। जब तुम अस्तित्त्व के साथ एक लयबद्धता में आ जाते हो, जब तुम एक साधक की तरह अलग नहीं रह जाते, जब तुम एक खोजी की तरह अलग नहीं रह जाते, जब तुम मात्र देखने वाले द्रष्टा नहीं रह जाते, तुम पूरी तरह अपने आप को इसमें खो देते हो- तब वह धड़कन प्रकट होती है।
तीसरी बातः झेन विज्ञान नहीं है, लेकिन जादू है। लेकिन यह कोई बाजीगरों वाला, जादूगरों वाला जादू नहीं है, यह ऐसा जादू है जो तुम्हें जीवन के करीब ले आता है। विज्ञान तो बौद्धिक है। वह जीवन के रहस्य को नष्ट करने का एक प्रयास है। विज्ञान सारे रहस्य को मार डालता है। यह जो तिलिस्म चारों और बिखरा है, विज्ञान उसके खिलाफ है। झेन इस तिलिस्म को जीने की कला है।
जीवन के रहस्य को सुलझाना नहीं है, क्योंकि उसे सुलझाया जा ही नहीं सकता। उसे जीना है, उसमें उतरना है, उसका स्वाद लेना है। यह जीवन एक रहस्य है, यही इसका आनंद भी है। इसका उत्सव मनाना है।
झेन जादू है। वह तुम्हें रहस्य को खोलने की कुंजी देता है। और मजे की बात यह है कि वह रहस्य भी तुममें है और कुंजी भी तुममें ही है।
जब तुम किसी झेन गुरु के पास पहुंचते हो, तो वह तुम्हारी मदद करता है कि तुम बस शांत हो जाओ, और जो कुंजी तुम सदा से अपने भीतर लिए चल रहे हो, वह तुम अपने भीतर ही पा लो। और उस कुंजी से जो द्वार खुलना है, वह भी तुम्हारे भीतर ही है। जब तुम शांत होते हो, तो उस द्वार के पास सहज ही तुम पहुंच जाते हो।
और अंतिम बुनियादी बातः झेन कोई आदर्श नहीं देता। झेन यह नहीं कहता कि तुम्हें ऐसा करना है और ऐसा नहीं करना। झेन बस तुम्हें सौंदर्य के प्रति संवेदनशील बना देता है, और वह संवेदनशीलता ही तुम्हारा आदर्श बन जाती है। लेकिन यह मॉरेलिटी, यह आदर्श कहीं तुम्हारे बाहर से नहीं आता, तुम्हारी चेतना से आता है। झेन तुम्हें चेतना देता है, तुम्हें कर्तव्य का कोई भाव नहीं देता। ऐसा नहीं कि तुम्हें किसी बाइबिल, किसी कुरान या किसी वेद को मानना है। जो कुछ है, तुम्हारे भीतर ही है।
और जब कुछ तुम्हारे भीतर से आता है, तो वह गुलामी नहीं होती, वह स्वतंत्रता होती है। और जब कुछ तुम्हारे भीतर से उठता है तो तुम उसे हिचकिचाते हुए नहीं करते। उसे करने में तुम्हें आनंद आता है। वह करना तुम्हारा प्रेम बन जाता है।

प्रवचन-9
संसार क्यों है? ताकि मुक्ति फलित हो सके!
पतंजलि योग सूत्र से अनुवादित- ‘कष्ट, दुख और शांति’ में भी प्रकाशित

वैज्ञानिक मानस सोचा करता था कि अव्यक्तिगत ज्ञान की, विषयगत ज्ञान की संभावना है। असल में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का यही ठीक-ठीक अर्थ हुआ करता था। ‘अव्यक्तिगत ज्ञान’ का अर्थ है कि ज्ञाता अर्थात जानने वाला केवल दर्शक बना रह सकता है। जानने की प्रक्रिया में उसका सहभागी होना जरूरी नहीं है। इतना ही नहीं, बल्कि यदि वह जानने की प्रक्रिया में सहभागी होता है तो वह सहभागिता ही ज्ञान को अवैज्ञानिक बना देती है। वैज्ञानिक ज्ञाता को मात्र द्रष्टा बने रहना चाहिए, अलग-थलग बने रहना चाहिए, किसी भी तरह उससे जुड़ना नहीं चाहिए जिसे कि वह जानता है।
लेकिन अब बात ऐसी नहीं रही। विज्ञान प्रौढ़ हुआ है। इन थोड़े से दशकों में, पिछले तीन-चार दशकों में विज्ञान अपने भ्रमपूर्ण दृष्टिकोण के प्रति सचेत हुआ है। ऐसा कोई ज्ञान नहीं जो अव्यक्तिगत हो। ज्ञान का स्वभाव ही है व्यक्तिगत होना। और ऐसा कोई ज्ञान नहीं जो असंबद्ध हो, क्योंकि जानने का अर्थ ही है संबद्ध होना। केवल दर्शक की भांति किसी चीज को जानने की कोई संभावना नहीं है; सहभागिता अनिवार्य है। इसलिए अब सीमाएं उतनी स्पष्ट नहीं रही हैं।

पहले कवि कहा करता था कि उसके जानने का ढंग व्यक्तिगत है। जब एक कवि किसी फूल को जानता है तो वह उसे पुराने वैज्ञानिक ढंग से नहीं जानता। वह बाहर-बाहर से ही देखने वाला नहीं होता। किसी गहरे अर्थ में वह वही बन जाता हैः वह उतरता जाता है फूल में और फूल को उतरने देता है अपने में, और एक गहन मिलन घटता है। उस मिलन में फूल का स्वरूप जाना जाता है।
अब विज्ञान भी कहता है कि जब तुम किसी चीज को ध्यानपूर्वक देखते हो तो तुम सहभागी होते हो- चाहे कितनी ही छोटी क्यों न हो वह सहभागिता, लेकिन फिर भी तुम सहभागी होते हो। कवि कहा करता था कि जब तुम किसी फूल की तरफ देखते हो तो वह फिर वही फूल नहीं रहता जैसा कि वह तब था जब किसी ने उसकी ओर देखा न था, क्योंकि तुम उसमें प्रवेश कर चुके हो, उसका हिसा बन चुके हो। तुम्हारी दृष्टि भी अब उसका हिसा हो जाती है; पहले वह वैसा न था। जंगल में किसी अज्ञात पगडंडी के किनारे खिला एक फूल, जिसके पास से कोई गुजरा नहीं, वह एक अलग ही फूल होता है; फिर अचानक कोई आ जाता है जो देखता है उसकी तरफ- वह फूल अब वही न रहा। फूल बदल देता है द्रष्टा को, और दृष्टि बदल देती है फूल को। एक नई गुणवत्ता प्रवेश कर गई।
लेकिन यह ठीक था कवियों के लिए- कोई भी उनसे बहुत तार्किक और वैज्ञानिक होने की आशा नहीं रखता- लेकिन अब तो विज्ञान भी कहता है कि यही प्रयोगशालाओं में घट रहा हैः जब तुम निरीक्षण करते हो तो निरीक्षण की वस्तु वही नहीं रह जाती, उसमें देखने वाला शामिल हो जाता है और गुणवत्ता बदल जाती है। अब भौतिकशास्त्री कहते हैं कि जब कोई उन्हें देख नहीं रहा होता तो परमाणु अलग ही ढंग से व्यवहार करते हैं। जैसे ही तुम उन्हें देखते हो, वे तुरंत अपनी गतियां बदल देते हैं। बिल्कुल ऐसे ही जैसे कि जब तुम अपने नानगृह में होते हो तो तुम एक अलग ही व्यक्ति होते हो; फिर अचानक ही तुम्हें लगता है कि चाबी के छेद से कोई देख रहा है- तत्क्षण तुम बदल जाते हो। परमाणु भी जब अनुभव करता है कि कोई देखने वाला है, तो फिर वह वही नहीं रह जाता; वह अलग ही ढंग से गति करने लगता है। यही थीं सीमाएंः विज्ञान को समझा जाता था बिल्कुल अव्यक्तिगत; कला थी विज्ञान और धर्म के मध्य में और समझा जाता था कि उसकी आंशिक सहभागिता होती है; और धर्म था समग्र सहभागिता। एक कवि देखता है फूल को, तब ऐसी झलकियां मिलती हैं जब वह भी खो जाता है, फूल भी खो जाता है। लेकिन ये केवल झलकियां ही होती हैं; कुछ क्षणों के लिए मिलन घटता है, और फिर वे अलग हो जाते हैं, फिर वे पृथक हो जाते हैं। जब एक रहस्यदर्शी, एक धार्मिक व्यक्ति फूल को देखता है तब क्या घटता है? तब सहभागिता समग्र होती है, आंशिक नहीं होती। ज्ञाता और ज्ञेय दोनों खो जाते हैं; बच रहती है केवल वह ऊर्जा जो दोनों के बीच आंदोलित हो रही होती है। अनुभूति बच रहती है; अनुभव करने वाला नहीं बचता, न ही अनुभव की विषय-वस्तु बचती है। विपरीतताएं खो जाती हैं, विषय और विषयी मिट जाते हैं, सारी सीमाएं खो जाती हैं।
धर्म एक समग्र सहभागिता है। कविता या कला या चित्रकला आंशिक सहभागिता है।
विज्ञान बिल्कुल भी भागीदार न था। अब बात ऐसी नहीं है। विज्ञान को वापस कविता के, धर्म के ज्यादा निकट आना पड़ा है। अब सारी सीमाएं एक-दूसरे में घुल-मिल गई हैं। केवल पचास वर्ष पहले तक वैज्ञानिक ढंग से प्रशिक्षित व्यक्ति हंस देता पतंजलि पर, खिलखिला कर हंस पड़ता शंकर और वेदांत पर और अपने भीतर सोचता कि ये लोग पागल हो गए हैं। अब असंभव है पतंजलि पर हंसना। वे ज्यादा ठीक सिद्ध हो रहे हैं।
जैसे-जैसे विज्ञान ज्यादा गहरे विकसित होता जाता है, योग ज्यादा प्रामाणिक और ज्यादा सत्य मालूम हो रहा है। क्योंकि योगी की सदा यही दृष्टि रही हैः कि अतित्व अखंड है। पृथकता, सीमाओं का विभाजन कामचलाऊ है- यह अज्ञानवश है। इसकी जरूरत है; यह एक आवश्यक प्रशिक्षण है। तुम्हें गुजरना ही है इसमें से, तुम्हें भोगना है इसे और अनुभव करना है इसे- लेकिन तुम्हें गुजर जाना है इसमें से। यह कोई घर नहीं है; यह केवल एक मार्ग है। यह संसार पृथकता का, वियोग का मार्ग है। यदि तुम गुजर जाते हो इसमें से और तुम समझने लगते हो पूरे अनुभव को, तो मिलन और विवाह पास आता जाता है- और

पास, और पास। और एक दिन अचानक ही तुम विवाहित होते हो, संपूर्ण सृष्टि से मिलन होता है और सारे वियोग मिट जाते हैं। और उस मिलन में ही आनंद है। इस अलगाव में पीड़ा है, क्योंकि यह अलगाव झूठा है। अलगाव है, क्योंकि तुम्हें बोध नहीं है। तुम्हारे अज्ञान में ही उसका अतित्व है। यह एक स्वप्न की भांति है।
तुम सोए हुए होः फिर तुम स्वप्न देखते हो हजारों चीजों के, और सुबह वे सभी तिरोहित हो जाती हैं। और अचानक तुम हंसने लगते हो स्वयं पर ही। सारी बात ही इतनी बेतुकी मालूम पड़ती है। तुम्हें विश्वास नहीं आता कि ऐसा हुआ कैसे! तुम्हें विश्वास नहीं आता कि तुम भ्रांति में कैसे पड़ गए, जैसे कि वह सब वास्तविक हो! तुम्हें विश्वास नहीं आता कि ऐसा कैसे संभव हुआ कि तुम मन में तैरते उन चित्रों द्वारा इतने अभिभूत हो गए! वे विचारों के बुदबुदों के सिवाय और कुछ नहीं थे। और वे कैसे लगते थे- यथार्थ, ठोस, और वास्तविक! ऐसा ही घटता है जब कोई सत्य के अनुभव में उतरता है! लेकिन सत्य जाना जाता है गहरी सहभागिता द्वारा। यदि तुम सहभागी नहीं होते तो तुम सत्य को बाहर-बाहर से ही जानोगे, किसी अजनबी की भांति, किसी बाहरी व्यक्ति की भांति। तुम इस घर के पास आ सकते हो; तुम घर के चारों तरफ घूम सकते हो; और तुम घर के बारे में कुछ बातें जान भी लोगे। लेकिन तुम घूमते रहे बाहर ही, सतह पर ही। तुमने दीवारों को बाहर से ही देखा। तुम घर को भीतर से नहीं जानते। कभी-कभी, रात के अंधेरे में आए चोर की भांति, तुम घर में प्रवेश भी कर सकते हो।
कवि चोर होता है। वैज्ञानिक अजनबी बना रहता है। धार्मिक आदमी मेहमान होता है; वह रात के अंधेरे में नहीं आता हैः वह घर में चोरी से नहीं आता है। हालांकि कुछ बातों को चोर की भांति भी जाना जा सकता है, इसलिए कवि बेहतर होगा उस वैज्ञानिक व्यक्ति से जो कि बाहर-बाहर ही घूमता रहा और कभी भीतर नहीं आया। तो कवि भी थोड़ा-बहुत जान लेगा जिसे एक वैज्ञानिक कभी नहीं जान सकता, क्योंकि कवि प्रवेश कर चुका है घर में- चाहे रात में ही सही, अंधेरे में ही सही; चाहे अनिमंत्रित ही, अतिथि के रूप में नहीं, सामने के द्वार से नहीं।
धार्मिक आदमी घर में प्रविष्ट होता है अतिथि की भांति। वह उसे अर्जित करता है। और वह न केवल घर के बारे में ही जानता है, बल्कि मालिक के बारे में भी जानता है- क्योंकि वह मेहमान होता है। वह न केवल उस भौतिक घर के बारे में जानता है, बल्कि वह उस अभौतिक मालिक के बारे में भी जानता है जो कि वस्तुतः केन्द्र है घर का। वह घर के मालिक को भी जानता है।
विज्ञान जानता है केवल पदार्थ को। कला को कई बार झलकें मिलती हैं अभौतिक की। क्योंकि चोर भी देख सकता है मालिक को, लेकिन मालिक सोया हुआ होगा। वह भी देख सकता है उसका चेहरा, लेकिन केवल अंधकार में, क्योंकि वह भयभीत होता है, सदा भयभीत होता है कि कहीं कुछ गड़बड़ न हो जाए। वह चोर होता है और सदा भयभीत होता है और कंप रहा होता है। लेकिन जब तुम घर में अतिथि की भांति आमंत्रित होकर आते हो, तुमने उसे अर्जित किया होता है, तो मालिक तुम्हारा आलिंगन करता है; तुम्हारा स्वागत करता है। तब तुम जानते हो सत्य के अंतरतम केन्द्र को।
भारत में हमारे पास कवि के लिए दो शब्द हैं। किसी अन्य भाषा में कवि के लिए दो शब्द नहीं हैं, क्योंकि कोई जरूरत नहीं पड़ी। एक ही शब्द पर्याप्त होता है। वही इशारा कर देता है काव्य की घटना की तरफ- ‘कवि’ पर्याप्त है। लेकिन संकृत में हमारे पास दो शब्द हैंः ‘कवि’ और ‘ऋषि’। और भेद बहुत सूक्ष्म है और समझने जैसा है। ‘कवि’ वह है जो चोर की भांति आता है। वह सहभागी तो होता है, इसलिए वह कवि है। लेकिन उसका ज्ञान होता है टुकड़ों में। किन्हीं खास क्षणों में जैसे कि कोई चोर घर के भीतर हो और अचानक आकाश में बिजली कौंध जाए और वह सारे घर को भीतर से भी देख सके- लेकिन ऐसा होता है क्षण भर को ही। फिर बिजली खो जाती है और हर चीज स्वप्नवत हो जाती है।
तो कभी-कभी कवि का सामना हो जाता है सत्य से, लेकिन इसी तरह जैसे कि उसने उसे अर्जित न किया हो। इसीलिए कई बार आश्चर्य करोगे तुम; तुम किसी की कविता पढ़ते हो- कोई भी कविता, किसी की भी- वह तुम्हें छूती है, तुम्हारे

हृदय में उतर जाती है, तुम आंदोलित हो जाते हो और तुम मिलना चाहते हो इस आदमी से जिसमें कि ये पंक्तियां अवतरित हुई हैं। लेकिन जब तुम उस आदमी से, उस कवि से मिलते हो, तो तुम्हें निराशा होती है- वह एकदम सामान्य आदमी होता है- साधारण, कुछ खास नहीं। अपनी कविता की उड़ान में वह बड़ा असाधारण था, लेकिन यदि तुम मिलते हो उस कवि से तो वह साधारण ही होता है। क्या हुआ? तुम नहीं मान सकते कि ऐसा सुंदर काव्य पैदा हो सकता है एक साधारण आदमी से!
ऐसा इसलिए होता है क्योंकि कवि कोई स्थायी निवासी नहीं होता मंदिर का। वह चोर होता है। कई बार वह प्रवेश करता है, लेकिन अंधेरे में ही। निश्चित ही, चारों ओर घूमने से तो बेहतर है यह; कम से कम उसे एक झलक तो मिलती है। बस वह उस झलक के गीत गाता है। उसके हृदय में सतत एक टीस बनी रहती है उस आंतरिक झलक के लिए जिसे उसने एक बार देखा है। वह फिर-फिर उसी के गीत गाता है, लेकिन अब यह उसका अनुभव नहीं है। यह अतीत की बात हो गई- एक स्मृति, एक स्मरण, कोई वास्तविकता नहीं।
”ऋषि’ वह कवि है जिसका स्वागत हुआ है मेहमान की भांति। ऋषि शब्द का अर्थ है द्रष्टा, और कवि शब्द का भी अर्थ है द्रष्टा। उन दोनों का ही अर्थ होता हैः वह जिसने कि देख लिया। तो भेद क्या है? भेद यह है कि ऋषि ने उसे अर्जित किया होता है। वह दिन के प्रकाश में प्रविष्ट हुआ घर में; वह सामने के दरवाजे से प्रविष्ट हुआ। वह कोई अनिमंत्रित मेहमान नहीं है; वह किसी दूसरे के घर में अनधिकार प्रवेश नहीं कर रहा है। वह निमंत्रित है। मालिक ने उसका स्वागत किया। वह भी गीत गाता है, लेकिन उसका गीत पूरी तरह से अलग होता है साधारण कवि से।
उपनिषद ऐसे ही गीत हैं, वेद ऐसे ही गीत हैं- वे आए हैं ऋषियों के हृदयों से। वे कोई साधारण कवि न थे, वे असाधारण कवि थे। असाधारण इस अर्थ में कि उन्होंने अर्जित किया था उस झलक को; वह कोई चुराई हुई चीज न थी। लेकिन ऐसा केवल तभी संभव होता है जब तुम सीख लेते हो कि पूरे प्राणों से सहभागी कैसे होना है- यही है योग। योग का अर्थ है सम्मिलन; योग का अर्थ है विवाह; योग का अर्थ है जोड़। योग का अर्थ हैः फिर से निकट कैसे आना, पृथकता को कैसे मिटा देना, सारी सीमाओं को कैसे विलीन कर देना, उस अवस्था तक कैसे आ जाना जहां ज्ञाता और ज्ञेय एक हो जाएं। यही है योग की खोज।
इन थोड़े से दशकों में विज्ञान और-और सजग हुआ है कि सारा ज्ञान व्यक्तिगत होता है। योग कहता है कि ज्ञान मात्र व्यक्तिगत होता है और जितना ज्यादा व्यक्तिगत होता है, उतना बेहतर होता है। तुम्हें उससे एकात्म हो जाना होगाः तुम्हें फूल हो जाना होगा; तुम्हें चट्टान हो जाना होगा; तुम्हें चांद हो जाना होगा; तुम्हें सागर, रेत हो जाना होगा। तुम जहां कहीं देखो, तुम्हें विषय और विषयी दोनों हो जाना होगा। तुम्हें सम्मिलित होना होगा। तुम्हें सहभागी होना होगा। केवल तभी जीवन पंदित होता है, जीवन अपनी लय के साथ पंदित होता है। तब तुम उस पर कुछ आरोपित नहीं कर रहे होते।
विज्ञान आक्रमण है, कविता चोरी है और धर्म सहभागिता है।
अब हम पतंजलि के इन सूत्रों को समझने की कोशिश करें-
दृश्य, जो कि प्राकृतिक तत्वों से और इंद्रियों से संघटित होता है, उसका स्वभाव होता है- प्रकाश (थिरता), सक्रियता और निष्क्रियता। और द्रष्टा को अनुभव उपलब्ध हो तथा अंततः मुक्ति फलित हो, इस हेतु वह होता है।
पहली बात जो समझने जैसी है वह यह है कि यह संसार इसलिए है ताकि तुम्हें मुक्ति फलित हो सके। बहुत बार यह प्रश्न उठा है तुम मेंः ‘यह संसार क्यों है? इतनी ज्यादा पीड़ा क्यों है? यह सब किसलिए है? इसका प्रयोजन क्या है?’ बहुत से लोग मेरे पास आते हैं और वे कहते हैं, ‘यह मूलभूत प्रश्न है कि हम आखिर हैं ही क्यों? और अगर जीवन इतनी पीड़ा से भरा है, तो प्रयोजन क्या है इसका? यदि परमात्मा है, तो वह इस सारी की सारी अराजकता को मिटा क्यों नहीं देता? क्यों नहीं वह मिटा देता इस सारे दुख भरे जीवन को, इस नरक को? क्यों वह लोगों को विवश किए चला जाता है इस में जीने के लिए?’

योग के पास उत्तर है। पतंजलि कहते हैं, ‘द्रष्टा को अनुभव उपलब्ध हो तथा अंततः मुक्ति फलित हो, इस हेतु यह होता है।’
यह एक प्रशिक्षण है। पीड़ा एक प्रशिक्षण है, क्योंकि बिना पीड़ा के परिपक्व होने की कोई संभावना नहीं। यह आग है, सोने को शुद्ध होने के लिए इसमें से गुजरना ही होगा। यदि सोना कहे, क्यों? तो सोना अशुद्ध और मूल्यहीन ही बना रहता है। केवल आग से गुजरने पर ही वह सब जल जाता है जो कि सोना नहीं होता और केवल शुद्धतम वर्ण बच रहता है। मुक्ति का कुल मतलब इतना ही हैः एक परिपक्वता, इतना चरम विकास कि केवल शुद्धता, केवल निदाक्रषता ही बचती है, और वह सब जो कि व्यर्थ था, जल जाता है।
इसे जानने का कोई और उपाय नहीं है। कोई और उपाय हो भी नहीं सकता इसे जानने का। यदि तुम जानना चाहते हो कि तृप्ति क्या है, तो तुम्हें भूख को जानना ही होगा। यदि तुम बचना चाहते हो भूख से, तो तुम तृप्ति से भी बच जाओगे। यदि तुम जानना चाहते हो कि गहन तृप्ति क्या होती है, तो तुम्हें जानना होगा प्यास को, गहन प्यास को। यदि तुम कहते हो, ‘मैं नहीं चाहता मुझे प्यास लगे”, तो तुम प्यास के बुझने की, उस गहन तृप्ति की सुंदर घड़ी को चूक जाओगे। यदि तुम जानना चाहते हो कि प्रकाश क्या है, तो तुम्हें गुजरना ही पड़ेगा अंधेरी रात से। अंधेरी रात तुम्हें तैयार करती है जानने के लिए कि प्रकाश क्या है। यदि तुम जानना चाहते हो कि जीवन क्या है, तो तुम्हें गुजरना होगा मृत्यु से। मृत्यु तुम में जीवन को जानने की संवेदनशीलता निर्मित करती है।
वे विपरीत नहीं हैं, वे परिपूरक हैं। ऐसा कुछ नहीं है संसार में जो कि विपरीत हो; हर चीज परिपूरक है। ‘यह’ संसार अतित्व रखता है ताकि तुम जान सको ‘उस’ संसार को। ‘इसका’ अतित्व है ‘उसको’ जानने के लिए। भौतिक है आध्यात्मिक को जानने के लिए; नरक है वर्ग तक आने के लिए। यही है प्रयोजन। और यदि तुम एक से बचना चाहते हो तो तुम दोनों से बच जाओगे, क्योंकि वे एक ही चीज के दो पहलू हैं। एक बार तुम इसे समझ लेते हो तो कोई पीड़ा नहीं रहतीः तुम जानते हो कि यह एक प्रशिक्षण है, एक अनुशासन है। अनुशासन कठिन होता है। कठिन होगा ही, क्योंकि केवल तभी उससे सच्ची परिपक्वता आएगी।
योग कहता है कि यह संसार एक ट्रेनिंग कूल की भांति है, एक पाठशाला। इससे बचो मत और इससे भागने की कोशिश मत करो। बल्कि जीओ इसे, और इसे इतनी समग्रता से जीओ कि इसे फिर से जीने को विवश न होना पड़े तुम्हें। यही है अर्थ जब हम कहते हैं कि एक बुद्ध पुरुष कभी वापस नहीं लौटता। कोई जरूरत नहीं रहती। वह गुजर गया जीवन की सभी परीक्षाओं से। उसके लौटने की जरूरत न रही।
तुम्हें फिर-फिर उसी जीवन में लौटने को विवश होना पड़ता है, क्योंकि तुम सीखते नहीं। बिना सीखे ही तुम अनुभव की पुनरुक्ति किए चले जाते हो। तुम फिर-फिर दोहराते रहते हो वही अनुभव- वही क्रोध। कितनी बार, कितने हजारों बार तुम क्रोधित हुए हो? जरा गिनो तो। क्या सीखा तुमने इससे? कुछ भी नहीं। फिर जब कोई स्थिति आ जाएगी तो तुम फिर से क्रोधित हो जाओगे- बिल्कुल उसी तरह जैसे कि तुम्हें पहली बार क्रोध आ रहा हो!
कितनी बार तुम पर कब्जा कर लिया है लोभ ने, कामवासना ने? फिर कब्जा कर लेंगी ये चीजें। और फिर तुम प्रतिक्रिया करोगे उसी पुराने ढंग से- जैसे कि तुमने न सीखने की ठान ही ली हो। और सीखने के लिए राजी होने का अर्थ है योगी होने के लिए राजी होना। यदि तुमने न सीखने का ही तय कर लिया है, यदि तुम आंखों पर पट्टी ही बांधे रखना चाहते हो, यदि तुम फिर-फिर दोहराए जाना चाहते हो उसी नासमझी को, तो तुम वापस फेंक दिए जाओगे। तुम वापस भेज दिए जाओगे उसी कक्षा में जब तक कि तुम उत्तीर्ण न हो जाओ।
जीवन को किसी और ढंग से मत देखना। यह एक विराट पाठशाला है, एकमात्र विश्वविद्यालय है। ‘विश्वविद्यालय’ शब्द आया है ‘विश्व’ से। असल में किसी विश्वविद्यालय को स्वयं को विश्वविद्यालय नहीं कहना चाहिए। यह नाम तो बहुत विराट है। संपूर्ण विश्व ही है एकमात्र विश्वविद्यालय। लेकिन तुमने बना लिए हैं छोटे-छोटे विश्वविद्यालय और तुम सोचते हो कि जब तुम वहां से उत्तीर्ण होते हो तो तुम जान गए सब, जैसे कि तुम बन गए ज्ञानी!

नहीं, ये छोटे-मोटे मनुष्य-निर्मित विश्वविद्यालय न चलेंगे। तुम्हें इस विराट विश्वविद्यालय से जीवन भर गुजरना होगा।
पतंजलि कहते हैं,’ अनुभव उपलब्ध हो तथा अंततः मुक्ति फलित हो।’
अनुभव मुक्ति लाता है। जीसस ने कहा है, ‘सत्य को जान लो और सत्य तुम्हें मुक्त कर देगा।’ जब भी तुम किसी बात को सजग होकर, होशपूर्वक, पूरी तरह ध्यान देते हुए अनुभव करते हो कि क्या घट रहा है- ध्यान दे रहे होते हो और साथ-साथ सहभागी हो रहे होते हो- तो वह अनुभव मुक्तिदायी होता है। तुरंत कोई चीज उमगती है उसमें सेः एक अनुभव, जो सत्य बन जाता है। तुमने उसे शास्त्रों से उधार नहीं लिया होता; तुमने उसे किसी दूसरे से उधार नहीं लिया होता। अनुभव उधार नहीं लिया जा सकता; केवल सिद्धांत उधार लिए जा सकते हैं।
इसीलिए सारे सिद्धांत गंदे होते हैं, क्योंकि वे बहुत से हाथों से गुजरते रहते हैं- लाखों हाथों से। वे गंदे नोटों की भांति होते हैं। अनुभव सदा ताजा होता है- सुबह की ओस जैसा ताजा, सुबह खिले गुलाब की भांति ताजा। अनुभव सदा निर्दोष और कुंआरा होता है, किसी ने कभी छुआ नहीं है उसे। तुम पहली बार उसके सामने आए हो। तुम्हारा अनुभव तुम्हारा है, वह किसी दूसरे का नहीं है, और कोई उसे दे नहीं सकता तुम्हें।
बुद्ध पुरुष मार्ग दिखा सकते हैं, लेकिन चलना तो तुम्हें ही है। कोई बुद्ध पुरुष तुम्हारी जगह नहीं चल सकता है; ऐसी कोई संभावना नहीं है। कोई बुद्ध पुरुष अपनी आंखें तुम्हें नहीं दे सकता कि तुम उनके द्वारा देख सको। और यदि कोई बुद्ध पुरुष तुम्हें आंखें दे भी दे, तो तुम बदल दोगे आंखों को- आंखें तुम्हें न बदल पाएंगी। जब आंखें तुम्हारे ढांचे में बिठाई जाएंगी, तो तुम्हारा ढांचा आंखों को ही बदल देगा, लेकिन आंखें तुम्हें नहीं बदल सकतीं। वे अंश हैं; तुम एक बहुत बड़ी घटना हो।
मैं अपना हाथ तुम्हें उधार नहीं दे सकता। यदि मैं दूं भी, तो पर्श मेरा
न रहेगा, वह तुम्हारा होगा। जब तुम छुओगे और स्पर्श करोगे कुछ- चाहे मेरे हाथ द्वारा ही- तो वह तुम्हीं स्पर्श कर रहे होओगे, मेरा हाथ न होगा। सत्य को उधार पाने की कोई संभावना नहीं है। अनुभव मुक्त करता है।
रोज मुझसे लोग मिलते हैं और कहते हैं, ‘कैसे कोई क्रोध से मुक्त हो? कैसे कोई काम से, वासना से मुक्त हो? कैसे कोई मुक्त हो इससे, कैसे कोई मुक्त हो उससे?’ और जब मैं कहता हूं, ‘इसे जीओ’, तो उन्हें धक्का लगता है। वे मेरे पास आए थे उन बातों का दमन करने की किसी विधि की खोज में। और यदि वे भारत में किसी दूसरे गुरु के पास गए होते तो उन्हें अपना दमन करने के लिए कोई न कोई विधि मिल गई होती। लेकिन दमन कभी मुक्ति नहीं बन सकता, क्योंकि दमन का अर्थ है अनुभव से बचना। दमन का अर्थ है अनुभव की तमाम जड़ों को ही काट देना। दमन कभी भी मुक्ति नहीं बन सकता। दमन सब से बड़ा बंधन है जो तुम कहीं पा सकते हो। तुम जीते हो एक पिंजरे में।
अभी एक दिन एक नए संन्यासी ने मुझसे कहा, ‘मैं पिंजरे में बंद जानवर जैसा अनुभव करता हूं।’ इसकी पूरी संभावना है कि उसका मतलब यही था कि वह चाहता था कि मैं उसकी मदद करूं ताकि जानवर मर जाए, क्योंकि हम ‘जानवर’ तभी कहते हैं जब हम निंदा करते हैं। वह शब्द ही निंदित है। लेकिन जब मैंने संन्यासी से कहा, ‘हां, मैं तुम्हारी मदद करूंगा। मैं तोड़ दूंगा पिंजरा और पूरी तरह स्वतंत्र कर दूंगा जानवर को,’ तो उसे थोड़ा धक्का लगा; क्योंकि जब तुम कहते हो जानवर, तो तुमने उसकी निंदा, उसका मूल्यांकन कर ही दिया होता है। यह कोई महज तथ्य नहीं है। पशु या पशुता शब्द में ही तुमने वह सब कुछ कह दिया जो तुम कहना चाहते थे। तुम उसे स्वीकार नहीं करते। तुम उसे जीना नहीं चाहते।
इसीलिए तुमने पिंजरा बना लिया है। वह पिंजरा है- चरित्र। सारे चरित्र पिंजरे हैं, कारागृह हैं, तुम्हारे चारों ओर बंधी जंजीरें हैं। और चरित्र वाला आदमी कैदी आदमी है। वास्तविक रूप से जागा हुआ व्यक्ति चरित्र वाला व्यक्ति नहीं होता है। वह जीवंत होता है। वह पूरी तरह जागा हुआ होता है, लेकिन उसका कोई चरित्र नहीं होता, क्योंकि उसके आस-पास कोई पिंजरा नहीं

होता। वह सहजफूर्त भाव से जीता है। वह जागा हुआ जीता है इसलिए कोई गलती नहीं हो सकती, लेकिन उसकी सुरक्षा के लिए कोई पिंजरा नहीं होता आस-पास। पिंजरा सजगता का झूठा विकल्प है। यदि तुम सोए-सोए जीना चाहते हो तो तुम्हें चरित्र की जरूरत है, ताकि चरित्र तुम्हें मार्ग-निर्देश दे सके। तब तुम्हें सजग रहने की जरूरत नहीं होती। जैसे, तुम कोई चीज चुराने ही वाले हो- कि चरित्र एकदम रोक देता है तुम्हेंः वह कहता है, ‘नहीं! यह गलत है! यह पाप है! तुम सड़ोगे नरक में! क्या तुम भूल गए सारी बाइबिल? क्या तुम भूल गए सभी दंड जिन्हें भुगतना पड़ता है आदमी को?’ यह है चरित्र। यह रोक देता है तुम्हें। तुम चोरी करना चाहते हो, चरित्र एक रुकावट बन जाता है। सजग व्यक्ति भी चोरी नहीं करेगा, लेकिन यह उसका चरित्र नहीं है; और यही है चमत्कार और सौंदर्य। उसके पास कोई चरित्र नहीं है और फिर भी वह चोरी नहीं करेगा, क्योंकि उसके पास बोध है। ऐसा नहीं है कि वह भयभीत है पाप से- पाप जैसा कुछ है ही नहीं। ज्यादा से ज्यादा कह सकते हो कि गलतियां हैं। पाप जैसा तो कुछ है ही नहीं। वह दंड से भयभीत नहीं है, क्योंकि दंड कहीं भविष्य में नहीं मिलता। ऐसा नहीं है कि पापों के लिए दंड मिलता है। असल में पाप ही दंड है।
ऐसा नहीं है कि तुम आज क्रोधित होते हो और दंड तुम्हें कल मिलेगा या अगले जन्म में मिलेगा- कोरी बकवास है यह सब। तुम अपना हाथ आग में अभी डालते हो, तो क्या सोचते हो कि वह अगले जन्म में जलेगा? जब तुम अपना हाथ आग में डालते हो, तो वह अभी जलता है; वह तत्क्षण जलता है। हाथ का वहां रखा जाना और उसका जल जाना साथ-साथ घटता है। एक क्षण का भी अंतराल नहीं होता। जीवन का भविष्य में कोई विश्वास नहीं, क्योंकि जीवन केवल वर्तमान में है।
ऐसा नहीं है कि पापों की सजा भविष्य में मिलेगी, पाप ही सजा हैं। सजा अंतअनहित हैः तुम चोरी करते हो और तुम्हें सजा मिल जाती है। उस चोरी करने में ही तुम सजा पाते हो- क्योंकि तुम ज्यादा बंद हो जाते होः तुम ज्यादा भयभीत हो जाओगे; तुम संसार का सामना न कर पाओगे। निरंतर तुम एक अपराध-भाव अनुभव करोगे, कि तुमने कुछ गलत किया है, किसी भी घड़ी तुम पकड़े जा सकते हो। तुम पकड़े ही गए हो! हो सकता है कभी किसी ने तुम्हें पकड़ा न हो और किसी न्यायालय ने तुम्हें कभी सजा न दी हो- और कहीं कोई पारलौकिक न्यायालय नहीं है- लेकिन फिर भी तुम पकड़े गए हो। तुम स्वयं के द्वारा ही पकड़े गए हो। इसे कैसे भूल पाओगे तुम? कैसे तुम क्षमा करोगे स्वयं को? कैसे तुम उस बात को अनकिया कर दोगे जिसे कि तुमने किया है? वह तुम्हारे चारों ओर छाई रहेगी। यह बात छाया की भांति तुम्हारा पीछा करेगी। किसी प्रेत की भांति यह तुम्हारे पीछे पड़ी रहेगी। यह स्वयं ही एक सजा है।
तो चरित्र तुम्हें गलत बातें करने से रोकता है, लेकिन वह तुम्हें उनके बारे में सोचने से नहीं रोक सकता। लेकिन चोरी करना या उसके बारे में सोचना एक ही बात है। सचमुच हत्या कर देना और उसके बारे में सोचना एक ही बात है। क्योंकि जहां तक तुम्हारी चेतना का प्रश्न है तुमने वह बात कर ही दी है- यदि तुमने उसके बारे में सोचा है। वह कृत्य न बनी क्योंकि चरित्र ने तुम्हें रोक लिया; यदि चरित्र वहां न होता तो वह बात कृत्य बन गई होती।
तो असल में चरित्र ज्यादा से ज्यादा यही करता हैः वह रोक लगा देता है विचार पर; वह उसे कृत्य में नहीं बदलने देता। यह समाज के लिए ठीक है, लेकिन तुम्हारे लिए जरा भी ठीक नहीं है। यह समाज की सुरक्षा करता है; तुम्हारा चरित्र समाज की सुरक्षा करता है। तुम्हारा चरित्र दूसरों की सुरक्षा करता है, बस इतना ही। इसीलिए प्रत्येक समाज जोर देता है चरित्र पर, नैतिकता पर, ऐसी ही चीजों पर; लेकिन वह तुम्हारी सुरक्षा नहीं करता। तुम्हारी सुरक्षा केवल होश में हो सकती है। और यह होश कैसे पाया जाता है? दूसरा कोई राता नहीं सिवाय इसके कि जीवन को उसकी समग्रता में जीया जाए।
”द्रष्टा को अनुभव उपलब्ध हो तथा अंततः मुक्ति फलित हो, इस हेतु यह होता है।’
”दृश्य, जो कि प्राकृतिक तत्वों से और इंद्रियों से संघटित होता है, उसका स्वभाव होता है।’

तीन गुण। योग तीन गुणों में विश्वास करता हैः सत्व, रजस, तमस। सत्व वह गुण है जो चीजों को थिर बनाता है; रजस वह गुण है जो सक्रियता देता है; और तमस का गुणधर्म है अक्रिया। ये तीन आधारभूत गुण हैं। इन तीनों के द्वारा यह सारा संसार अतित्व में है। यह है योग की त्रिमूर्ति।
अब भौतिकशास्त्री भी योग के साथ राजी होने को तैयार हो गए हैं। उन्होंने परमाणु को तोड़ लिया है और उन्हें पता चला है तीन चीजों काः इलेक्ट्रान, न्यूट्रान, प्रोट्रान। ये तीनों वही तीन गुण हैंः एक की गुणवत्ता है प्रकाश की- सत्व, थिरता; दूसरे की गुणवत्ता है रजस की- क्रिया, ऊर्जा, शक्ति; और तीसरे की गुणवत्ता है अक्रिया की- तमस। सारा संसार बना है इन तीन गुणों से; और इन तीन गुणों से गुजरना पड़ता है सजग व्यक्ति को। उसे अनुभव लेना होता है इन तीनों गुणों का। और यदि तुम उनको एक लयबद्धता में अनुभव करते हो, जो कि वास्तविक अनुशासन है योग का।
हर कोई इन्हें अनुभव करता हैः कई बार तुम आलय अनुभव करते हो, कई बार तुम ऊर्जा से भरा हुआ अनुभव करते हो; कई बार तुम अच्छा और हलका अनुभव करते हो, और कई बार तुम अशुभ और बुरा अनुभव करते हो; कई बार तुम अंधकार होते हो और कई बार तुम सुबह का उजाला होते हो। तुम्हें प्रतीति होती है इन तीनों गुणों की। उनकी घड़ियां निरंतर आती रहती हैं; तुम एक चक्र में घूमते रहते हो; लेकिन वे अनुपात में नहीं होते।
एक आलसी आदमी नब्बे प्रतिशत आलसी होता है। वह सक्रिय भी होता है- उसे होना ही पड़ेगा, क्योंकि आलय का जीवन जीने के लिए भी उसे थोड़ा काम तो करना होगा। उसकी सारी सक्रियता बस इतनी ही होती है- उसकी निष्क्रियता को सहारा देने के लिए। और उसे लोगों के साथ थोड़ा भला भी रहना पड़ता है, अन्यथा तो लोग बहुत ही बुरी तरह पेश आएंगे उसके साथ। लोग बरदाश्त नहीं करेंगे उसकी निष्क्रियता को।
क्या तुमने ध्यान दिया? जो लोग बहुत सक्रिय नहीं होते उदाहरण के लिए, बहुत मोटे लोग सदा मुस्कुराते रहते हैं। यह बात उनके लिए एक रक्षा-कवच होती है। वे जानते हैं कि वे लड़ नहीं सकते। वे जानते हैं कि यदि लड़ाई हो जाए तो वे बच कर भाग नहीं सकते, दौड़ नहीं सकते। तुम बहुत मोटे लोगों को सदा मुस्कुराते हुए देखते हो- प्रसन्न! कारण क्या है? क्यों पतले व्यक्ति दुखी मालूम पड़ते हैं, और क्यों मोटे व्यक्ति कभी बहुत दुखी नहीं मालूम पड़ते, सदा प्रसन्न दिखते हैं?
मनविद और शरीर-शास्त्री कहते हैं कि यह बात मोटे व्यक्ति के लिए एक सुरक्षा है, क्योंकि जीवन-संघर्ष में उनके लिए सदा लड़ने की भाव-दशा में रहना बहुत कठिन होगा, जिसमें कि दुबले-पतले लोग सदा ही रहते हैं। वे लड़ सकते हैं- यदि दूसरा आदमी कमजोर है तो वे पीट देंगे उसे; यदि दूसरा आदमी शक्तिशाली है तो वे बच कर भाग निकलेंगे। वे दोनों बातें कर सकते हैं, और मोटा आदमी इन दोनों में से कुछ भी नहीं कर सकता, तो वह मुकुराता रहता है; वह हर किसी के साथ अच्छा बना रहता है। यह उसकी सुरक्षा है, ताकि दूसरे उसके साथ अच्छा व्यवहार करें।
आलसी व्यक्ति सदा भले होते हैं। उन्होंने कभी कोई पाप नहीं किया, क्योंकि पाप करने के लिए भी व्यक्ति को थोड़ा सक्रिय होना पड़ता है। तुम किसी आलसी आदमी को हिटलर नहीं बना सकते; असंभव है। तुम किसी आलसी आदमी को नेपोलियन या सिकंदर नहीं बना सकते। यह असंभव है। आलसी आदमियों ने कोई बड़ा पाप नहीं किया है; वे कर नहीं सकते। एक तरह से वे बहुत भले लोग होते हैं, क्योंकि पाप करने के लिए भी उन्हें सक्रिय होना होगा- वह बात उनके अनुकूल नहीं पड़ती।
फिर सक्रिय व्यक्ति हैं, असंतुलित; वे सदा कुछ न कुछ करते रहते हैं। उन्हें कहीं पहुंचने की कोई चिंता नहीं होती; उन्हें केवल यही चिंता होती है कि तेजी से चलते रहें। उन्हें बिल्कुल चिंता नहीं होती कि वे कहीं पहुंच रहे हैं या नहीं- इसका कोई सवाल ही नहीं है। यदि वे तेजी से चल रहे हैं तो फिर ठीक है। मत पूछना कि ‘कहां जा रहे हो तुम?’ वे कहीं नहीं जा रहे हैं; वे तो बस जा रहे हैं। उनका कोई लक्ष्य नहीं है। उनके पास केवल ऊर्जा है कुछ न कुछ करते रहने के लिए। ये लोग संसार के खतरनाक लोग हैं- आलसी

लोगों से ज्यादा खतरनाक। इस दूसरी श्रेणी से ही आए हैं सारे एडोल्फ हिटलर, मुसोलिनी, नेपोलियन, सिकंदर। सारे उपद्रवी आते हैं इस दूसरी श्रेणी से, क्योंकि उनके पास ऊर्जा होती है- एक बेचैन ऊर्जा।
फिर तीसरी तरह के लोग हैं, जिन्हें ढूंढ़ निकालना दुर्लभ हैः कहीं कोई लाओत्सु बैठा होता है मौन- अकर्मण्य नहीं- निश्चेशट। न सक्रिय, न अकर्मण्य- निष्क्रिय; ऊर्जा से भरा-पूरा, एक ऊर्जा-कुंड, लेकिन मौन बैठा हुआ। क्या तुमने ध्यान से देखा है किसी को शांत-मौन बैठे हुए, ऊर्जा से आपूरित? तुम एक आभामंडल अनुभव करते हो उसके चारों ओर, जीवंतता से दीप्तिमान, लेकिन फिर भी शांत- कुछ न करते हुए, मात्र होने में थिर।
और योग है इन तीनों के बीच संतुलन पा लेना। यदि तुम इन तीनों के बीच संतुलन पा लो तो अचानक तुम इनके पार चले जाते हो। यदि कोई एक गुण ज्यादा होता है बाकी दो गुणों से तो वही तुम्हारी समया बन जाता है। यदि तुम सक्रिय कम और आलसी ज्यादा हो तो आलय तुम्हारी समया बन जाएगाः तुम उसके द्वारा पीड़ा पाओगे। यदि सक्रियता ज्यादा है आलय से तो तुम अपनी सक्रियता द्वारा दुख पाओगे। और तीसरा कभी ज्यादा नहीं होता, वह सदा कम ही होता है; लेकिन यदि यह सिद्धांततः संभव भी हो- कि कोई जरूरत से ज्यादा अच्छा हो- तो यह बात भी एक दुख बन जाएगी उसके लिए, यह भी एक असंतुलन निर्मित करेगी। एक सम्यक जीवन संतुलन का जीवन होता है।
बुद्ध के पास आठ सिद्धांत हैं अपने शिशयों के लिए। प्रत्येक सिद्धांत के आगे वे जोड़ देते हैं एक शब्द- सम्यक। यदि वे कहते हैं ‘होशपूर्ण होओ’ तो केवल ‘स्मृति’ नहीं कहते; वे कहते हैं, ‘सम्यक स्मृति”। अंग्रेजी में सदा इसका अनुवाद किया जाता रहा है ‘राइट मेमोरी”। यदि वे कहते ‘श्रम”, तो वे सदा यही कहते, ‘सम्यक श्रम”। ‘सम्यक’ का अर्थ है संतुलन। ‘सम्यक’ का अर्थ है समता। समाधि के लिए भी, ध्यान के लिए भी बुद्ध कहते हैं, ‘सम्यक समाधि”। समाधि भी अति हो सकती है, और तब यह खतरनाक हो जाएगी। अच्छाई भी अति हो सकती है, और तब यह खतरनाक हो जाएगी।
समता मुख्य तत्व होना चाहिए। जो कुछ भी करो, तुम सदा संतुलित रहना रसी पर चलते आदमी की भांति, निरंतर संतुलन बनाए रखना। यही है सम्यकत्व, संतुलन का तत्व। वह व्यक्ति जो परम मिलन को, परम योग को उपलब्ध होना चाहता है, उसे गहन संतुलन में रहना होता है। संतुलन में तुम तीनों गुणों के पार चले जाते हो। तुम गुणातीत हो जाते होः तुम इन तीनों गुणों का अतिक्रमण कर जाते हो। तुम अब इस संसार के हिसे नहीं रहते; तुम इसके पार चले जाते हो।
ये तीन गुण- प्रकाश (थिरता), सक्रियता और निष्क्रियता- इनकी चार अवस्थाएं हैंः निश्चित, अनिश्चित, सांकेतिक और अव्यक्त।
इन तीनों गुणों की चार अवस्थाएं हैं। पहली को पतंजलि कहते हैं, निश्चित। तुम इसे पदार्थ कह सकते हो; यह तुम्हारे आस-पास की सर्वाधिक निश्चित चीज है। फिर है अनिश्चित; तुम इसे मन कह सकते हो; वह भी वहां है, निरंतर तुम्हें उसकी अनुभूति होती है, फिर भी वह एक अनिश्चित तत्व है। तुम निश्चित नहीं कह सकते कि मन क्या है। तुम जानते हो उसे, तुम निरंतर जीते हो उसे, लेकिन तुम उसे परिभाषित नहीं कर सकते। पदार्थ को परिभाषित किया जा सकता है लेकिन मन को नहीं। और फिर है ‘सांकेतिक”। अनिश्चित से भी ज्यादा सूक्ष्म है सांकेतिकः यह है आत्मा। तुम केवल संकेत दे सकते हो उसका। तुम यह भी नहीं कह सकते कि वह अपरिभाषित है। यह भी सूक्ष्म ढंग से उसे परिभाषित करना ही हुआ, क्योंकि यह बात भी एक परिभाषा हो जाती है। यह कहना कि कोई चीज अपरिभाषित है- तुमने परोक्ष रूप से उसे परिभाषित कर ही दिया; तुमने कुछ कह ही दिया उसके बारे में। तो यही है अतित्व की सूक्ष्म पर्त जो आत्मा है, जो सांकेतिक है। और फिर इसके पार है सूक्ष्मतम, जो है ‘अव्यक्त”- असांकेतिक- जो अनात्मा है।
तो पदार्थ, मन, आत्मा, अनात्मा- ये चार अवस्थाएं हैं इन तीन गुणों की।
यदि तुम गहन आलय में हो तो तुम पदार्थ की भांति ही हो। आलय से भरा आदमी करीब-करीब पदार्थ होता है, जड़ जीवन होता है उसका; तुम उसे जीवंत नहीं देखते। फिर है दूसरा गुण- मन। यदि रजस गुण बहुत ज्यादा हो, तो तुम मन से बहुत ज्यादा भर जाते हो। तब तुम बहुत ज्यादा सक्रिय होते हो- मन निरंतर

सक्रिय रहता है, क्रिया से घिरा रहता है, निरंतर नई-नई व्यतताओं की खोज में रहता है।
एवरेट की चोटी पर पहुंचने वाले पहले आदमी एडमंड हिलेरी से किसी ने पूछा, ‘क्यों? आखिर क्यों आपने इतना खतरा उठाया?’ वह कहने लगा, ‘क्योंकि एवरेट मौजूद था, तो आदमी को चढ़ना ही था।’ वहां कुछ है नहीं। चांद पर क्यों जा रहा है आदमी? क्योंकि चांद है। कैसे तुम बच सकते हो उससे? तुम्हें जाना ही है। सक्रियता से भरा आदमी निरंतर काम की खोज में रहता है। वह बिना काम के नहीं रह सकता। यह उसकी समया है। बिना काम के वह नरक में होता है; काम में तल्लीन होकर वह भूल जाता है स्वयं को।
यदि तमस, अक्रिया बहुत हो, तो तुम पदार्थ की भांति हो जाते हो। यदि रजस बहुत हो तो तुम मन हो जाते होः मन है सक्रियता। इसीलिए मन पागल हो जाता है। फिर यदि सत्व बहुत ज्यादा हो जाए तो तुम आत्मा हो जाते हो। लेकिन वह भी एक असंतुलन है। यदि ये तीनों ही संतुलन में हों तो फिर आती है चौथी बातः अनात्मा। वही है तुम्हारा वास्तविक अतित्व जहां ‘मैं’ की अनुभूति भी अतित्व नहीं रखती! इसीलिए इसे ‘अनात्मा’ कहा गया है।
ये हैं चार अवस्थाएं- तीन हैं असंतुलन की और चौथी है संतुलन की। पहली निश्चित है, दूसरी अनिश्चित है, तीसरी सांकेतिक है, चौथी सांकेतिक भी नहीं, अव्यक्त है। और यही चौथी सब से अधिक वास्तविक है। पहली सब से अधिक वास्तविक मालूम पड़ती है क्योंकि तुम जीते हो पहली में। दूसरी बहुत निकट मालूम पड़ती है क्योंकि तुम जीते हो मन में। तीसरी थोड़ी दूर मालूम पड़ती है, लेकिन तुम समझ सकते हो उसे। चौथी तो बिल्कुल अविश्वसनीय मालूम पड़ती है- अनात्मा? ब्रह्म कहो, या परमात्मा, या तुम जो भी नाम दे दो इसे, बहुत दूर मालूम पड़ता है, करीब-करीब असंभव मालूम पड़ता है; और जो सबसे ज्यादा सच है। द्रष्टा यद्यपि शुद्ध चेतना है, फिर भी मन की विकृतियों के माध्यम से वह देखा करता है।
और वह चौथी अवस्था, चाहे तुम उसे उपलब्ध भी हो जाओ- जब तक तुम देह में हो तब तक तुम्हें अपने अतित्व की सभी पतां का उपयोग करना होगा। बुद्ध भी जब तुम से बात करते हैं तो उन्हें मन के द्वारा ही बात करनी पड़ती है। बुद्ध भी जब चलते हैं तो उन्हें शरीर के द्वारा चलना पड़ता है। लेकिन अब, जब एक बार तुम जान लेते हो कि तुम मन के पार हो, तो मन तुम्हें कभी धोखा नहीं दे सकता। तुम उसका उपयोग कर सकते हो और तुम उसके द्वारा कभी उपयोग नहीं किए जाते। यही अंतर होता है। ऐसा नहीं है कि बुद्ध मन का उपयोग नहीं करते, वे करते हैं। वे मन का उपयोग करते हैं; मन तुम्हारा उपयोग करता है। ऐसा नहीं है कि वे देह में नहीं जीते हैं, वे जीते हैं। तुम घसिटते हो- देह मालिक होती है और तुम गुलाम होते हो। बुद्ध होते हैं मालिक; देह होती है गुलाम। एक समग्र क्रांति, एक समग्र रूपांतरण घटित होता है- जो ऊपर होता है वह नीचे चला जाता है और जो नीचे होता है वह ऊपर आ जाता है।
दृश्य का अतित्व होता है मात्र द्रष्टा के लिए।
यह योग का या वेदांत का चरम शिखर हैः ‘दृश्य का अतित्व होता है मात्र द्रष्टा के लिए।’ जब द्रष्टा खो जाता है, तो दृश्य भी खो जाता है, क्योंकि वह तो केवल द्रष्टा के मुक्त होने के लिए ही था। जब मुक्ति घट जाती है तो उसकी आवश्यकता नहीं रहती।
यह बात बहुत से प्रश्न उठा देगी। क्योंकि बुद्ध पुरुष- उनके लिए दृश्य तिरोहित हो चुका है, लेकिन तुम्हारे लिए वह अभी भी है। एक फूल है, तुम में से कोई बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाता हैः उसके लिए वह फूल तिरोहित हो चुका, लेकिन तुम्हारे लिए वह अभी भी है। तो यह कैसे संभव है कि किसी के लिए वह तिरोहित हो जाता है और तुम्हारे लिए वह बना रहता है?
यह बिल्कुल ऐसा ही हैः रात तुम सभी सो जाते हो, तुम सभी स्वप्न देखने लगते हो; फिर एक आदमी जाग जाता है- उसकी नींद टूट जाती है, उसका स्वप्न खो जाता है- लेकिन बाकी सभी के स्वप्न जारी रहते हैं। उसके स्वप्न के तिरोहित होने की घटना तुम्हारे स्वप्नों के टूटने में किसी प्रकार से मदद नहीं करती; वे चलते रहते हैं। इसीलिए बुद्धत्व व्यक्तिगत होता है। एक व्यक्ति जाग जाता है; बाकी सब अपने-अपने अज्ञान में जीए जाते हैं। वह दूसरों की मदद

कर सकता है जाग जाने में। अपनी नींद से तुम बाहर आ सको उसके लिए मदद के उपाय वह तुम्हारे चारों ओर निर्मित कर सकता है, लेकिन जब तक तुम अपनी नींद से बाहर नहीं आ जाते तब तक तुम्हारे स्वप्न बने रहेंगे।
”दृश्य का अस्तित्व होता है मात्र द्रष्टा के लिए।
यद्यपि दृश्य उसके लिए मृत हो जाता है जिसने मुक्ति पा ली है, फिर भी बाकी दूसरों के लिए यह जीवित रहता है, क्योंकि यह सर्वनिष्ठ होता है। ’ भारत में हमने स्वप्न और तुम्हारी तथाकथित वास्तविकता के बीच केवल एक भेद किया है, और यह है वह भेदः कि स्वप्न निजी वास्तविकता हैं और यह वास्तविकता जिसे कि तुम संसार कहते हो एक सार्वजनिक स्वप्न है, बस इतना ही। जब तुम स्वप्न देखते हो तो तुम निजी संसार के स्वप्न देखते हो। रात में तुम निजी संसार को जीते हो; तुम किसी और को नहीं बुला सकते अपने स्वप्न में साझीदार होने के लिए। तुम्हारा निकटतम मित्र या तुम्हारी पत्नी या तुम्हारी प्रेयसी भी बहुत दूर होते हैं। जब तुम स्वप्न देख रहे होते हो तो तुम अकेले ही स्वप्न देख रहे होते हो। तुम किसी को नहीं ले जा सकते वहां; वह एक निजी संसार है। तो फिर यह संसार क्या है? क्योंकि भारत में हम ने इस संसार को भी स्वप्नवत कहा है। यह एक सामूहिक स्वप्न है। हम सब एक साथ स्वप्न देखते हैं, क्योंकि हमारे मन एक ही ढंग से काम करते हैं।
कभी नदी पर जाओ। अपने साथ एक सीधी छड़ी ले जाना। तुम जानते हो कि छड़ी सीधी है। उसे डुबाना नदी मेंः तत्क्षण तुम देखोगे कि वह टेढ़ी हो गई है, मुड़ गई है। बाहर निकालना उसे; तुम देखते हो कि वह सीधी ही है।

अध्याय-10
जीवन के विभिन्न आयामों पर ओशो का नजरिया

प्रेमः
यह प्रेम कोई बंधन नहीं निर्मित कर सकता। और यह प्रेम ही हृदय को सम्पूर्ण आकाश के प्रति, सारी हवाओं के प्रति खोल देना है।
ईर्ष्या बहुत जटिल है। उसमें कई उपादान सम्मिलित हैं। कायरता उनमें से एक है; अहंकारी ढंग दूसरा है; एकाधिकारत्व की आकांक्षा- प्रेम की अनुभूति नहीं बल्कि पकड़ की; प्रतिस्पर्धात्मक प्रवृत्ति; हीन होने का एक गहरे में बैठा भय।
बहुत सारी बातें ईर्ष्या में सम्मिलित हैं।
खतरे मोल लेना असली मनुष्य के मूल आधारों में से एक होना चाहिये।
जिस पल तुम देखो कि चीजें स्थिर होने लगीं, उन्हें बिखरा दो।

प्रेम की जडे़ं
हमने कभी प्रेम की जड़ों की फिक्र नहीं की, और हमने फूलों के संबंध में ही बातें की हैं। हम लोगों को अहिंसक होने के लिए, करुणावान होने के लिए, प्रेमपूर्ण होने के लिए कहते हैं- इतने ज्यादा कि तुम अपने शत्रु को प्रेम कर सको, इतने ज्यादा कि तुम अपने पड़ोसियों को भी प्रेम कर सको।
हम फूलों के बारे में बातें करते हैं, लेकिन जड़ों में किसी का रस नहीं है।
सवाल यह है कि हम प्रेमपूर्ण प्राणी क्यों नहीं हैं? यह इस व्यक्ति को, उस व्यक्ति को, मित्र को, शत्रु को प्रेम करने का सवाल नहीं है; सवाल यह है कि तुम प्रेमपूर्ण हो या नहीं?
क्या तुम अपने ही शरीर को प्रेम करते हो? क्या तुमने अपने ही शरीर को कभी प्रेमपूर्ण दुलार से छूने की फिक्र की है? क्या तुम स्वयं को प्रेम करते हो?
तुम गलत हो, और तुम्हें स्वयं को ठीक करना है! तुम पापी हो, और तुम्हें पुण्यात्मा होना है! तुम स्वयं को प्रेम कैसे कर सकते हो?- तुम स्वयं को स्वीकार तक नहीं कर सकते। और ये जड़ें हैं।

प्लास्टिक के फूल स्थार्यी होते हैं- प्लास्टिक (नकली)-प्रेम स्थार्यी होगा। असली फूल स्थायी नहीं है; वह क्षण-क्षण बदल रहा है। आज वह है, हवाओं में और धूप में, और वर्षा में नाचता हुआ। कल वह तुम्हें खोजे न मिलेगा। वह उतने ही रहस्यमय ढंग से विदा हो गया है जितने रहस्यमय ढंग से प्रगट हुआ था।
असली प्रेम असली फूल जैसा है।

प्रेम है स्वतंत्रता
वास्तविकता यह है कि हम अकेले हैं, हम अजनबी हैं- और दुनिया कहीं ज्यादा सुंदर होगी यदि हम इसे स्वीकार करें, इस मूलभूत सत्य को कि हम अजनबी हैं।
और एक अजनबी के साथ प्रेम में पड़ने में बुराई क्या है? इस बात की जरूरत क्या है कि किसी अजनबी के प्रेम में पड़ने से पहले अजनबीपन खत्म होना चाहिये?
यह जीवन के सौंदयों में से एक है कि हम सब के सब अजनबी हैं और इस असलियत को बदलने का कोई उपाय नहीं है। यह सुंदर है कि अजनबी तुम्हें प्रेम कर रहे हों, अजनबी तुम्हारे मित्र हों, सारी दुनिया अजनबियों से भरी हो। तब पूरी दुनिया एक रहस्य बन जाती है- और रहस्य वह है।
यह एक जाना-माना तथ्य है। तुम किसी पुरुष के प्रेम में पड़़ती हो; तुम वास्तविक व्यक्ति के प्रेम में नहीं पड़ती हो, तुम अपनी कल्पनाओं के पुरुष के प्रेम में पड़ती हो। जब तुम साथ-साथ नहीं हो, और तुम उस व्यक्ति को अपनी बाल्कनी से देखती हो, या उसे समुद्र तट पर कुछ मिनटों के लिये मिलती हो, या सिनेमागृह में एक दूसरे का हाथ थामे हुए हो, तो तुम्हें लगने लगता है, ‘हम एक-दूसरे के लिये ही बने हैं।’
लेकिन कोई एक-दूसरे के लिये नहीं बना है। अचेतन रूप से, तुम उस व्यक्ति पर और-और अधिक कल्पनाओं को प्रक्षेपित करती चली जाती हो। तुम उस व्यक्ति के आसपास एक प्रकार का आभामंडल खड़ा कर लेती हो, वह तुम्हारे आसपास एक आभामंडल खड़ा कर लेता है। प्रतीत होता है, क्योंकि तुम उसे सुंदर बना रही हो, तुम सपना खड़ा कर रही हो और यथार्थ को टाल रही हो। तुम दोनों ही हर संभव ढंग से कोशिश करते हो कि दूसरे की कल्पनाओं को बाधा न पहुंचे।
तो स्त्री वैसा व्यवहार कर रही है, जैसा पुरुष चाहता है कि वह करे; पुरुष वैसा व्यवहार कर रहा है, जैसा स्त्री चाहती है कि वह करे। लेकिन ऐसा तुम कुछ मिनटों के लिये या कुछ घंटों के लिये ही कर सकते हो। एक बार तुम विवाह कर लो और तुम्हें चौबीस घंटे साथ-साथ रहना पड़े, तो जो तुम नहीं हो वह होने का नाटक करना भारी बोझ बन जाता है।
केवल पुरुष की या स्त्री की कल्पना पूरा करने के लिये कब तक तुम अभिनय कर सकते हो? देर-अबेर यह बोझ बन जाता है और तुम बदला लेना शुरू करते हो। तुम उन सारी कल्पनाओं को तोड़ने लगती हो जो पुरुष ने तुम्हारे चारों और निर्मित कर ली थीं क्योंकि तुम उनमें कैद नहीं होना चाहती; तुम स्वतंत्र होना चाहती हो और जैसी हो वैसी होना चाहती हो।
और यही स्थिति पुरुष की हैः वह स्वतंत्र होना चाहता है और केवल स्वयं जैसा होना चाहता है और यही सारे प्रमियों सारे संबंधों के बीच की सतत कलह है।
प्रेम स्वतंत्रता देता है। प्रेम उसकी स्वतंत्रता देता है जो दूसरे को करने जैसा लगता है। जो भी उसे करने जैसा लगता है- यदि वह उसे आनंदित करता है, तो यह उसका चुनाव है।
यदि तुम उस व्यक्ति को प्रेम करते हो, तुम उसकी निजता में हस्तक्षेप नहीं करोगे। तुम उस व्यक्ति को अबाधित रहने दोगे। तुम उसके आंतरिक अस्तित्त्व में अतिक्रमण नहीं करोगे।

बेशर्त प्रेम
प्रेम की यह मूलभूत जरूरत है कि, ‘मैं दूसरे व्यक्ति को जैसा वह है वैसा ही स्वीकार करता हूं।’ और प्रेम कभी भी व्यक्ति को अपने ख्यालों के अनुरूप

ढालने की कोशिश नहीं करता। तुम व्यक्ति को नाप-तौल का बनाने के लिये काटते-छांटते नहीं- जो कि सारी दुनियां में सब और किया जा रहा है... ।
यदि तुम प्रेम करते हो, तो कोई शर्त नहीं लगायी जानी हैं।
यदि तुम प्रेम नहीं करते हो, तो तुम शर्त लगाने वाले होते कौन हो?
दोनों ढंग से बात स्पष्ट है। यदि तुम प्रेम करते हो तो शर्तों का कोई सवाल ही नहीं है। तुम उसे जैसा वह है वैसा ही प्रेम करते हो। यदि तुम प्रेम नहीं करते हो, तब भी कोई समस्या नहीं। वह तुम्हारा कोई नहीं; शर्त रखने का कोई प्रश्न ही नहीं। वह जो कुछ भी करना चाहता है, कर सकता है।
यदि ईर्ष्या खतम हो जाये और फिर भी प्रेम बचे, तभी तुम्हारे जीवन में कुछ अर्थपूर्ण है जो बचाने योग्य है।
जीयो और प्रेम करो, और पूर्णता से, पूरी त्वरा से प्रेम करो लेकिन कभी भी स्वतंत्रता के खिलाफ नहीं।
स्वतंत्रता आत्यांतिक मूल्य रहना चाहिए।
हमें लगातार सिखाया गया है कि प्रेम एक संबंध है, तो वही धारणा हमारी आदत बन गई है। लेकिन यह सच नहीं है। वह निम्नतम प्रकार का है- बड़ा प्रदूषित।
प्रेम तो हमारे होने का ढंग है।

प्रेम और आसक्ति
इस धारणा को छोड़ दो कि आसक्ति और प्रेम एक बात है। वे एक-दूसरे के शत्रु हैं। यह आसक्ति है जो समस्त प्रेम को नष्ट करती है।
यदि तुम आसक्ति को बढ़ावा दो, पोषण दो, तो प्रेम नष्ट हो जायेगा; यदि तुम प्रेम को बढ़ावा दो, पोषण दो तो आसक्ति अपने-आप गिर जायेगी।
प्रेम और आसक्ति एक नहीं हैं; वे दो अलग-अलग सत्ताएं हैं, और एक-दूसरे की विरोधी।

प्रेम मांगो मत- दो
प्रेम देना सुंदर और वास्तविक अनुभव है, क्योंकि तब तुम एक सम्राट हो। प्रेम पाना एक बहुत छोटा अनुभव है, और वह भिखारी का अनुभव है।
भिखारी मत बनो। कम से कम जहां तक प्रेम का सवाल है, सम्राट बनो, क्योंकि प्रेम तुम्हारे भीतर का कभी न चुकने वाला गुण है; तुम जितना चाहो, देते जा सकते हो। चिंता मत करो कि वह खतम हो जायेगा, कि एक दिन अचानक तुम पाओगे, ‘हे ईश्वर! अब मेरे पास देने के लिये जरा भी प्रेम न बचा।’
प्रेम मात्रा (क्वांटिटी) नहीं है, वह गुण (क्वालिटी) है, और गुण भी ऐसी कोटि का जो देने से बढ़ता है, और यदि तुम पकड़कर रखो तो मर जाता है। यदि तुम देने में कंजूस रहे, तो वह मर जाता है। तो सचमुच खुले हाथों लुटाओ! इसकी चिंता मत करो कि किसे। वह सही अर्थों में कंजूस मन का ख्याल है- कि ‘मैं अपना प्रेम निश्चित गुणों वाले निश्चित व्यक्तियों को ही दूंगा।’
तुम समझते नहीं कि तुम्हारे पास इतना अधिक है- तुम वर्षा के बादल हो। वर्षा के बादलों को चिंता नहीं होती कि वे कहां बरस रहे हैं- चट्टानों पर, बगीचों में, सागरों में- उससे फर्क नहीं पड़ता। वह भारहीन होना चाहता है, और भारहीन होना बड़ी राहत है।
तो पहला रहस्य हैः कि प्रेम मांगो मत। प्रतीक्षा मत करो, यह सोचते हुये कि जब कोई मांगेगा तभी उसे दूंगा- दो!

प्रेमः एक लयपूर्ण संवाद
प्रेम को समझने के लिये पहले तुम्हें प्रेमपूर्ण होना चाहिए, केवल तभी तुम प्रेम को समझ सकते हो। लाखों लोग पीड़ित हैंः वे प्रेम किया जाना चाहते हैं लेकिन वे र्प्रेम करना नहीं जानते। और प्रेम एकालाप के रूप में नहीं रह सकता; यह संवाद है, बड़ा ही लयपूर्ण संवाद।
लोग तुम्हें जो देते हैं, वह तुम्हें तृप्त नहीं करता, तुम जो लोगों को देते हो वह तुम्हें तृप्त करता है। भिखारी होकर तुम संतुष्ट नहीं हो सकते

सम्राट होकर तुम संतुष्ट होगे और प्रेम, जब तुम देते हो, तुम्हें सम्राट बनाता है।
तुम इतना अधिक दे सकते हो, अक्षय रूप से, कि जितना ज्यादा तुम देते हो उतना ही शुद्ध, उतना ही झंकृत, उतना ही सुगंधित तुम्हारा प्रेम होता जाता है।
जिस पल तुम समझते हो कि प्रेम क्या है- तुम अनुभव करते हो कि प्रेम क्या है- तुम प्रेम हो जाते हो। तब तुममें प्रेम पाने की जरूरत नहीं रह जाती, और तुममें यह जरूरत भी नहीं रह जाती कि तुम्हें प्रेमपूर्ण होना चाहिए, प्रेमपूर्ण होना तुम्हारा सहज, स्फूर्त अस्तित्त्व होगा, तुम्हारीश्वास-प्रश्वास।
तुम और कुछ कर ही नहीं सकते, तुम केवल प्रेमपूर्ण होगे।
अब यदि बदले में तुम तक प्रेम नहीं लौटता, तुम चोट नहीं महसूस करोगे, इस सरल से कारण से कि केवल वही व्यक्ति प्रेम कर सकता है जो स्वयं प्रेम हो गया हो। तुम केवल वही दे सकते हो जो तुम्हारे पास है।
लोगों से मांग करना कि वे तुम्हें प्रेम करें- लोग जिनके जीवन में प्रेम है ही नहीं, जो अपने अस्तित्त्व के उन स्रोतों तक पहुंचे ही नहीं है जहां प्रेम का मंदिर है... कैसे वे तुम्हें प्रेम कर सकते हैं? वे दिखावा कर सकते हैं। वे कह सकते हैं कि वे प्रेम करते हैं। वे इस ख्याल में भी हो सकते हैं कि वे प्रेम करते हैं। लेकिन देर-अबेर यह प्रगट होने वाला है कि यह केवल दिखावा है, कि यह केवल अभिनय है, कि यह केवल पाखंड है।
हो सकता है कि तुम्हें धोखा देने का इरादा भी न हो, लेकिन व्यक्ति कर ही क्या सकता है? तुम प्रेम मांगते हो और वह व्यक्ति भी र्प्रेम चाहता है। दोनों इसे समझते हैं- कि उनसे अपेक्षा है प्रेम अपेक्षा करने की, तो ही उन्हें प्रेम मिलेगा- तो दोनों ही प्रेम करने की हर कोशिश करते हैं। यह भावभंगिमा है- लेकिन कोरी भावभंगिमा। दोनों को इस बात का पता चल जाने वाला है और दोनों ही एक दूसरे के खिलाफ शिकायत करने वाले हैं, कि यह ठीक नहीं है।
शुरू से ही दो भिखमंगे एक-दूसरे से भीख मांग रहे थे, और दोनों के पास केवल खाली भिक्षापात्र हैं।
अहंकार सबसे बड़ा बंधन है, एकमात्र नर्क जो मुझे पता है।
जिन लोगों ने प्रेम का स्रोत स्वयं के भीतर पा लिया है, उनको यह जरूरत नहीं रह जाती कि कोई उन्हें प्रेम करे- और उन्हें प्रेम किया जाएगा।
वे प्रेम किसी और कारण से नहीं करते बल्कि सिर्फ इसलिये कि उनके पास वह बहुत ज्यादा है- जैसे जल से भरा बादल बरसना चाहता है, जैसे फूल अपनी सुगंध लुटाना चाहता है, बिना कुछ मिलने की आकांक्षा के। प्रेम का पुरस्कार प्रेम करने में है, प्रेम पाने में नहीं।
और ये जीवन के रहस्य हैं कि यदि व्यक्ति प्रेम करने में ही प्रेम का पुरस्कार अनुभव करने लगे, तो बहुत लोग उसे प्रेम करेंगे, क्योंकि उसके संपर्क में आने से ही उन्हें धीरे-धीरे अपने स्वयं के भीतर के स्रोत का पता चलने लगता है। अब वे कम से कम एक व्यक्ति को जानते हैं जो प्रेम बरसाता है, और जिसका प्रेम किसी जरूरत से नहीं निकल रहा है। और जितना ज्यादा वह प्रेम बांटता और बरसाता है, उतना ही प्रेम बढ़ता है।

प्रेम और घृणा
जीवन में कुछ भी स्थायी नहीं है, कुछ भी स्थायी हो नहीं सकता। किसी भी चीज को स्थायी बनाना तुम्हारे हाथ में नहीं है। केवल मृत चीजें स्थायी हो सकती हैं। कोई भी चीज जितनी ज्यादा जीवंत है, उतनी ही ज्यादा क्षणभंगुर होगी।
आज प्रेम है कल की किसे खबरः रह भी सकता है, नहीं भी रह सकता। उसका नियंत्रण करना तुम्हारे हाथ में नहीं है। वह एक घटना है तुम कुछ भी कर नहीं सकते; तुम उसे पैदा नहीं कर सकते यदि वह न हो। या तो वह होता है अथवा वह नहीं होता है- तुम बस असहाय हो। पत्थर स्थायी हो सकते हैं, फूल नहीं हो सकते। और प्रेम पत्थर नहीं है। वह एक फूल है, और अनूठी गुणवत्ता वाला।

हृदय द्वंद्व का अतिक्रमण है। हृदय चीजों को स्पष्टता से देखता है और प्रेम उसका स्वाभाविक गुण है- ऐसी चीज नहीं जिसमें प्रशिक्षण लेना हो और इस प्रेम में घृणा उसके प्रतिपक्ष के रूप में उपस्थित नहीं रहती।
तुम प्रेम-घृणा रूपी द्वंद्व के पार जाने में समर्थ हो।
अभी वे तुम्हारे जीवन में साथ-साथ चलते हैं। तुम उसी व्यक्ति से प्रेम करते हो जिससे तुम घृणा करते हो। तो सुबह घृणा है, शाम को प्रेम है- और यह बड़ी चकराने वाली बात है। तुम जान ही नहीं पाते कि तुम इस व्यक्ति से प्रेम करते हो या घृणा करते हो, क्योंकि अलग-अलग समयों पर तुम दोनों ही करते हो। लेकिन यही मन के काम करने का ढंग है; वह विरोधाभासों के जरिए काम करता है। विकास भी विपरीत के माध्यम से काम करता है; लेकिन वे विपरीतताएं अस्तित्त्व के लिए विरोधाभास नहीं हैं, वे परिपूरक हैं।
घृणा भी एक तरह का प्रेम है- शीर्षासन करता हुआ।
जो प्रेम मन से आता है वह हमेशा प्रेमघृणा होता है। ये दो शब्द नहीं हैं, यह एक शब्द हैः ‘प्रेमघृणा”- उनके बीच संयोजक चिन्ह भी नहीं है। और प्रेम, जो तुम्हारे हृदय से आता है, वह सभी द्वंद्वों के पार है... ।
हर व्यक्ति उसी प्रेम की खोज में है जो प्रेम और घृणा के पार जाता है- लेकिन मन के द्वारा, खोज रहे हैं, इसीलिये दुखी हैं। प्रत्येक प्रेमी असफलता महसूस करता है, धोखा हुआ, विश्वासघात हुआ महसूस करता है लेकिन इसमें किसी का दोष नहीं है। असलियत यह है कि तुम गलत उपकरण का उपयोग कर रहे हो। यह ऐसे ही है जैसे कोई व्यक्ति आंखों का उपयोग संगीत सुनने के लिये कर रहा हो, और फिर विक्षिप्तता प्रगट करता है कि कहीं कोई संगीत नहीं है लेकिन आंखों का काम सुनना और कानों का काम देखना नहीं है। मन अति व्यापारी किस्म का, हिसाबी-किताबी यंत्र है; उसका प्रेम से कोई लेना-देना नहीं। प्रेम एक अराजकता होगी। वह मनका सब कुछ अस्त-व्यस्त कर देगा। हृदय का व्यापार से कोई लेना-देना नहीं- वह सदा ही छुट्टी पर है। वह प्रेम कर सकता है और ऐसा प्रेम कर सकता है जो घृणा में कभी नहीं बदलता; उस के पास घृणा के जहर नहीं हैं।
हर व्यक्ति इसी की खोज कर रहा है, लेकिन बस गलत उपकरण से; इसीलिये जगत में असफलता है। और धीरे-धीरे लोग, यह देखकर कि प्रेम केवल दुख लाता है, बंद हो गये हैं ‘प्रेम बकवास है।’ वे प्रेम के विरोध में बड़ी दीवारें खड़ी कर लेते हैं। लेकिन वे जीवन के समस्त आनंदों को चूकेंगे, वे जो भी जीवन में मूल्यवान है उस सबको चूकेंगे।

व्यक्तित्व
तुम एक भीड़ हो, बड़ी भीड़। तुम्हें जरा नजदीक से, जरा गहराई से देखना पड़ेगा और तुम स्वयं के भीतर बहुत से लोगों को पाओगे। और वे सारे लोग समय-समय पर नाटक करते हैं तुम होने का। जब तुम क्रोधित होते हो, एक तरह का व्यक्तित्व तुम पर हावी हो जाता है और नाटक करता है कि यह तुम हो। जब तुम प्रेमपूर्ण होते हो, तब एक दूसरा व्यक्तित्व तुम पर हावी होता है और नाटक करता है कि यह तुम हो।
यह बात न केवल तुम्हें विभ्रम में डालने वाली है बल्कि जो भी तुम्हारे संपर्क में आता है उन सबको विभ्रम में डालने वाली है, क्योंकि वे कुछ तय नहीं कर पाते। वे स्वयं ही एक भीड़ हैं।
और हर संबंध में केवल दो व्यक्ति ही विवाहित नहीं हो रहे हैं, बल्कि दो भीड़़ें विवाहित हो रही हैं। अब लगातार घमासान युद्ध होने जा रहा है, क्योंकि मुश्किल से ही ऐसे क्षण आयेंगे- बस भूल चूक से- जब तुम्हारा प्रेमपूर्ण व्यक्ति और दूसरे का प्रेमपूर्ण व्यक्ति प्रभाव में रहेंगे। अन्यथा तो तुम चूकते ही जाते हो। तुम प्रेमपूर्ण हो, लेकिन दूसरा दुःखी, क्रोधित और चिन्तित है। और जब वह प्रेमपूर्ण दशा में है, तब तुम प्रेमपूर्ण नहीं हो। और इन व्यक्तित्वों को अपनी ओर से लाने का कोई उपाय नहीं है; वे अपनी ही मर्जी से चलते हैं।

द्रष्टा

तुम्हारे भीतर एक चक्राकार गति है, और यदि तुम केवल देखते रहो- इन व्यक्तित्वों के साथ छेड़-छाड़ मत करो क्योंकि उससे तो ज्यादा गड़बड़ पैदा होगी, ज्यादा विभ्रम पैदा होंगे। सिर्फ देखो, क्योंकि इन व्यक्तित्वों को देखते हुए तुम्हें बोध होनेवाला है कि एक देखनेवाला भी है, जो कि कोई व्यक्तित्व नहीं है, जिसके समक्ष ये सारे व्यक्तित्व आते और जाते हैं। और यह कोई दूसरा व्यक्तित्व नहीं है, क्योंकि एक व्यक्तित्व दूसरे व्यक्तित्व को नहीं देख सकता। यह बड़ी ही सारभूत और रोचक बात है- कि एक व्यक्तित्व दूसरे व्यक्तित्व को देख नहीं सकता, क्योंकि इन व्यक्तित्वों में कोई आत्मा नहीं होती।
ये तुम्हारे वस्त्रों जैसे हैं। तुम अपने वस्त्र बदलते जा सकते हो, लेकिन तुम्हारे वस्त्र यह नहीं जान सकते कि वे बदल दिये गये हैं, कि अब एक दूसरे वस्त्र का उपयोग किया जा रहा है। तुम वस्त्र नहीं हो, इसलिये तुम उन्हें बदल सकते हो। तुम व्यक्तित्व नहीं हो- इसलिए तुम इन असंख्य व्यक्तित्वों के प्रति सजग हो सकते हो।
लेकिन इससे एक बात और बहुत साफ हो जाती है कि कुछ है जो तुम्हारे आसपास चलने वाले व्यक्तित्वों के इस सारे खेल को देखता रहता है।
और यही तुम हो।
तो इन व्यक्तित्वों को देखो, लेकिन याद रहे कि तुम्हारा देखना ही, तुम्हारी वास्तविकता है। यदि तुम इन व्यक्तित्वों को देखते रह सको- तो ये व्यक्तित्व विदा होने लगेंगे; वे जीवित नहीं रह सकते। जीवित रहने के लिये उनको तादात्म्य की जरूरत है। यदि तुम क्रोध में हो तो उसकी जरूरत है कि तुम देखना भूलो और क्रोध के साथ तादात्म्य में होओ अन्यथा क्रोध का कोई जीवन नहीं है; वह पहले से ही मृत है, मर रहा है, विलीन हो रहा है।
तो अपने द्रष्टा में ज्यादा से ज्यादा एकाग्र रहो, और ये सारे व्यक्तित्व खो जायेंगे। और जब कोई व्यक्तित्व नहीं बचता, तब तुम्हारी वास्तविकता- मालिक- घर आ गया है।
तब तुम ईमानदारी से, प्रामाणिकता से व्यवहार करते हो। तब जो कुछ भी तुम करते हो, समग्रता से, पूर्णता से करते हो- कभी पछताते नहीं हो। तुम हमेशा आनंदित भावदशा में होते हो।
हमारी बहुत-सी समस्याएँ- शायद अधिकांश समस्याएँ- इसलिये हैं क्योंकि हमने उन्हें आमने-सामने करके नहीं देखा है, उनका सामना नहीं किया है। और उनकी ओर न देखना उन्हें ऊर्जा दे रहा है। उनसे भयभीत रहना उन्हें ऊर्जा दे रहा है, हमेशा उनसे बचने की कोशिश उन्हें ऊर्जा दे रही है- क्योंकि तुम उन्हें स्वीकार कर रहे हो। तुम्हारा स्वीकार ही उनका अस्तित्त्व है। तुम्हारे स्वीकार के अतिरिक्त उनका कोई अस्तित्त्व नहीं है।
ऊर्जा का स्रोत तुम्हारे पास है। जो कुछ भी तुम्हारे जीवन में घटता है उसको तुम्हारी ऊर्जा की जरूरत होती है। यदि तुम ऊर्जा के स्रोत को काट दो और- दूसरे शब्दों में उसे ही मैं तादात्म्य कहता हूं- यदि तुम किसी भी चीज से तादात्म्य न जोड़ो, तो वह तत्क्षण मृत हो जाती है, उसके पास अपनी कोई ऊर्जा नहीं है
और अ-तादात्म्य द्रष्टा होने का ही दूसरा पहलू है।
आदतें आसान है, होश कठिन है- लेकिन केवल शुरु में ही।

वर्तमान क्षण
हृदय को अतीत का कुछ पता नहीं, भविष्य का कुछ पता नहीं; उसे केवल वर्तमान का पता है। हृदय को समय की कोई धारणा नहीं है।
बिना भविष्य के जीना सबसे बड़ा साहस है। केवल कायर भविष्य में जीते हैं। मनुष्य का अतीत बड़ा ही कायरतापूर्ण रहा है। वह वर्तमान में नहीं, भविष्य में जीता रहा हैः ‘जो भी होना है, सब कल होना है।’ और उसी आशा में लोग जीये और मर गये। जिसकी वे प्रतीक्षा कर रहे थे, वह कभी उपस्थित ही न हुआ।
वह सिर्फ गोडोट की प्रतीक्षा सिद्ध हुई।
वर्तमान अनजीया और अनखोजा ही रहा- और वही एकमात्र वास्तविकता है जिसका अस्तित्त्व है।

इस बात को समझो कि अतीत और भविष्य का कोई अस्तित्त्व नहीं है। सब जो तुम्हारे हाथ में है, वह केवल एक छोटा-सा क्षण हैः यही क्षण। तुम्हें दूसरा क्षण भी नहीं मिलता। तुम्हारे हाथ में, केवल एक क्षण होता है; और वह इतना छोटा और इतनी तेजी से भागता हुआ है कि यदि तुम अतीत और भविष्य के बारे में सोच रहे हो, तो तुम उससे चूक जाओगे। और वही क्षण एकमात्र जीवन है और वही क्षण एकमात्र वास्तविकता है।

राजनीति
राजनीति एक रोग है, और उसका ठीक उसी प्रकार उपचार किया जाना चाहिये। और यह केंसर से भी ज्यादा खतरनाक है; यदि शल्यचिकित्सा की जरूरत हो तो वह भी करनी चाहिये। लेकिन राजनीति मूलरूप से गंदी है। वह होगी ही, क्योंकि एक पद के पीछे हजारों लोग भूखे हैं, लालायित हैं। तो स्वभावतः वे लड़ेंगे, वे हत्या करेंगे; वे कुछ भी कर डालेंगे।
हमारे मन का पूरा संस्कार इतना गलत है इस अर्थ में कि हम महत्त्वाकांक्षी होने के लिए संस्कारित किये गये हैं- और वही वह जगह है जहां राजनीति है। वह केवल राजनीति के सामान्य जगत में ही नहीं है, उसने तुम्हारे सामान्य जीवन को भी विषाक्त किया हुआ है।
छोटा बच्चा भी मां को देखकर, पिता को देखकर मुस्कुराने लगता है, एक नकली मुस्कान। उसमें कोई गहराई नहीं होती, लेकिन वह जानता है कि जब भी वह मुस्कुराता है, उसे उसका पुरस्कार मिलता है। उसने राजनीतिज्ञ होने का पहला नियम सीख लिया है। वह अभी भी पालने में है, और तुमने उसे राजनीति सिखा दी है। और फिर हर कहीं मनुष्य के संबंधों में राजनीति है।
पुरुष ने स्त्री को पंगु कर दिया है। यह राजनीति है। स्त्रियां आधी आबादी हैं मानवजाति की और पुरुष को कोई अधिकार नहीं है उसे इस बुरी तरह पंगु बनाने का; लेकिन सदियों से वह स्त्री को पंगु बनाता रहा है।
उसने स्त्री को शिक्षित नहीं होने दिया है, उसने उसे पवित्र धर्मग्रंथ सुनने तक की अनुमति नहीं दी है। बहुत धर्मों में तो स्त्री को मंदिर में प्रवेश करने की अनुमति भी नहीं है; अथवा, यदि उसने अनुमति दी भी है, तो उसके लिए अलग जगह रहती है। परमात्मा के सामने भी वह पुरुष के साथ समान होकर नहीं खड़ी हो सकती।
पुरुष ने स्त्री की स्वतंत्रता को हर ढंग से काट देने की कोशिश की है। यह राजनीति है; यह प्रेम नहीं है। तुम एक स्त्री को प्रेम करते हो, लेकिन तुम उसे स्वतंत्रता नहीं देते। यह किस तरह का प्रेम है, जो स्वतंत्रता देने में भी भयभीत है? तुम उसे तोते की तरह पिंजड़े में डाल देते हो। तुम कह सकते हो कि तुम तोते को प्रेम करते हो, लेकिन तुम समझते नहींः तुम उस तोते की हत्या कर रहे हो।
तुमने तोते से उसका पूरा आकाश छीन लिया है और उसे पिंजरा दे दिया है। पिंजरा सोने का बना हो सकता है, लेकिन सोने का पिंजरा भी कुछ नहीं है तोतों की आकाश की स्वतंत्रता के सामने। इस पेड़ से, उस पेड़ पर उड़ते हुये, अपने गीत गाते हुए- वह नहीं जो तुमने उन्हें विवश किया हुआ है गाने के लिए बल्कि अपनी सहजता और ईमानदारी से निकले गीतों को गाते हुए।
प्रत्येक देश में, प्रत्येक सभ्यता में आधी मनुष्यता पारिवारिक राजनीति द्वारा नष्ट कर दी गयी है, लेकिन है वह राजनीति ही। जहां कहीं भी दूसरे व्यक्ति के ऊपर अधिकार जमाने की इच्छा है, वह राजनीति है।
अधिकार जमाने की कोशिश हमेशा राजनीति है, छोटे बच्चों तक पर। मां-बाप सोचते हैं कि वे प्रेम करते हैं, लेकिन यह केवल उनके मन का भ्रम है, चाहते तो वे यही हैं कि बच्चे आज्ञाकारी हों। और आज्ञाकारिता का अर्थ क्या है? उसका अर्थ है सारी शक्ति मां-बाप के हाथों में।
यदि आज्ञाकारिता इतना महान गुण है, तो मां-बाप ही क्यों न बच्चों के प्रति आज्ञाकारी हों! यदि यह इतनी धार्मिक बात है, तो मां-बाप को बच्चों के प्रति आज्ञाकारी होना चाहिए।
शक्ति और सत्ता का धर्म से कोई संबंध नहीं है। शक्ति और सत्ता का धर्म से इतना ही संबंध है कि राजनीति को सुंदर शब्दों की आड़ में छिपाना।

जहां-जहां राजनीति ने प्रवेश किया हुआ है, उन सब जगहों पर मनुष्य को उघाड़ दिये जाने की जरूरत है और राजनीति सब जगह प्रवेश कर गई है। सारे संबंधों में। उसने पूरे जीवन को दूषित कर दिया है और लगातार दूषित करती जा रही है।
महत्त्वाकांक्षा जो पैदा की जाती है वह यह कि तुम्हें दुनियां में कुछ होना है, कि तुम्हें सिद्ध करना है, कि तुम कोई सामान्य व्यक्ति नहीं हो, तुम विशिष्ट हो। लेकिन किसलिए? यह कौन-सा अभिप्राय हल करता है? यह एक ही अभिप्राय हल करता हैः तुम शक्तिशाली बन जाते हो, दूसरे सब तुम्हारे दास बन जाते हैं।
तुमने अलग-अलग तरीकों से पूरी मानवता को पंगु कर दिया है- और यह पंगु करना बड़ी राजनीति चाल है।

निजता
लोगों को स्वतंत्रता प्रिय है- लेकिन उत्तरदायीत्व कोई नहीं चाहता और वे साथ-साथ आती हैं, वे अविभाजनीय हैं।
तुम्हें मान्यता की फिक्र क्यों हो? मान्यता की फिक्र तभी अर्थपूर्ण है जब तुम अपने कार्य को प्रेम न करते होओ; तब यह अर्थपूर्ण है, तब वह उसका स्थान भरता प्रतीत होता है।
तुम अपने काम से घृणा करते हो, तुम्हें वह अच्छा नहीं लगता, लेकिन तुम उसे कर रहे हो, क्योंकि उससे मान्यता मिलेगी; तुम्हारी प्रशंसा होगी, तुम्हारा स्वीकार होगा।
मान्यता के बारे में सोचने की जगह अपने काम के विषय में पुनर्विचार करो। क्या तुम उसे प्रेम करते हो? तब बात खतम हो गई। यदि तुम उसे प्रेम नहीं करते, तो उसे बदलो।
माता-पिता, शिक्षक सब हमेशा इस बात पर जोर देते हैं कि तुम्हें मान्यता मिलनी चाहिए, तुम्हारा स्वीकार होना चाहिए। लोगों को नियंत्रण में रखने के लिए यह बड़ी चालाक नीति है।
एक आधारभूत बात सीखो। वही करो जो तुम्हें करना है, जो करना तुम्हें प्रिय है, और मान्यता की मांग मत करो। वह भिखमंगापन है। मान्यता की मांग ही कोई क्यों करे? दूसरों की स्वीकृति के लिए कोई लालायित ही क्यों हो? अपने भीतर ही गहरे झांको! शायद तुम जो कर रहे हो, वह तुम्हें पसंद नहीं है। शायद तुम भयभीत हो कि तुम गलत राह पर हो। स्वीकृति से तुम्हें लगेगा कि तुम ठीक हो। मान्यता से तुम्हें लगेगा कि तुम सही मंजिल की तरफ जा रहे हो।
सवाल तुम्हारी अपनी ही आंतरिक भावदशाओं का है; उसका बाहर की दुनियां से कुछ लेना-देना नहीं है। दूसरों पर निर्भर ही क्यों करो? और ये सारी बातें दूसरों पर निर्भर करती हैं; तुम अपने से ही निर्भर हो रहो।
जब तुम इस परतंत्रता से बचते हो तभी तुम निजतापूर्ण बनते हो- और निजता को पाना, अपने पैरों पर पूर्ण स्वतंत्रता में खड़ा होना, अपने स्रोतों से पीना ही वे बातें हैं जो सचमुच व्यक्ति को केंद्रित करती हैं, जड़ें प्रदान करती हैं। और वही उसकी परम खिलावट का प्रारंभ है।

सरलता
यदि बुद्धिमत्ता सरल, निर्दोष बनी रहे, तो वह दुनिया में संभवतः सुंदरतम बात है। लेकिन यदि बुद्धिमत्ता सरलता के विरोध में हो, तो वह चालाकी के सिवा और कुछ नहीं; तब वह बुद्धिमत्ता नहीं है।
जिस क्षण सरलता विदा हो जाती है, बुद्धिमत्ता की आत्मा चली जाती है, तब वह केवल लाश है। उसे केवल पांडित्य कहना बेहतर है। वह तुम्हें बड़ा बौद्धिक बना सकती है, लेकिन वह तुम्हारे जीवन को रूपांतरित नहीं करेगी और वह तुम्हें अस्तित्त्व के रहस्यों के प्रति खोलेगी भी नहीं।
ये रहस्य केवल बुद्धिमान बालक के लिए ही खुलते हैं। और वास्तविक बुद्धिमान व्यक्ति अपनी अंतिम सांस तक अपने बचपन को जिंदा रखता है। वह उसे कभी खोता नहीं- उस विमोहक-विमुग्ध भाव को जो बच्चा महसूस करता है

पक्षियों को देखते हुए, फूलों को देखते हुए, आकाश को देखते हुए... बुद्धिमत्ता को भी ऐसे ही होना है, बच्चे के समान।

सत्य
यह अजीब बात है कि सत्य लोकतांत्रिक नहीं है। सत्य क्या है यह मतों द्वारा नहीं तय किया जाना है; अन्यथा हम कभी किसी सत्य तक आ ही न सकें। लोग तो उसी के लिए मत देंगे जो सुविधाजनक है- और झूठ बड़े सुविधाजनक होते हैं क्योंकि उनके बारे में तुम्हें कुछ करना नहीं है, तुम्हें केवल विश्वास भर करना है उनमें।
सत्य के लिये तो महान श्रम, खोज और खतरों से गुजरना होता है, और उसके लिये तुम्हें अकेले उस रास्ते पर चलना होता है जिस पर पहले कोई नहीं चला है।
सत्य हमेशा शुद्ध, नग्न और अकेला है। सत्य में बड़ा सौंदर्य है, क्योंकि सत्य ही जीवन का, प्रकृति का, अस्तित्त्व का सार तत्व है।
मनुष्य को छोड़कर कोई और झूठ नहीं बोलता। गुलाब की झाड़ी झूठ नहीं बोल सकती। उसे गुलाब ही पैदा करने हैं; वह गेंदे नहीं पैदा कर सकती- वह छल नहीं कर सकती। जो वह है उससे अन्यथा होना उसके लिये संभव नहीं है। मनुष्य को छोड़कर सारा अस्तित्त्व सत्य में जीता है।
सत्य पूरे अस्तित्त्व का धर्म है- मनुष्य को छोड़कर। और जिस पल कोई मनुष्य भी अस्तित्त्व का हिस्सा होने का निर्णय लेता है, सत्य उसका धर्म हो जाता है।
और यह सबसे बड़ी क्रांति है जो किसी को घट सकती है। यह महिमावान क्षण है।
सत्य को वस्तु की तरह मत सोचो- वह वस्तु नहीं है। वह वहां नहीं है- वह यहां है।
जब तक तुम अपने प्राणों के सत्य को नहीं जानते, तुम जीवन के महामांगलिक रूप को नहीं महसूस कर पाओगे। अस्तित्त्व के होने मात्र से तुम आनंदातिरेक से नहीं छलक पाओगे।
यदि तुम सत्य का अनुभव नहीं कर सकते, तो तुम स्वयं को इस विराट सुव्यवस्था से; अस्तित्त्व से नहीं जोड़ पाओगे- जो कि तुम्हारा घर है। उसने तुम्हें जन्म दिया है, और उसे तुमसे विशाल आशायें हैं कि तुम चेतना के उच्चतम शिखर तक उठोगे, क्योंकि तुम्हारे माध्यम से अस्तित्त्व चैतन्य हो सकता है। दूसरा कोई उपाय नहीं है।

परिपक्वता
परिपक्व व्यक्ति के गुण बड़े अजीब हैं। पहली तो बात कि वह व्यक्ति नहीं है, वह मैं के रूप में बचा ही नहीं।
उसके पास एक उपस्थिति होती है, लेकिन वह व्यक्ति नहीं है।
दूसरी बातः वह बच्चों की भांति होता है- सरल और निर्दोष। इसीलिये मैंने कहा कि परिपक्व व्यक्ति के गुण बड़े अजीब हैं, क्योंकि परिपक्वता से ऐसा बोध होता है, जैसे कि वह काफी अनुभवी है, बड़ा-बूढ़ा है।
शारीरिक रूप से वह बूढ़ा हो सकता है, लेकिन आध्यात्मिक रूप से एक भोला बच्चा है। उसकी परिपक्वता केवल जीवन से प्राप्त अनुभव ही नहीं है- तब वह बच्चा नहीं होगा, तब वह एक उपस्थिति नहीं होगा। वह एक अनुभवी व्यक्ति होगा- जानकार लेकिन परिपक्व नहीं।
परिपक्वता का जीवन के अनुभवों से कोई संबंध नहीं। इसका संबंध तुम्हारी आंतरिक यात्रा से, तुम्हारे अंतर के अनुभवों से है।
जितना व्यक्ति स्वयं में गहरा जाता है, उतना ही ज्यादा परिपक्व वह होता है। जब वह अपने अस्तित्त्व के केंद्र तक ही पहुंच जाता है, तब वह पूर्णतः परिपक्व है। लेकिन तब व्यक्ति खो जाता है, केवल एक उपस्थिति बचती है; मैं खो जाता है, मौन बचता है। ज्ञान खो जाता है, भोलापन बचता है।

मेरे लिये, परिपक्वता आत्म-साक्षात्कार का ही दूसरा नाम है। तुमने अपनी संभावनाओं को पूरा कर दिया है। वह एक वास्तविकता बन गयी है। बीज अपनी लंबी यात्रा तय करके खिल गया है।
परिपक्वता में एक सुगंध है। वह व्यक्ति को एक महान सौंदर्य प्रदान करती है। वह बुद्धिमत्ता देती है, सबसे तीक्ष्ण बुद्धिमत्ता। वह व्यक्ति को केवल प्रेम बना देती है। उसका कृत्य प्रेम है, उसका अ-कृत्य प्रेम है। उसका जीवन प्रेम है, उसकी मृत्यु प्रेम है।
वह बस प्रेम का एक फूल है।

आधुनिक संगीत
आधुनिक संगीत ने अपनी गरिमा खो दी है क्योंकि वह अपने मूल अभिप्राय को भूल गया है। वह अपने स्रोत को भूल गया है। वह यह जानता ही नहीं है कि उसका ध्यान से कोई संबंध है। और यही दूसरी कलाओं के सबंध में भी सच है। वे सब की सब अ-ध्यानी बन गई हैं, और वे सब की सब लोगों को पागलपन में ले जा रही हैं। कलाकार स्वयं के लिये खतरा पैदा कर रहा है और वह अपने श्रोताओं के लिये भी खतरा पैदा कर रहा है। वह एक चित्रकार हो सकता है, लेकिन उसकी चित्रकला भी विक्षिप्त है; वह ध्यानपूर्ण दशा से नहीं निकली है।

मन की समस्या
मन का सारा काम ही विभाजित करते जाने का है। हृदय का काम उस जोड़ने वाली कड़ी को देखने का है जिसके बारे में मन पूरी तरह अंधा है।
सामान्य श्रेणी का मन पागल नहीं हो सकता। शांति और मौन की बात किसी को आकर्षक नहीं लगती। यह तुम्हारी व्यक्तिगत समस्या नहीं है; यह मानव मन की ही समस्या है, क्योंकि शांत और स्थिर होने और मौन होने का अर्थ हैः अ-मन की दशा में होना।
मन शांत नहीं हो सकता। उसे सतत विचार, सतत चिंता चाहिये। मन बाइसाइकिल के समान काम करता हैः यदि तुम पैडल मारते जाओ, वह चलती जाती है। जैसे ही तुम पैडल मारना बंद करो, तुम गिरने वाले हो। मन दो चक्के का वाहन है, बाइसिकल के जैसा; और तुम्हारे विचारों का चलना सतत पैडल मारने जैसा है। यदि कभी तुम थोड़े-बहुत मौन भी हो, तुम तुरंत चिंता करने लगते हो, ‘मैं मौन क्यों हूं?’ चिंता पैदा करने के लिये, विचार पैदा करने के लिये कोई भी चीज काम दे जाएगी, क्योंकि मन केवल एक ही तरह से टिक सकता है- भागते हुये, सदा ही किसी बात के पीछे अथवा किसी बात से भागते हुये, लेकिन सदा भागते हुए। भागने में ही मन है।
जिस पल तुम रुक जाते हो, मन विदा हो जाता है।
समय सदा अनिश्चित है। यही मन की कठिनाई हैः मन निश्चितता चाहता है- और समय सदा अनिश्चित है।
तो जब कभी संयोग से मन को निश्चितता का थोड़ा भी अवकाश मिलता है, वह स्थिरता महसूस करता है; एक तरह का काल्पनिक स्थायित्व उसे घेर लेता है। वह अस्तित्त्व और जीवन के वास्तविक स्वभाव को भूलने सा लगता है। वह एक प्रकार के स्वप्नलोक में जीना शुरू कर देता है, जो वास्तविकता जैसा लगने लगता है।
मन को यह सब बड़ा अच्छा लगता है। क्योंकि मन बदलाहट से सदा डरता है। उसके डरने का कारण बड़ा सरल है, किसे पता बदलाहट क्या सामने लाये?- अच्छा या बुरा। एक बात तय है कि बदलाहट तुम्हारी कल्पनाओं, अपेक्षाओं, सपनों की दुनिया को अव्यवस्थित कर देगी।
मन समुद्र के किनारे खेलते हुए उस बच्चे के समान है, जो रेत के महल बना रहा है। एक पल के लिये लगता है कि महल तैयार हो गया है- लेकिन वह खिसकती हुई रेत से बना है। किसी भी पल हवा का एक छोटा-सा झोंका और वह नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा। लेकिन हम स्वयं उस स्वप्न महल में रहना शुरू कर देते हैं। हम महसूस करने लगते हैं कि हमें कुछ ऐसा मिल गया है जो हमारे साथ सदा रहने वाला है।

लेकिन समय मन को सतत बाधा पहुंचाए जाता है। यह कठोर लगता है, लेकिन यह सचमुच अस्तित्व की करुणा है कि वह हमेशा तुम्हारे साथ लगा रहता है। वह तुम्हें आभासों में से वास्तविकताएं नहीं बनने देता। वह मुखौटों को तुम्हारा मौलिक वास्तविक चेहरा समझ लेने का तुम्हें मौका नहीं देता।

विवाह
हम हर तरह से उपाय करते हैं अपने अजनबी होने के एहसास को भूलना चाहते हैं इसलिए हमने सभी तरह के क्रिया-कांड निर्मित किये हैं। एक पुरुष किसी स्त्री से विवाह करता है; और विवाह क्या है? बस एक क्रिया-कांड। लेकिन क्यों? क्योंकि वे अपने अजनबीपन को भुलाकर किसी तरह एक सेतु निर्मित करना चाहते हैं।
वह सेतु कभी निर्मित नहीं होता; वे केवल कल्पना करते हैं कि अब उनमें से एक पति है, एक पत्नी है, लेकिन रहते वे अजनबी ही हैं। अपने पूरे जीवन वे साथ-साथ रहेंगे, लेकिन वे अजनबी के अलावा अन्य कुछ नहीं होंगे, क्योंकि कोई व्यक्ति किसी दूसरे के अकेलेपन में प्रवेश नहीं कर सकता।
तुम केवल उसी दशा में अजनबी नहीं रहोगे यदि तुम मेरे अकेलेपन में प्रवेश कर सको, या मैं तुम्हारे अकेलेपन में प्रवेश कर सकूं... जोकि संभव नहीं है, अस्तित्त्वगत रूप से संभव नहीं है। हम उतने निकट आ सकते हैं जितना संभव हो;
लेकिन जितने निकटतर हम होते जाते हैं उतना ही ज्यादा हमें अपने अजनबीपन का बोध बढ़ता जाएगा, क्योंकि उतना ही ज्यादा ठीक से हम देख पाएंगे दूसरा मुझसे अज्ञात है, और शायद अज्ञेय।

भयः मानसिक कवच

सभी के पास एक प्रकार का कवच है।
उसके कारण हैं। पहली बात, बच्चा इतना असहाय जन्म लेता है दुनिया में जिसके बारे में वह कुछ नहीं जानता। स्वभावतः वह उस अज्ञात से भयभीत है जो उसके सामने हैं।
वह अभी भी परिपूर्ण सुरक्षा और बचाव के उन नौ महीनों को नहीं भूला है, जहां कोई समस्या न थी, कोई जिम्मेदारी न थी, कल की कोई चिंता न थी। हमारे लिये ये नौ महीने हैं, लेकिन बच्चे के लिए यह शाश्वत समय है। वह कैलेन्डर के बारे में कुछ नहीं जानता। उसे घंटे, मिनट, दिनों और महीनों के बारे में कोई खबर नहीं। उसने बिना किसी जिम्मेदारी के सुरक्षा और निश्चिंतता के एक शाश्वत समय को जीया है।
और फिर अचानक वह इस अनजान जगत में फेंक दिया गया है, जहां वह हर बात में दूसरों पर आश्रित है। स्वाभाविक है कि वह भयभीत महसूस करेगा। हर व्यक्ति उससे बड़ा और शक्तिशाली है, और वह दूसरों की मदद के बिना जी नहीं सकता। वह जानता है कि वह आश्रित है; उसने अपनी स्वाधीनता, स्वतंत्रता खो दी है।
एक बिंदु पर कवच जरूरी हो सकता है; शायद जरूरी है। लेकिन जैसे-जैसे तुम बड़े होते हो, यदि तुम केवल उम्र में ही नहीं बढ़ रहे हो, बल्कि समझ में भी बढ़ रहे हो- परिपक्वता में बढ़ रहे हो- तब तुम्हें दिखायी पड़ने लगेगा कि क्या तुम अपने साथ लिए हुए हो।
गौर से देखो और तुम भय को इस सबके पीछे पाओगे। कोई भी चीज जो भय से जुड़ी हुई है, समझदार और परिपक्व व्यक्ति उस सबसे अपना नाता तोड़ लेता है। ऐसे ही परिपक्वता पैदा होती है। अपने सारे कृत्यों को देखो, अपने सारे विश्वासों को देखो और खोजो कि क्या वे सत्य में, अनुभव में आधारित हैं अथवा भय में आधारित हैं। और कोई चीज जो भय में आधारित है, उसे तत्क्षण बिना दूसरी बार उसके बारे में सोचे, छोड़ देना है। वह तुम्हारा कवच है।
तुम्हारा मानसिक कवच तुमसे छीना नहीं जा सकता- तुम उसके लिये लड़ोगे। उसे छोड़ने के लिये केवल तुम ही कुछ कर सकते हो; और वह यह कि उसके हर हिस्से पर नजर डालना। यदि वह भय में आधारित है तो उसे छोड़ दो। यदि वह तर्क में,

अनुभव में- समझ में आधारित है, तो वह छोड़ने की चीज नहीं है बल्कि अपने प्राणों का हिस्सा बना लेने की चीज है।
लेकिन तुम्हें अपने कवच में एक भी चीज ऐसी नहीं मिलेगी जो अनुभव पर आधारित हो। वे केवल भय ही भय हैं, आदि से अंत तक। और हम भयभीत ही जीते जाते हैं; वही कारण है कि हम अपने सारे अन्य अनुभवों में जहर घोलते जाते हैं। हम किसी व्यक्ति को प्रेम करते हैं, लेकिन भय के कारण। वह नष्ट करता है, जहर घोलता है। हम सत्य को खोजते हैं, लेकिन यदि यह भय के कारण है तो वह तुम्हें मिलने वाला नहीं है।
जो कुछ भी तुम करो, एक बात याद रखोः भय से तुम्हारा विकास नहीं होने वाला, तुम केवल सिकुड़ोगे और मरोगे। भय मृत्यु की सेवा में रत है।
निर्भय व्यक्ति के पास वह सब कुछ होता है, जो जीवन तुम्हें उपहार के रूप में देना चाहता है। अब कोई बाधा न रहीः तुम पर उपहार बरसा दिये जाएंगे, और जो कुछ भी तुम कर रहे होओगे, तुममें एक बल होगा, एक शक्ति, एक सुनिश्चितता, एक गहन साधिकार भाव।

तादात्म्य
तुम्हें जो समझना है वह है तादात्म्य की प्रक्रिया कि किस प्रकार कोई उस चीज से तादात्म्य जोड़ लेता है जो वह है ही नहीं। अभी तुम मन से तादात्म्य किये हुए हो। तुम सोचते हो तुम मन हो। वहीं से भय पैदा होता है। यदि तुम मन से तादात्म्य किये हुए हो तो स्वभावतः यदि मन रुकता है, तो तुम समाप्त, तुम बचते ही नहीं। और मन के पार का तुम्हें कुछ भी पता नहीं है। असलियत यह है कि तुम मन नहीं हो, तुम मन के पार कुछ हो; इसलिये मन का रुकना नितांत आवश्यक है ताकि पहली बार तुम जान सको कि तुम मन नहीं हो- क्योंकि तुम फिर भी हो।
मन तो गया, लेकिन तुम अभी भी हो; और पहले से ज्यादा आनंदित, ज्यादा महिमापूर्ण, ज्यादा तेजस्वी, ज्यादा चैतन्य, ज्यादा आत्मवान।

अपरिग्रह
जब तुम अपने आनंद में किसी को सहभागी बनाते हो, तब तुम किसी के लिये कैद नहीं निर्मित करतेः तुम सिर्फ देते हो। तुम धन्यवाद या आभार भी नहीं चाहते, क्योंकि तुम दे रहे हो- कुछ पाने के लिये नहीं, धन्यवाद पाने के लिए भी नहीं। तुम दे रहे हो क्योंकि तुम इतने भरे हो, तुम्हें देना ही है।
तो यदि कोई धन्यवादपूर्ण है, तो तुम उस व्यक्ति के प्रति धन्यवादपूर्ण हो जिसने तुम्हारे प्रेम को स्वीकार किया, जिसने तुम्हारे उपहार को स्वीकार किया। उसने तुम्हारा बोझ हलका किया, उसने तुम्हें अपने पर बरसने का अवसर दिया।
और जितना ज्यादा तुम बांटते हो, जितना ज्यादा तुम देते हो, उतना ही ज्यादा तुम्हारे पास बढ़ता है। तो यह तुम्हें कंजूस नहीं बनाता, यह तुममें भय नहीं पैदा करता कि ‘हो सकता है मेरे पास न रह जाये।’ सच तो यह है कि जितना ज्यादा तुम इसे देते हो उतना ही ज्यादा ताजा स्वच्छ जल उन झरनों से भीतर एकत्र होने लगता है जिनके बारे में तुम्हें पहले खबर ही न थी।
यदि पूरा अस्तित्त्व एक है, और यदि अस्तित्त्व वृक्षों की, पशुओं की, पहाड़ों की, महासागरों की- घास के छोटे से छोटे तिनके से लकर बड़े से बड़े महासूर्यों तक- की फिकर करता जाता है, तो यह तुम्हारी भी फिकर करेगा।
तो परिग्रही क्यों बनो? परिग्रह केवल एक ही बात दर्शाता है- कि तुम अस्तित्त्व पर भरोसा नहीं कर सकते। तुम्हें अपने लिये अलग से सुरक्षा की, भलाई की व्यवस्था करनी पड़ती है; तुम अस्तित्त्व पर भरोसा नहीं कर सकते। अपरिग्रह मूलरूप से अस्तित्त्व पर भरोसा है।
परिग्रह की कोई जरूरत ही नहीं है, क्योंकि सर्व पहले से ही तुम्हारा है।

केवल अपने हृदय की सुनो

और जीवन के आधारभूत नियम को हमेशा याद रखोः यदि तुम किसी की पूजा करते हो, तो एक न एक दिन तुम बदला लेने वाले हो।
तुम्हें सजग रहना है किसी द्वारा संचालित न किये जाने के लिये, चाहे उनके इरादे कितने ही नेक हों।
तुम्हें अपने आपको इतने सारे भला चाहने वालों से, भला करने वालों से बचना है, जो तुम्हें लगातार ऐसे होने की, वैसे होने की सलाह दे रहे हैं।
उनको सुनो और उन्हें धन्यवाद दो। उनका आशय कोई नुकसान पहुंचाना नहीं है- लेकिन पहुंचता नुकसान ही है।
केवल अपने हृदय की सुनो।
वही तुम्हारा एकमात्र शिक्षक है।
हर बार जब किसी को कुछ सत्य का पता चलता है, तो हृदय में नृत्य फूट पड़ता है। हृदय की एकमात्र गवाह है। सत्य का।
और वह शब्दों से गवाही नहीं दे सकता। हृदय अपने ही ढंग से गवाही दे सकता है; प्रेम द्वारा, नृत्य द्वारा, संगीत से- शब्दरहित। वह बोलता है, लेकिन वह भाषा और तर्क में नहीं बोलता।

स्वयं का स्वीकार
लोगों ने तुम्हारे बारे में मत बनाये हैं, और तुमने बिना किसी छानबीन के उनकी धारणाओं को स्वीकार कर लिया है। तुम सब तरह के लोगों द्वारा तुम्हारे बारे में बनाये गये मतों से पीड़ित हो, और तुम इन मतों को दूसरे व्यक्तियों पर फेंक रहे हो। यह खेल सारी सीमाओं को पार कर गया है, और पूरी मनुष्यता इससे पीड़ित है।
यदि तुम इसके बाहर आना चाहो, तो पहली बात हैः अपने बारे में राय मत बनाओ। अपनी अपूर्णता को, अपनी असफलताओं को, अपनी गल्तियों को, अपनी कमजोरियों को विनम्रतापूर्वक स्वीकार करो। उससे विपरीत का दिखावा करने की कोई जरूरत नहीं है। बस स्वयं हो जाओ, कि ‘ऐसा मैं हूं- भयग्रस्त। मैं अंधेरी रात में नहीं जा सकता। मैं घने जंगल में नहीं जा सकता।’ इसमें बुरा क्या है? यह तो बस मानवीय है।
एक बार तुम स्वयं को स्वीकार कर लो, तो तुम दूसरों को भी स्वीकार कर सकोगे, क्योंकि तब तुम्हारे पास एक स्पष्ट अंतर्दृष्टि होगी कि वे भी उन्हीं बीमरियों से ग्रसित हैं। और तुम्हारा उन्हें स्वीकार करना उन्हें स्वयं को स्वीकार करने में मदद करेगा।
हम पूरी प्रक्रिया को उलटा कर सकते हैंः तुम स्वयं को स्वीकार करते हो, वह तुम्हें दूसरों को स्वीकार करने में सक्षम बनाता है। और क्योंकि कोई उन्हें स्वीकार करता है, उन्हें स्वीकार करने का सौंदर्य पहली बार पता चलता है- कितना शांतिदायी अनुभव है यह- और वे दूसरों को स्वीकार करना शुरू कर देते हैं।
यदि पूरी मानवता इस बिंदु पर पहुंच जाये, जहां प्रत्येक व्यक्ति जैसा वह है वैसा ही स्वीकारा जाता है, तो करीब-करीब नब्बे प्रतिशत दुख तो खुद ही विदा हो जायेंगे- उनका कोई आधार नहीं है- और तुम्हारे हृदय अपने आप खुल जायेंगे, तुम्हारा प्रेम बहने लगेगा।

संस्कार, एक रंगीन चश्मा
तुम दुनिया को वैसी ही नहीं देखते जैसी वह है। तुम उसे वैसी देखते हो जैसी तुम्हारा मन तुम्हें विवश करता है उसे देखने के लिये। पूरी दुनिया में यही हो रहा है।
भिन्न-भिन्न लोग भिन्न-भिन्न तरह से संस्कारित हैं; और मन संस्कारों के अलावा अन्य कुछ भी नहीं है। वे चीजों को अपने-अपने संस्कारों के अनुसार देखते हैं- वह संस्कार एक प्रकार का रंगीन चश्मा है।
हम भेद खड़े करते हैं; हम किसी को श्रेष्ठ बनाते हैं; किसी को हीन पुरुष ज्यादा शक्तिशाली है, स्त्रियां कम शक्तिशाली हैं; कोई ज्यादा बुद्धिमान है, कोई कम। जातियां दावा करती रही हैं कि वे ईश्वर के चुने हुये लोग हैं।

हर धर्म दावा कर रहा है कि उनका ग्रंथ स्वयं ईश्वर द्वारा लिखा गया है। ये सब बातें, पर्त-दर पर्त, तुम्हारे मन को निर्मित करती हैं।
जब तक तुम पूरे मन को ही उठाकर किनारे न रख दो और दुनिया को सीधे ही, अपने चैतन्य से तुरंत, उसी क्षण न देखने लगो, तुम किसी सत्य को कभी देख न पाओगे।
इस दुनिया में सबसे बड़ा साहस है मन को हटाकर किनारे रख देना। सबसे ज्यादा साहसी व्यक्ति वही है जो दुनिया को मन की आड़ के बिना वह जैसी है वैसी ही देख सकता है। यह आत्यंतिक रूप से भिन्न है, नितांत सुंदर है। न कोई है जो श्रेष्ठ है, न कोई है जो हीन है- भेद है ही नहीं।

बुद्धिमत्ता
सामान्यतः हम सोचते हैं कि बौद्धिक लोग बुद्धिमान होते हैं। वह सच नहीं है। बौद्धिक लोग केवल मुर्दा शब्दों पर जीते हैं। बुद्धिमत्ता ऐसा नहीं कर सकती। बुद्धिमत्ता शब्दों को छोड़ देती है- वही तो लाश है- और उनकी जीवंत तरंग को ले लेती है।
बुद्धिमान व्यक्ति का मार्ग हृदय का मार्ग है, क्योंकि हृदय को शब्दों में रस नहीं है, उसकी उत्सुकता उस रस में है जो शब्दों के पात्रों में आता है। वह पात्रों को इकट्ठा नहीं करता, वह तो बस रस को पी लेता है और पात्रों को फेंक देता है।

धार्मिक व्यक्ति
मेरे लिए, धार्मिक व्यक्ति वह नहीं है जो प्रकृति के ऊपर है, बल्कि वह है जो पूरी तरह प्राकृतिक है, पूर्णरूप से प्राकृतिक है, जिसने प्रकृति की उसके सभी आयामों में खोज कर ली है, जिसने कुछ भी अनखोजा नहीं छोड़ा है।

स्वाभाविक मृत्यु
नैसर्गिक मृत्यु को उपलब्ध होने के लिये व्यक्ति को नैसर्गिक जीवन जीना पड़ता है।
नैसर्गिक मृत्यु चरमोत्कर्ष है। नैसर्गिक रूप से जिए गये जीवन का, बिना किसी अंतर्बाधा के, बिना किसी अवसाद-निराशा के- वैसे ही जैसे पशु जीते हैं, पक्षी जीते हैं, वृक्ष जीते हैं, बिना बंटे हुए- एक समर्पण का जीवन, प्रकृति को तुम्हारे भीतर से बहने देते हुए तुम्हारी और से बिना कोई बाधा डाले, जैसे कि तुम हो ही नहीं और जीवन अपने आप से बह रहा है।
तुम जीवन को नहीं जीते, बल्कि जीवन तुम्हें जीता है; तुम गौण हो। तब इसका चरमोत्कर्ष होगी सहज- स्वाभाविक मृत्यु।
मृत्यु तुम्हारे समूचे जीवन के आत्यंतिक चरमोत्कर्ष को, परम उंचाई को प्रतिबिंबित करेगी। वह उस सबका संघनित रूप होगी जो तुमने जीया है।
तो दुनिया में केवल बहुत थोड़े से लोग सहजता से भरे हैं, क्योंकि बहुत थोड़े से लोग सहजता से जीये हैं।
हम मृत्यु से भयभीत हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि हम मर जाने वाले हैं, और मरना हम चाहते नहीं। हम अपनी आंखें बंद रखना चाहते हैं। हम एक ऐसी भावदशा में जीना चाहते हैं, जैसे कि, हर व्यक्ति मर जाने वाला है, लेकिन मैं नहीं। यही हर व्यक्ति का सामान्य मनोविज्ञान हैः ‘मैं नहीं मरने वाला।’
मृत्यु की बात उठाना ही बहिष्कृत है। लोग डर जाते हैं, क्योंकि इससे उन्हें अपनी मौत याद आ जाती है। वे छोटी-मोटी बातों में इतने उलझे हैं, और मृत्यु आ रही है; वे चाहते हैं कि छोटी-मोटी बातें उन्हें व्यस्त रखें। यह एक पर्दे का काम करता हैः वे नहीं मरने वाले, कम से कम अभी तो नहीं, बाद में ‘जब मृत्यु आयेगी तब देखा जायेगा।’
जीवन को उसकी पूर्णता में स्वीकार करने में तुमने मृत्यु को भी स्वीकार कर लिया; वह केवल एक विश्राम है। पूरे दिनभर तुम काम करते रहे हो, और रात में तुम आराम करना चाहोगे या नहीं? रोज नींद तुम्हें ताजगी से भर देती है, नवजीवन दे देती है, तुम्हें फिर से ज्यादा बेहतर ढंग से, ज्यादा

निपुणता से कार्य करने लायक बना देती है। सारी थकान मिट जाती है, तुम फिर युवा हो जाते हो।
मृत्यु यही काम थोड़े और गहरे तल पर करती है। वह शरीर को बदल देती है, क्योंकि अब शरीर को केवल साधारण नींद द्वारा नवजीवन नहीं दिया जा सकता; वह बहुत पुराना हो चुका है। उसे अब ज्यादा प्रबल बदलाहट की जरूरत है, उसे नये शरीर की जरूरत है। तुम्हारी जीवन-ऊर्जा को नये आकार की जरूरत है। मृत्यु बस एक नींद है ताकि तुम आसानी से नये आकार में जा सको। तुम अपनी मृत्यु को जैसा चाहते हो, पहले अपने जीवन को भी वैसा ही होने दो- क्योंकि मृत्यु जीवन से अलग नहीं है।
मृत्यु जीवन का अंत नहीं है, केवल एक बदलाहट है।
जीवन चलता जाता है, चलता रहा है, चलता रहेगा। लेकिन रूप नष्ट हो जाते हैं, बूढ़े एक आनंद न रहकर, बोझ बन जाते हैं, तब बेहतर है कि जीवन को नया, ताजा रूप मिले।
मृत्यु वरदान है, वह अभिशाप नहीं है।

भय
भय के आधार पर जीने वाला व्यक्ति भीतर हमेशा कंपता रहता है। वह सतत पागल होने के करीब रहता है, क्योंकि जीवन बड़ा है, और यदि तुम सतत डरे-डरे हो- तो फिर सब तरह के भय हैं।
तुम एक लंबी सूची बना सकते हो और तुम्हें आश्चर्य होगा कि इतने सारे भय हैं, और फिर भी तुम जीवित हो! चारों और कितने संक्रमण हैं, बीमारियां, खतरे, आंतकवादी, अपहरणकर्त्ता- और इतना छोटा-सा जीवन। और अंत में मृत्यु है, जिसे तुम टाल नहीं सकते। तुम्हारा पूरा जीवन अंधकारमय हो जायेगा।
भय को छोड़ो। भय तुम्हारे द्वारा बचपन में अचेतन रूप से पकड़ी गयी चीज है। अब चेतन रूप से उसे छोड़ो और परिपक्व बनो। और तब जीवन एक प्रकाश हो सकता है जो तुम्हारे विकसित होने के साथ-साथ गहराता जाता है।

जिम्मेदारी
जिम्मेदारी खेल नहीं है। यह जीने का सर्वाधिक सच्चा ढंग है- और खतरनाक भी।
मेरे लिए, आज्ञाकारी न होना बड़ी क्रांति है। इसका अर्थ यह नहीं कि हर स्थिति में एकदम नहीं कहना है। इसका इतना ही अर्थ है कि तय करना कि इसे करना है या नहीं, इसे करना कल्याणकारी होगा या नहीं। यह है जिम्मेदारी स्वयं पर लेना।

असली ज्ञान
बुद्धि है सोच-विचार करना- और चेतना की खोज निर्विचार की स्थिति में होती है, इतने निपट मौन में कि एक विचार भी बाधा देने नहीं आता। उस मौन में तुम अपनी अंतरात्मा को ही खोज लेते हो- वह आकाश जैसी विराट है। और उसे जानना ही वास्तव में कुछ अर्थपूर्ण जानना है; अन्यथा तुम्हारा सारा ज्ञान कचरा है।
तुम्हारा ज्ञान काम का हो सकता है, उपयोगी, लेकिन वह तुम्हें तुम्हारे अंतस के रूपांतरण में मदद करनेवाला नहीं। वह तुम्हें परितृप्ति तक, संतुष्टि तक, बुद्धत्व तक नहीं ला सकता, उस बिंदु तक जहां तुम कह सको, ‘मैं घर आ गया।’
कहीं कोई घर नहीं है, जब तक उसे हम अपने भीतर ही न खोज लें।

चुनाव रहित बनो
सर्वाधिक मूलभूत बात याद रखने की यह है कि जब तुम अच्छा महसूस कर रहे हो, आनंद की मनोदशा में हो, तो यह सोचने लगो कि यह तुम्हारी स्थायी दशा रहने वाली है।
उस क्षण को आनंद से जीओ, जितनी प्रफुल्लता से हो सके उतनी प्रफुल्लता से, यह भलीभांति जानते हुए कि यह आया है और यह जायेगा- ठीक जैसे हवा का एक

झोंका अपनी सारी सुगंधों और ताजगियों के साथ तुम्हारे घर में आता है और दूसरे दरवाजे से बाहर निकल जाता है।
यदि तुम अपने उन आनंदोल्लास के क्षणों को स्थायी बनाये रखने की भाषा में सोचने लगो, तो तुमने उन्हें नष्ट करना शुरू ही कर दिया। जब वे आते हैं, अनुगृहीत होओ; जब वे जाते हैं, अस्तित्त्व के प्रति धन्यवादपूर्ण होओ। खुले रहो। ऐसा बहुत बार होगा। निर्णयात्मक बनो, चुनावकर्त्ता मत बनो, चुनाव रहित बने रहो।
हां, ऐसे क्षण होंगे जब तुम दुखी होगे। तो क्या? ऐसे लोग हैं जो दुखी हैं और जिन्होंने आनंद का एक क्षण भी नहीं जाना है। तुम सौभाग्यशाली हो। अपने दुख में भी याद रखो कि वह स्थायी नहीं रहने वाला; वह भी बीत जायेगा। तो उससे भी बहुत ज्यादा परेशान मत होओ। निश्चिंत रहो। दिन और रात की भांति सुख के क्षण होते हैं और दुख के क्षण होते हैं। उन्हें प्रकृति के द्वैत के अंग के रूप में स्वीकार करो, चीजों के होने का ढंग ऐसा है इस रूप में स्वीकार करो।
और तुम केवल द्रष्टा हो; न तो तुम सुख बन जाते हो, न तुम दुख बन जाते हो। सुख आता है और जाता है, दुख आता है और जाता है। एक चीज हमेशा बनी रहती है, हमेशा-हमेशा- और वह है द्रष्टा, वह जो साक्षी है।

ध्यान
ध्यान का संबंध तुम्हारे अंतरतम के सारभूत केंद्र से है, जिसे पुरुष या स्त्री में विभाजित नहीं किया जा सकता।
चेतना सिर्फ चेतना है।
दर्पण दर्पण है- न वह पुरुष है, न वह स्त्री है- वह सिर्फ प्रतिबिंबित करता है। चेतना ठीक दर्पण के समान है, जो सिर्फ प्रतिबिंबित करती है। तुम्हारे दर्पण को प्रतिबिंबित करने देना, ध्यान है- मन की क्रियाओं को प्रतिबिंबित करने देना, शरीर की क्रियाओं को प्रतिबिंबित करने देना।
इससे फर्क नहीं पड़ता कि शरीर पुरुष का है या स्त्री का; इससे फर्क नहीं पड़ता कि मन किस तरह से काम कर रहा है- भावात्मक ढंग से या तर्कपूर्ण ढंग से। जो भी स्थिति है, चेतना को सिर्फ उसके प्रति सजग रहना है।
यह सजगता, यह होश ध्यान है।
धीरे-धीरे द्रष्टा में ज्यादा से ज्यादा स्थिर होते जाओ। दिन आयेंगे, रातें आयेंगी, जीवन आयेंगे, मृत्यु आयेगी, सफलता आयेगी, असफलता आयेगी। लेकिन यदि तुम द्रष्टा में स्थिर हो- क्योंकि वही एकमात्र वास्तविकता है तुम में, शेष सब गुजरती हुई घटनायें हैं।
एक क्षण के लिये जो मैं कह रहा हूं, उसे महसूस करने की कोशिश करो; सिर्फ द्रष्टा हो जाओ। किसी क्षण को पकड़ो मत क्योंकि वह सुंदर है, और किसी क्षण को दूर मत धकेलो क्योंकि वह दुखद है। ऐसा करना बंद करो। वैसा तुम जन्मों से करते आये हो, और अभी तक तुम सफल नहीं हुये हो, और ऐसे तुम कभी भी सफल नहीं होओगे।
पार जाने का एक मात्र उपाय है पार बने रहना; वह जगह खोज लेना जहां से तुम इन सारी बदलती हुई घटनाओं को बिना तादात्म्य स्थापित किये हुए देख सको।
अनुभव आता है और जाता है- उस पर भरोसा मत करना, जब तक कि तुम अनुभव करने वाले को ही न जान लो। कौन प्रसन्नता अनुभव कर रहा है? कौन दर्द अनुभव कर रहा है? कौन अच्छा अनुभव कर रहा है? कौन दुखी अनुभव कर रहा है? कौन है यह चेतना?
इस चक्रवात के अंतरतम केंद्र तक पहुंचने के लिये हर प्रयास किये जाने चाहिए। तुम्हारा पूरा जीवन बदलाहट का, बदलते दृश्यों का, बदलते रंगों का एक चक्रवात है; लेकिन चक्रवात के ठीक भीतर तुम्हारा शांत केंद्र है। वह तुम हो। ध्यान की सरलतम विधि बस साक्षीभाव का एक ढंग है। ध्यान की एक सौ बारह विधियां हैं, लेकिन साक्षीभाव इन सारी एक सौ बारह विधियों का सार तत्त्व है। तो जहां तक मेरा संबंध है, साक्षीभाव ही एकमात्र विधि है। वे एक सौ बारह विधियां साक्षीभाव के ही विभिन्न प्रयोग हैं।

ध्यान का सार तत्त्व, उसकी आत्मा है साक्षी होना सीखना।
तुम एक वृक्ष को देख रहे हो; तुम हो, वृक्ष है, लेकिन क्या तुम एक और बात को नहीं खोज सकते?- कि तुम वृक्ष को देख रहे हो, कि तुम्हारे भीतर एक साक्षी है जो तुम्हें वृक्ष को देखते हुए देख रहा है।
जगत केवल विषय और कर्त्ता में ही विभाजित नहीं है। इन दोनों के पार भी कुछ है- और वह पार ही ध्यान है।
ध्यान की सरलतम विधि बस साक्षीभाव का एक ढंग है। ध्यान की एक सौ बारह विधियां हैं, लेकिन साक्षीभाव इन सारी एक सौ बारह विधियों का सार तत्त्व है। तो जहां तक मेरा संबंध है, साक्षीभाव ही एकमात्र विधि है। वे एक सौ बारह विधियां साक्षीभाव के ही विभिन्न प्रयोग हैं।

तादात्म्यः मानसिक बीमारी
एक बार तुमने किसी धारणा से तादात्म्य बनाया कि तुम बीमार हो।
समस्त तादात्म्य मानसिक बीमारी है। दरअसल मन तुम्हारी बीमारी है।
मन को एक किनारे रख देना और सिर्फ मौन होकर वास्तविकता को देखना- बिना किसी विचार के, बिना किसी पूर्वधारणा के वास्तविकता से परिचित होने का स्वस्थ ढंग है। और तुम वास्तविकता को सर्वथा भिन्न पाओगे।
वास्तविकता को पा लेना तुम्हें बहुत-सी मूढ़ताओं से, बहुत से अंधविश्वासों से मुक्त करेगा। यह तुम्हारे हृदय को सब प्रकार के कचरे से साफ करेगा जो पीढ़ियों दर पीढ़ियों ने तुम में डाला है। बीमारियां एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी चलती जाती हैं; पूरा अतीत उसकी सारी मूढ़ धारणाओं सहित तुम्हें वसीयत में मिलता है। अन्यथा, कहीं कोई भेद नहीं है, कहीं कोई तुलना नहीं है।
और एक बार तुम तुलना करने की और भेदभाव की आदत से मुक्त हो जाओ, तो तुम हलके हो जाते हो, तुम्हारा पूरा अस्तित्त्व हलका हो जाता है। तुम सारा भारीपन खो देते हो। तुम इतने हलके हो जाते हो कि तुम अपने पंखों को खोल सकते हो और उड़ सकते हो।

द्रष्टाः एकमात्र वास्तविकता
सब चीजें आती-जाती हैं, लेकिन तुम रहते हो- तुम वास्तविकता हो। हर चीज केवल सपना है- सुंदर सपने हैं, दुःस्वप्न हैं। लेकिन यह महत्त्वपूर्ण नहीं है कि सपना सुंदर है या वह एक दुःस्वप्न है, महत्त्वपूर्ण सपना देखने वाला है।
वह द्रष्टा ही एकमात्र वास्तविकता है। द्रष्टा परम शाश्वत है।
उसकी थोड़ी-सी झलक और तुम्हारी सारी समस्याएँ विदा होने लगेंगी क्योंकि एक पूर्णतया नया परिप्रेक्ष्य, एक नयी दृष्टि एक जीवन का नया ढंग, चीजों को और लोगों को देखने का एक नया ढंग, स्थितियों का सामना करने का एक नया ढंग पैदा होने लगता है।
और द्रष्टा सदा मौजूद है, चौबीसों घंटेः जो कुछ भी तुम कर रहे हो या नहीं कर रहे हो, वह मौजूद है। वह सदियों से मौजूद है, शाश्वत काल से मौजूद है, प्रतीक्षारत कि तुम उसपर ध्यान दो। शायद क्योंकि वह सदा-सदा से मौजूद रहा है, यही कारण है कि तुम उसे भूल गये हो। प्रगट सदा भूला रहता है- इसे याद रखना।
जब तुम्हें अच्छा लग रहा हो, मस्ती छा रही हो, इसे याद करो।
जब तुम दुख में हो, विषाद में, इसे याद करो।
सभी हवाओं में, सभी मनोदशाओं में इसे याद किये चले जाओ। जल्दी ही तुम उसमें केंद्रित बने रहने में समर्थ होने लगोगे, उसे याद करने की जरूरत न पड़ेगी। और वह व्यक्ति के जीवन में महानतम दिन है।

जाग्रत व्यक्ति
मैं तुमसे कहता हूं कि जगत में न कहीं बुरा है, न कहीं बुरी शक्तियां हैं। केवल जागरण से भरे हुए लोग हैं और गहरी नींद में सोये हुए लोग हैं- और नींद में कोई शक्ति नहीं होती।

सारी ऊर्जा जाग्रत लोगों के पास होती है। और एक जाग्रत व्यक्ति सारी दुनिया को जगा सकता है। एक जला हुआ दीया बिना अपना प्रकाश खोये लाखों दीयों को जला सकता है। दुख तुम्हारे अहंकार को पोषण देता है- यही कारण है कि तुम दुनिया में इतने ज्यादा दुखी लोग देखते हो। मूल केंद्रीय बिंदु अहंकार है।

हृदय शुद्ध अस्तित्त्व है
मन यह या वह की भाषा में काम करता हैः या तो यह ठीक हो सकता है, या इसका विपरीत ठीक हो सकता है। जहां तक मन का, मन के तर्क का, मन की बुद्धि का संबंध है, दोनों साथ-साथ सही नहीं हो सकते।
यदि मन यह या वह है, तो हृदय दोनों-ओर है।
हृदय के पास तर्क नहीं है, लेकिन एक संवेदनशीलता, एक अंर्तज्ञान। वह देख सकता है कि न केवल दोनों साथ-साथ हो सकते हैं, सच तो यह है कि वे दो नहीं हैं। वह बस एक ही घटना है दो अलग-अलग पहलुओं से देखी गयी।
और यदि मन और हृदय के बीच एक को चुनने का प्रश्न खड़ा हो, तो हृदय सदा सही है, क्योंकि मन समाज का निर्मित किया हुआ है। उसे प्रशिक्षित किया गया है।
वह तुम्हें समाज द्वारा मिला है, अतित्त्व द्वारा नहीं।
हृदय अप्रदूषित है।
हृदय शुद्ध अस्तित्त्व है; इसीलिये उसके पास संवेदनशीलता है।
हृदय की आंख से देखो और सारे विरोधाभास बर्फ की तरह पिघलने लगते हैं।

तुम अस्तित्त्व हो।
मैं तुमसे कहता हूंः अस्तित्त्व के साथ एक होने के लिए तुम्हें विदा होना होता है और अस्तित्त्व को रहने देना होता है। तुम्हें बस अनुपस्थित होना पड़ता है, ताकि अस्तित्त्व अपनी पूर्णता में प्रकट हो सके। लेकिन जिस व्यक्ति को मैं कह रहा हूं विदा होना है वह तुम्हारी वास्तविकता नहीं है, वह केवल तुम्हारा व्यक्तित्व है; वह केवल तुम्हारा ख्याल है। वास्तविकता में तो तुम अस्तित्त्व के साथ एक ही हो। तुम्हारे होने का और कोई ढंग हो ही नहीं सकता- तुम अस्तित्त्व हो।
लेकिन व्यक्तित्व एक प्रवंचना निर्मित करता है और तुम्हें लगता है कि तुम अलग हो। तुम अपने आपको अलग मान सकते हो- अस्तित्त्व तुम्हें पूरी स्वतंत्रता देता है, इतनी कि उसके खिलाफ होने की भी। तुम अपने आपको अलग सत्ता मान सकते हो, एक अहंकार। और वही है बाधा जो तुम्हें इस विराट में पिघलने से रोके हुए है। जो तुम्हें हर पल घेरे हुए है।
सूर्यास्त को देखते हुए, एक क्षण के लिये तुम अपना अलगाव भूल जाते होः तुम सूर्यस्त हो जाते हो। यही वह पल है, जब तुम उसका सौंदर्य महसूस करते हो। लेकिन जैसे ही तुम कहते हो कि सुंदर सूर्यस्त है, तुम अब उसे महसूस नहीं कर रहे हो; तुम अपनी अलग, बंद अहंकारमयी सत्ता में लौट आये हो। अब मन बोल रहा है।
और यह रहस्यों में से एक है कि मन बोल सकता है और जानता कुछ नहीं; और हृदय जानता सब कुछ है लेकिन बोल नहीं सकता। शायद बहुत ज्यादा जानना, बोलना कठिन कर देता है। मन इतना कम जानता है, उसके लिए बोलना संभव है। उसके लिये भाषा पर्याप्त है, लेकिन हृदय के लिये भाषा पर्याप्त नहीं है।
लेकिन कभी-कभी किसी क्षण के प्रभाव में- कोई तारों भरी रात, कोई सूर्योदय, कोई सुंदर फूल- क्षण भर के लिये तुम भूल जाते हो कि तुम अलग हो। और यह भूलना तक महत आनंद और सौंदर्य को प्रगट करता है।

मित्रता
मित्रता शुद्धतम प्रेम है। यह प्रेम का सबसे ऊंचा रूप है- जहां किसी चीज की मांग नहीं, कोई शर्त नहीं, जहां व्यक्ति बस देने का आनंद लेता है।
व्यक्ति को मिलता बहुत है, लेकिन वह गौण है, और वह अपने आप घटता है।

परिवारः एक मानसिक घर

बेघरबार हो जाना स्वतंत्र हो जाना है, यह स्वतंत्रता है। इसका अर्थ है बाहरी किसी चीज से कोई आसक्ति नहीं, कोई ग्रस्तता नहीं; कि तुम्हें बाहरी किसी चीज से उत्साह पाने की कोई जरूरत नहीं बल्कि तुम्हारा उत्साह तुम्हारे भीतर है। तुम्हारे उत्साह का स्रोत तुम्हारे पास है; तुम्हें और ज्यादा की जरूरत नहीं। तो जहां कहीं भी तुम बेघरबार हो, अजीब रूप से तुम घर में हो।
जो लोग घर की तलाश कर रहे हैं वे हमेशा निराशा में पड़ते हैं, और अंततः वे यह कहने वाले हैंः ‘हमारे साथ धोखा हुआ है, जीवन ने हमारे साथ धोखा किया है। किसी तरह इसने हमें घर खोजने की वासना पकड़ा दी है- और घर कहीं है नहीं, घर कहीं होता ही नहीं।’
हम हर संभव उपाय से घर बनाने की कोशिश करते हैंः कोई पति खोज लेता है, कोई पत्नी खोज लेता है, कोई बच्चे ले आता है दुनिया में...
व्यक्ति परिवार बनाने की कोशिश करता है- वह एक मानसिक घर है।
व्यक्ति केवल मकान ही नहीं बनाता, बल्कि उसे करीब-करीब एक जीवंत सत्ता, बना देने की कोशिश करता है।
व्यक्ति अपने सपनों के अनुरूप घर बनाने की कोशिश करता है, कि यह ऊष्मा की परिपूर्णता करने वाला है कि इस ठंडक में...
और यह विराट है, अस्तित्त्व का ठंडापन। समूचा अस्तित्त्व इतना ठंडा है, इतना तटस्थ है कि तुम अपने लिये एक छोटी-सी सुरक्षा तैयार करना चाहते हो, जहां तुम्हें लगे कि तुम्हारा ख्याल रखा जा रहा है कि कोई चीज तुम्हारी सुरक्षा कर रही है, कि यह कुछ ऐसा है जो तुम्हारा है, कि तुम मालिक हो, कि तुम बेघरबार बंजारे नहीं हो।
लेकिन वास्तविकता यह है कि इस तरह की धारणा तुम्हारे लिये दुख खड़ा करने वाली है, क्योंकि एक दिन तुम पाओगे कि पति जिसके साथ तुम रहे, पत्नी जिसके साथ तुम रहे- दोनों अजनबी ही हो। पचास साल साथ में रहने के बाद भी अजनबीपन विदा नहीं हो गया है; उलटे वह और गहरा हो गया है। तुम कम अजनबी थे उस प्रथम दिन जब तुम मिले थे।
जैसे-जैसे समय बीतता गया है और तुम साथ-साथ रहे हो, तुम और-और अजनबी होते गये हो, क्योंकि तुम एक-दूसरे को और-और जानने लगे हो- और अब तुम्हें तनिक भी समझ में नहीं आता कि दूसरा व्यक्ति कौन है? जितना ज्यादा तुमने जाना है, उतना कम तुम जानते हो। ऐसा लगता है कि जितना ज्यादा तुम व्यक्ति से परिचित हुए हो, उतने ही ज्यादा तुम इस बात के प्रति सजग हुए हो कि उसके बारे में तुम्हारा अज्ञान अपार है; इसे नष्ट करने का उपाय नहीं है। तुम्हारे बच्चे- तुमने सोचा था कि वे तुम्हारे बच्चे हैं, और एक दिन तुम्हें पता चलता है कि वे तुम्हारे बच्चे नहीं है। तुम केवल एक मार्ग थे- जिससे होकर वे आये हैं। उनका अपना जीवन है- वे पूरी तरह अजनबी हैं। वे तुम्हारे नहीं है। वे अपना जीवन और अपने ढंग खोजेंगे।

कौन है तुम्हारे साथ?
कोई किसी के साथ नहीं है।
तुम सदा भीड़ में हो, लेकिन अकेले। अकेले अथवा भीड़ में, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता; घर में अथवा बंजारे- उससे कोई फर्क नहीं पड़ता।
अकेलापन अहंकार के लिये कभी भी आनंद नहीं है। अहंकार को तभी आनंद आता है, जब वह किसी पर अपना अधिकार जमाये, जब वह कह सके, ‘मैं तुमसे ऊपर हूं, श्रेष्ठ हूं।’
अहंकार अकेलेपन का कभी भी आनंद नहीं ले सकता; अकेलेपन में अहंकार पालने का क्या अर्थ है।

बिना सिद्धांतों कें जीओ
लोग सोचते हैं कि अपने सिद्धांतों में अटल रहना उन्हें एक प्रकार की दृढ़ता देता है। वे गलत हैं। यह बस उनकी सारी शक्ति को चूस लेता है। इस पृथ्वी पर वे सब कमजोर लोग हैं।

वे उस छोटे बच्चे की भांति हैं जो बडा़ तो हो गया है लेकिन अभी भी उन्हीं पाजामों का उपयोग किये जा रहा है जो बचपन में उसके लिए बनाए गये थे। अब वे उन पाजामों में बड़े अजीब दिख रहे हैं, वे तकलीफ भी महसूस कर रहे हैं। वे लगातार अपने पाजामों को ऊपर की और पकड़े हुए हैं क्योंकि वे बार-बार खिसके जा रहे हैं और लोग हंस रहे हैं।
नहीं, जैसे-जैसे तुम बड़े होते हो, तुम्हारे पाजामें भी बड़े होते जाने चाहिये। लेकिन, क्योंकि पाजामे बढ़ते नहीं, तुम्हें उन्हें बदलना होगा। तो मुझे इसमें कोई समस्या नहीं दिखती। लेकिन मैं देख सकता हूं कि किसी एक व्यक्ति की हालत नहीं है, लाखों लोग इसी तरह जी रहे हैं। वे बड़े कठिन अनुशासन खड़े कर लेते हैं और फिर मुसीबत में पड़ते हैं। कोई दूसरा उन पर यह मुसीबत नहीं डाल रहा है- ये उनके अपने ही सिद्धांत। यदि वे उन्हें छोड़ते हैं, उन्हें बड़ा बुरा लगता है; यदि वे उन पर चलते हैं, वे दुखी होते हैं। मैं तुम्हें स्पष्टतः बिना सिद्धांतों का जीवन सिखाता हूं, बुद्धिमत्ता का जीवन जो तुम्हारे आसपास की हर बदलाहट के साथ बदलता है, ताकि तुम्हारे पास कोई ऐसे सिद्धांत न हों जो बदलाहट में कठिनाई खड़ी करता है। पूरी तरह से सिद्धांतों से रहित हो जाओ और सिर्फ जीवन का अनुसरण करो, और तुम्हारे जीवन में कोई दुख न होगा।
हमें अतीत से नाता तोड़ लेना चाहिए- वह पूरी तरह से रुग्ण था। मनुष्य ने बड़ा ही रुग्ण जीवन जीया है। क्योंकि उसने एक बड़ा रुग्ण दर्शन निर्मित कर लिया था, और बड़ी गंभीरता से उसने उसका पालन किया।
हमें उस रुग्णता से नाता तोड़ लेना चाहिये- चाहे वह कितनी ही सन्मानीत हो, चाहे वह कितनी ही प्राचीन हो- और मनुष्य की समग्रता की पुर्नखोज करनी चाहिए।
और यह केवल तभी किया जा सकता है जब हम हलके-फुलकेपन को समादर के साथ जोड़ देंगे; जब हंसी-खेल, हल्का-फुल्कापन ही गहरा समादर हो; जब समादर तुम्हें मौत में, त्याग में न ले जाता हो, बल्कि हर्षोल्लास मनाने में नृत्य करने में, उत्सवपूर्ण होने में ले जाता हो।
योद्धा की भांति जीयो; इस पार या उस पार, लेकिन समझौते कभी नहीं।

एकांत और अहंकार

एकांत में अहंकार बिखर जाता है। दुसरा कोई होता ही नही जिसे तुम संबधित हो सको इसलिये यह जीवित नहीं रह पाता। इसलिये अगर तुम अकेले होने के लिए, निर्विवाद रूप से अकेले होने के लिए तैयार हो, न भागो, न पीछे लौटो, बस इस अकेलेपन के तथ्य को उसके पूरे यथार्थ में उसे स्वीकार कर लो तो यह एक महान अवसर बन जाता है। तब तुम एक बीज की भांति होते हो, जिसमें बहुत बड़ी संभावना छिपी होती है। किंतु स्मरण रखना पौधे के विकसित होने के लिए बीज को स्वयं को नष्ट करना पड़ेगा।
अहंकार बीज है, एक संभावना है। यदि यह बिखरता है तो दिव्यता उत्पन्न होती है। दिव्यता अपने आप में न तो मैं है, न तू है, यह एक है। इस एकांत के द्वारा ही तुम अपनी इस एकात्मीयता पर आते हो।
तुम इस एकात्मकता के लिए झूठे विकल्प गढ़ सकते हो। हिंदू एक हो जाते हैं, ईसाई एक हो जाते हैं, मुसलमान एक हो जाते हैं, भारत एक है, चीन एक है। ये सब एकात्मकता के विकल्प मात्र हैं। सिर्फ पूर्ण एकांत के द्वारा ही एकात्मकता आती है।
कोइ भीड़ स्वयं को एक कह सकती है, किंतु यह एकता सदैव किसी अन्य के विरोध में होती है। जब तक भीड़ तुम्हारे साथ होती है, तुम विश्राम में होते हो। अब तुम जिम्मेवार नहीं होते। तुम अकेले एक मस्जिद में आग नहीं लगा सकोगे, तुम अकेले एक मंदिर नष्ट नहीं कर पाओगे, किंतु भीड़ का अंग होकर तुम यह कर सकते हो, क्योंकि अब तुम स्वयं अकेले जिम्मेवार नहीं हो। अब हर कोइ जिम्मेवार है इसलिये कोई एक विशेष रुप से जिम्मेवार नहीं है। वहां कोई निजी चेतना नहीं होती, मात्र एक सामूहिक चेतना होती है। भीड़ में मनुष्य के तल से तुम नीचे गिर जाते हो और एक पशु बन जाते हो।

भीड़ एकात्मकता के होने का झूठा विकल्प है। कोई भी जो परिस्थिति के प्रति जागरुक है, अपने मनुष्य होने के प्रति जागरुक है और उस कठिन, श्रमसाध्य कृत्य के प्रति जागरुक है जो कि मनुष्य होने के नाते उसे करना है, वह किसी झूठे विकल्प को नहीं चुनता। तुम्हारे धर्म और तुम्हारी राजनैतिक विचार धारणाएं मात्र काल्पनिक कथायें हैं, जो एकात्मकता की झूठी अनुभूति देती हैं। एकात्मकता आती ही तब है, जब तुम अहंकार विहीन हो जाते हो और अहंकार सिर्फ तभी मिट सकता है जब तुम पूर्णतः अकेले हो।
जब तुम पूरी तरह अकेले होते हो तब तुम होते ही नहीं। यह एक क्षण विस्फोट का क्षण है। तुम अनंत में विस्फोटित हो जाते हो। यही और सिर्फ यही विकास है। मैं इसे उत्क्रांति कहता हूं क्योंकि यह अचेतन नहीं है। तुम अहंकार शून्य हो सकते हो या नहीं हो सकते। यह तुम पर निर्भर है।
अकेले होना ही एक मात्र वास्तविक क्रांति है। बहुत साहस की जरूरत पड़ती है। केवल एक बुद्ध अकेले हैं, केवल एक जीसस या महावीर अकेले हैं। ऐसा नहीं है कि उन्होंने अपने परिवार छोड़े, संसार छोड़ा। ऐसा दिखता है, पर ऐसा है नहीं। निषेधात्मक रूप से वे कुछ नहीं छोड़ रहे थे। यह कृत्य एक विधायक यज्ञ की भांति था और यह बस एकांत की ओर गतिमान होना था। वे कुछ त्याग नहीं रहे थे, वे पूर्णतः अकेले होने की खोज में थे।
सारी खोज विस्फोट के उस पल के लिए है, जब कोई अकेला होता है। एकांत में आनंद है और केवल तभी संबोधि उपलब्ध होती है।
हम अकेले नहीं हो सकते, दूसरे भी अकेले नहीं हो सकते, इसलिये हम समूह निर्मित करते हैं; परिवार, समाज, राष्ट्र बनाते हैं। सारे राष्ट्र, सारे परिवार, सारे समूह कायरों से बने हैं; उनसे जिनमें अकेले होने के लिए जरुरी साहस नहीं है।
वास्तविक साहस तो केवल अकेले होने का साहस है। इसका मतलब ही यही है कि इस बात का जागरुकतापूर्वक एहसास कि तुम अकेले हो और तुम इसके अलावा कुछ हो भी नहीं सकते। या तो यह अपने आपको धोखा देने का सिलसिला कई जन्मों तक एैसे ही जारी रख सकते हो पर तब तुम एक दुश्चक्र में चलते रहोगे। अगर तुम अपने इस अकेले होने के तथ्य के साथ रह सको, केवल तभी यह चक्र टूटता है और तुम अपने केंद्र पर आ जाते हो। यह केंद्र दिव्यता का, समग्रता का, पवित्रता का केंद्र है।
मैं ऐसे किसी समय की कल्पना ही नहीं कर सकता जब कि प्रत्येक मनुष्य केंन्द्रीत होने के इस अधिकार को जन्म सिद्ध अधिकार के रूप में प्राप्त करने योग्य होगा। यह असंभव है। चेतना वैयक्तिक; निजी होती है। सिर्फ अचेतन ही सामूहिक होता है। मानव जाति चेतना के उस बिंदु पर आ चुकी है, जहां कि वह वैयक्तिक हो जाए। सच तो यह है कि मनुष्यता का अलग अस्तित्व है ही नहीं, सिर्फ एक मनुष्य होता हैं। प्रत्येक मनुष्य को अपनी निजता; वैयक्तिकता तथा इसके प्रति उसके अपने उत्तरदायित्व का साक्षात करना पड़ेगा।
पहला काम जो हमे करना चाहिए वह यह है कि अकेलेपन के इस आधार भूत तथ्य को स्वीकार करना और इसके साथ रहना सीखना। हमें कोई कपोल-कल्पनायें नहीं गढ़नी हैं। कपोल-कल्पनायें, प्रक्षेपित, गढ़े गये, बनाये गये सत्य हैं, जो तुम्हें वास्तविकता से जानने से रोकते हैं। अपने अकेलेपन के तथ्य के साथ रहो। यदि तुम इस तथ्य के साथ रह सके, यदि तुम्हारे और इस तथ्य के बीच में कोई कपोलकल्पना न रही, तो सत्य तुम पर उद्घाटित हो जाएगा। प्रत्येक तथ्य, यदि उसमें गहनता से झांका जाये, सत्य का उद्घाटन करता है।
इसलिये उत्तरदायित्व के इस तथ्य के साथ, इस तथ्य के साथ कि तुम अकेले हो, बने रहो। यदि तुम इस तथ्य के साथ रह सको, तो विस्फोट घटित हो जाएगा। यह कठीन है, परंतु यही एकमात्र उपाय है। इन्हीं कठिनाईयों के द्वारा, इस तथ्य की स्वीकृति के द्वारा ही तुम विस्फोट के बिंदु पर पहुंचते हो। केवल तभी वहां आनंद है। यदि यह तुम्हें पूर्व-निर्मित दे दिया जाए, तो यह अपना महत्त्व खो देगा क्योंकि तुमने इसे उपलब्ध नहीं किया है। तुम्हारे पास आनंद को अनुभव करने की क्षमता नहीं होती। यह क्षमता सिर्फ स्वयं के अनुशासन के द्वारा ही आती है।

यदि तुम अपने इस उत्तरदायी होने के तथ्य के साथ रह सको, तो अनुशासन स्वतः ही तुम्हारे पास आ जाएगा। अपने प्रति पूर्ण उत्तरदायी होने पर तुम अनुशासित हो जाने के अतिरिक्त कुछ और कर ही नहीं सकते। किंतु यह अनुशासन कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो तुम पर बाहर से थोपी गई हो। यह भीतर से आता है। अपने प्रति अपने पूर्ण उत्तरदायित्व के कारण, तुम्हारे द्वारा उठाया गया प्रत्येक कदम अनुशासित होता है। तुम एक शब्द भी अनुत्तरदायीपूर्ण ढंग से बोल नहीं सकते।।
अगर तुम अपने अकेलेपन के प्रति जागरुक हो, तो तुम दूसरों की व्यथा के प्रति भी जागरुक होओगे। तब तुम कोई भी गैरजिम्मेवार कृत्य नहीं करोगे, क्योंकि तुम न केवल अपने लिए बल्कि दूसरों के लिए भी अपने को जिम्मेवार अनुभव करोगे। अगर तुम अपने अकेलेपन के तथ्य के स्विकारते हुए उसके साथ रह सको तो तुम पाओगे कि यहां प्रत्येक व्यक्ति अकेला है। तब बेटे को पता है कि पिता अकेला है, पत्नी जानती है कि पति अकेला है, पति जानता है कि पत्नी अकेली है। एक बार तुम यह जान लो तो तुम करुणावान हो ही जाओगे।
तथ्यों का स्विकार करते हुए उनके साथ रहना ही सही अर्थो में एकमात्र योग है, एकमात्र अनुशासन है। एक बार तुम मनुष्य की स्थिति के प्रति पूर्णतः जागरुक हो जाओ तो तुम धार्मिक हो जाते हो। तुम अपने मालिक बन जाते हो। लेकिन इस तरह से आया हुआ आत्म संयम एक तपस्वी का आत्मसंयम नहीं होता। यह जबरदस्ती से थोपा हुआ नहीं होता, यह कुरुप नहीं होता। यह आत्मसंयम सौंदर्य पूर्ण होता है। तब तुम महसूस करोगे कि यही एकमात्र संभवकार्य है, जिसे तुम और तरह से नहीं कर सकते। तब वस्तुओं पर जो तुम्हारी पकड़ है वह छूट जाती है, तुम अपरिग्रही हो जाते हो।
परिग्रह का आकर्षण मनुष्य अकेले नहीं हो पाता इसके कारण उत्पन्न हुआ आकर्षण है। कोई व्यक्ति अकेले नहीं हो पाता; इसलिये वह साथ खोजता है। किंतु दूसरे लोगों का साथ भरोसे योग्य नहीं है इसलिये इसके पर्याय के रुप में वह वस्तुओं का साथ खोजता है। एक पत्नी के साथ रहना कठिन है, एक कार के साथ रहना इतना कठिन नहीं है। इसलिये किसी भी चीज पर कब्जा कर लेने की उसकी जो प्रवृत्ति है वह वस्तुओं पर कब्जा करने की ओर मुड़ जाती है।
तुम व्यक्तियों तक को वस्तुओं में बदलने का प्रयास कर सकते हो। तुम उन्हें इस प्रकार बदलने का प्रयास करते हो कि वे अपनी वैयक्तिकता, अपनी निजता खो दें। पत्नी एक वस्तु हो जाती है, व्यक्ति नहीं; पति एक वस्तु हो जाता है, व्यक्ति नहीं।
यदि तुम अपने अकेलेपन के प्रति जागरुक हो जाओ, तब तुम दूसरो के अकेलेपन के प्रति भी जागरुक हो जाते हो। तब तुम जानते हो कि दूसरे पर मालकियत करने की चेष्टा एक तरह का अनधिकृत कब्जा है। तब तुम कभी त्याग करने के कारण चिजों को नहीं छोड़ोगे, त्याग तो बस तुम्हारे अकेलेपन की नकारात्मक छाया भर हो जाता है। तुम अपरिग्रही हो जाते हो। तब तुम एक प्रेमी हो सकते हो, लेकिन पति या पत्नी नहीं।
इस अपरिग्रह भाव के साथ करुणा और आत्मसंयम का आगमन होता है। तुम पर निर्दोषता आती है। जब तुम जीवन के तथ्यों से इन्कार करते हो, तब तुम निर्दोष नहीं हो सकते; तुम चालाक हो जाते हो। तुम खुद को तथा औरों को धोखा देते हो। किंतु यदि तुम इतना साहस कर पाये कि जीवन के तथ्यों के साथ, जैसे वे हैं, उसी रूप में रह जाओ तो तुम निर्दोष हो जाओगे। यह निर्दोषता तुम्हारे प्रयास या जबरदस्ती से लायी नहीं होती, तुम यही हो जाते हो- निर्दोष।
मेरे लिए, निर्दोष होना ही वह सब कुछ है, जो पाया जाना है। निर्दोष हो रहो और तब दिव्यता ही आनंद पूर्ण होकर तुम्हारी ओर सदा प्रवाहित होती है। यह निर्दोषता ही उस दिव्यता को ग्रहण करने की पात्रता है, दिव्यता का अंश हो पाने की पात्रता है। निर्दोष हो जाओ, और अतिथि वहां आ जाता है। मेजबान हो जाओ। इस निर्दोषता का अभ्यास नहीं किया जा सकता क्योंकि अतिथेय; मेजबान होने का अभ्यास सदा सोच-विचार से होता है। यह हिसाब-किताब से होता है। पर निर्दोषता कभी हिसाब-किताब से नहीं आ सकती, यह असंभव है।

यह निर्दोषता ही असली धार्मिकता है। निर्दोष होना ही सच्चे आत्मबोध का उत्कर्ष बिंदु है। किंतु सच्ची निर्दोषता केवल खुद के जागरुकतापूर्ण विकास के द्वारा ही आती है। यह किसी सामूहिक, अचेतन विकास से संभव नहीं है। एक मनुष्य अकेला है, वह स्वतंत्र है चुनने के लिए- स्वर्ग या नर्क, जीवन अथवा मृत्यु, आत्मबोध का आनंद या हमारे तथाकथित जीवन की पीड़ा। सार्त्र ने कहीं पर कहा है, ‘मनुष्य स्वतंत्र होने के लिए बाध्य है।’ तुम स्वर्ग चुन सकते हो या नर्क। स्वतंत्रता का अर्थ है किसी एक को चुनने की स्वतंत्रता। यदि तुम सिर्फ स्वर्ग ही चुन सको; तो यह चुनाव नहीं है, यह स्वतंत्रता नहीं है। नर्क के चुनाव के बिना स्वर्ग अपने में नर्क हो जाएगा। चुनाव का अर्थ सदा होता है यह या वह। इसका अर्थ यह नहीं है कि तुम सिर्फ भला ही चुनने के लिए स्वतंत्र हो। तब वहां कोई स्वतंत्रता नहीं होती।
यदि तुम गलत चुनाव करते हो तो स्वतंत्रता अभिशाप बन जाती है; किंतु यदि तुम सही चुनते हो तो यह आशीष बन जाती है। यह तुम पर निर्भर है कि तुम्हारा चुनाव स्वतंत्रता को अभिशाप में बदलता है या आशीष में। चुनाव करना पूर्णतः तुम्हारा ही उत्तरदायित्व है।
यदि तुम तैयार हो तो तुम्हारी ही भीतरी गहराई में से एक नया आयाम आरंभ हो सकता है; उत्क्रांति का आयाम। विकास अब पूरा हो चुका है और अब एक उत्क्रांति की आवश्यकता है जो तुम्हें, वह जो सबसे पार है, उसके प्रति खोल दे। यह एक निजी उत्क्रांति है, एक अंतस-क्रांति।